

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन और



काम विकार पर विजय

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय
पाण्डव भवन, माउण्ट आबू (राजस्थान)

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन और काम विकार पर विजय



प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय,
पाण्डव भवन, आवू पर्वत (राजस्थान) भारत

स्वयं परमपिता परमात्मा शिव ने प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा
जो ज्ञान दिया और दे रहे हैं, उसे ही इस पुस्तक के रूप में
संकलित और सम्पादित किया गया है।

लेखक :

ब्रह्माकुमार जगदीशचन्द्र

प्रकाशक एवं मुद्रक :

साहित्य विभाग,

ज्ञानामृत भवन, शान्तिवन

आबू रोड - 307 510

e-mail: gyanamrit@vsnl.com

पुस्तक मिलने का स्थान :

साहित्य विभाग,

पाण्डव भवन, आबू पर्वत - 307 501

☎ (02974) - 38261 to 38268

Copyright : Brahma Kumaris Ishwariya Vishwa Vidyalaya,
Mount Abu (Rajasthan). No part of this book may be printed without the
permission of the publisher.

ब्रह्मचर्य का आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक दृष्टि से महत्त्व

आज चारों ओर दृष्टि डालने से ऐसा मालूम होता है कि लोग ब्रह्मचर्य के महत्त्व को पूर्ण एवं यथार्थ रीति से नहीं समझते। आज धार्मिक स्थानों पर भी, प्रवचनों में, लोभ न करने, मोह-ममता को छोड़ने तथा अभिमान का त्याग करने की बात तो कही जाती है परन्तु वहाँ भी ब्रह्मचर्य की या तो चर्चा ही नहीं होती और या अगर होती है तो उसे उतना गौण स्थान दिया जाता है कि मालूम होता है कि या तो यह केवल संन्यासियों के लिए ही एक नियम रह गया है और या अब उसकी गणना पाँच विकारों में नहीं होती। परन्तु हमारा ऐसा मन्तव्य है कि हमारी आज की सभी नैतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का भी एक मुख्य कारण काम विकार है और आध्यात्मिक क्षेत्र में भी पुरुषार्थियों की उन्नति न होने का एक कारण यह है कि वे ब्रह्मचर्य का ज्ञान-युक्त रीति से पालन नहीं करते। वे परमात्मा की महिमा करते हुए उसे 'पतित-पावन' तो कहते हैं परन्तु वे पतनकारी काम विकार को छोड़ कर ब्रह्मचर्य व्रत के पालन द्वारा पावन बनने का सबल यत्न नहीं करते। वे काम, क्रोध और लोभ को 'नरक का द्वार' मानते हैं परन्तु नरक के द्वार से मुख मोड़ कर ब्रह्मचर्य मार्ग से स्वर्ग के द्वार में प्रवेश करने के पुरुषार्थ से पीछे हट जाते हैं।

सम्भवतः इस सब का कारण यह है कि वे काम विकार द्वारा होने वाली अतुल हानि को और ब्रह्मचर्य द्वारा होने वाले अपार लाभ को स्पष्ट एवं सुनिश्चित रीति से नहीं जानते। उन्हें यह मालूम ही नहीं कि 'काम' उनके सारे खज़ाने लूट रहा है, न उन्हें यह पता है कि अब इस जन्म के शेष थोड़े-से वर्षों के लिए भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने से उन्हें हथेली पर स्वर्ग का स्वराज्य मिल सकता है; नहीं, नहीं, ईश्वरीय आनन्द की चाबी उनके हाथ लग सकती है और प्रभु, जिस से वे प्यार करते हैं, के वे प्रेम-पात्र बन कर जीवन को धन्य कर सकते हैं।

**वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, आर्थिक,
सामाजिक और नैतिक पहलुओं से ब्रह्मचर्य पर विचार**

इस प्रकार, काम विकार द्वारा होने वाली हानि और ब्रह्मचर्य व्रत द्वारा होने वाले लाभ को स्पष्ट करने के लिए ही यह पुस्तक लिखी गई है। इसमें हमने आध्यात्मिक एवं नैतिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त आज की परिस्थिति में सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से भी ब्रह्मचर्य के महत्त्व को दर्शाया है और शरीर विज्ञान, आयुर्विज्ञान अथवा चिकित्सा विज्ञान के मन्तव्य भी पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत किये हैं।

पुस्तक के प्रारम्भ में हमने साधुओं, सन्तों, महात्माओं, भक्तों, आचार्यों, ऋषियों और मुनियों के वचनों को भी संग्रहीत किया है ताकि ब्रह्मचर्य सम्बन्धी इन वचनों को एक-साथ पढ़कर धार्मिक दृष्टिकोण वाले जिज्ञासु को प्रेरणा मिले। हम ने ब्रह्मचर्य के विषय में मनोवैज्ञानिक पक्ष की भी थोड़ी चर्चा की है और इतिहास से कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर के भी स्पष्ट किया है कि काम विकार ने कैसे बड़े-बड़े व्यक्तियों, देशों और सभ्यताओं को मलियामेट किया है।

हमने यह देखा है कि कुछ लोग शरीर-विज्ञान के आधार पर वासना-भोग को स्वाभाविक मानते हैं। दूसरे कुछ लोग इसे परमात्मा द्वारा रची सृष्टि में अनादि काल से चला आता हुआ एक सांसारिक विधान मानते हैं। अन्य कुछ लोग मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से वासना को मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों में गिनते हैं और वे इसके त्याग को हानिकर समझते हैं। ऐसे भी लोग हैं जो 'वासना' को ही 'प्रेम' की संज्ञा देते हैं और इसके बिना जीवन को शुष्क तथा नीरस मानते हैं। इन सब के अलावा बहुधा लोग यह भी प्रश्न उठाते हैं कि यदि इसे 'विकार' मानकर छोड़ दिया जाए तो फिर सृष्टि कैसे चलेगी? फिर कुछ लोग ऐसे भी हैं जो वासना-भोग को मर्यादा अथवा सीमा देने के पक्ष में तो हैं परन्तु वे इसका पूर्णतः बहिष्कार करने की बात से सहमत नहीं होते। हमने इस पुस्तक में इन सभी प्रकार के लोगों के विचारों को सामने रख कर ऐसी शंकाओं का निवारण करने का यत्न किया है। हमारे विचार में यही इस पुस्तक की विशेषता भी है और उपयोगिता भी।

हम इस पुस्तक में कुछ और बातों पर भी प्रकाश डालना चाहते थे। उदाहरण के तौर पर कई ग्रन्थों में यह जो लिखा है कि देवता भी ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सके और कि शंकर भी मोहिनी रूप को देखकर विचलित हो गए और श्री कृष्ण की 16,108 रानियाँ थीं - ऐसे आख्यानों की चर्चा करके हम यह बताना चाहते थे कि ये नितान्त मिथ्या हैं, परन्तु स्थानाभाव के कारण हमने इस विषय को छोड़ दिया है इनके बारे में हमने अन्यत्र कुछ लिखा है।

इस पुस्तक में यह जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है कि मनुष्य को सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए-यह तथा ब्रह्मचर्य को पालन करने की युक्तियाँ हमें परमपिता परमात्मा ही के कृपा प्रसाद के रूप में मिली हैं। इसलिए इस पुस्तक को पढ़ने के बाद लोग उन्हीं का धन्यवाद करें।

- ब्र.कु. जगदीशचन्द्र

अमृत-सूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	ब्रह्मचर्य का आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक दृष्टि से महत्त्व.....	3
2.	आज की सामाजिक स्थिति में ब्रह्मचर्य का महत्त्व	7
3.	भक्ति-मार्ग में भी ब्रह्मचर्य की महिमा और 'काम' की निन्दा	13
4.	गृहस्थाश्रम में ब्रह्मचर्य.....	59
5.	ब्रह्मचर्य और मस्तिष्क का सम्बन्ध	73
6.	ब्रह्मचर्य-पालन और वैज्ञानिक निरीक्षण	75
7.	इतिहास उवाच	78
8.	ब्रह्मचर्य का पालन क्यों? चिकित्सा विज्ञान और विवेक क्या कहते हैं?	87
9.	जीवन रूपी भवन का आधार-स्तम्भ	95
10.	मेरा बाप सुल्तान था, परन्तु मैं...?	97
11.	जहाँ राम है वहाँ काम नहीं	106
12.	शास्त्रों की बात सिर माथे पर परन्तु विकारों का परनाला यहीं रहेगा	108
13.	'काम' - एक विकार अथवा मद	117
14.	अन्धे को आड़ना	116
15.	आज की संकटमय स्थिति और ब्रह्मचर्य	119
16.	काम एक विष अथवा एक बड़ी हिंसा	130
17.	क्या शास्त्रोक्त गृहस्थ में भी काम वर्जित है?	133
18.	एक नारी सदा ब्रह्मचारी	141
19.	क्या काम विकार के बिना पति-पत्नी सम्बन्ध निरर्थक है?	145
20.	क्या पुत्र के बिना मनुष्यात्मा स्वर्ग को नहीं जा सकती?	149

21. आधुनिक आयुर्विज्ञान के दृष्टिकोण से ब्रह्मचर्य का महत्त्व	153
22. शरीर-विज्ञान और जैविक रसायन के आधार पर ब्रह्मचर्य व्रत का मूल्यांकन	161
23. वासना-भोग प्रकृति के नियमों के विरुद्ध है या अनुकूल?	167
24. पहले सृष्टि की वृद्धि योग-बल द्वारा ही होती थी	174
25. योग-बल द्वारा प्रजोत्पत्ति असम्भव नहीं है	182
26. क्या यह सृष्टि शुरू से 'काम' अथवा मैथुन द्वारा ही चली आई है और ऐसे ही चलेगी?	187
27. सृष्टि कैसे चलेगी?	197
28. क्या वासना-भोग तनाव से छूटने का एक साधन है?	202
29. क्या कामोत्पत्ति 'भूख' की तरह स्वाभाविक है?	205
30. 'काम' और 'प्रेम' में अन्तर	207
31. काम विकार और मनोविज्ञान	212
32. काम सोये वा घर में, पाँव पसारे या घर में	223
33. एक से अनेक की उत्पत्ति	225
34. जीवन की यह नइया, काम हवाले या राम हवाले?	228
35. लक्ष्मी बनना चाहिए, कुलक्षणी नहीं	233
36. संकल्प-बन्दी	237
37. काम विकार पर विजय कैसे प्राप्त करें?	240
38. काम विवार को जीतने और ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने की युक्तियाँ	254
39. रामराज्य की स्थापना में सहयोग दो	266
40. ब्रह्मचर्य के बिना स्वराज्य मृगतृष्णा के समान	271
41. थोड़ा-सा!	280
42. केवल एक बार	281
43. वृत्ति में परिवर्तन	282

आज की सामाजिक स्थिति में ब्रह्मचर्य का महत्त्व

धार्मिक इतिहास के पन्ने पलटने से पता चलता है कि द्वापर युग के आरम्भ से लेकर अब तक ब्रह्मचर्य को प्रायः व्यक्तिगत साधना के अंग के रूप में ही अपनाया जाता रहा है अथवा इसे यम-नियमों के अन्तर्गत आत्म-शुद्धि के लिए एक नियम के रूप में ही लिया जाता रहा है। साधु, संन्यासी, भिक्षु और पादरी मुक्ति को लक्ष्य मान कर तथा बाल-बच्चों इत्यादि को बन्धन जानकर, घर-बार के साथ-साथ स्त्री का भी संन्यास करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करते रहे हैं। भारत में धर्म-प्रेमी लोग इसका सम्बन्ध शारीरिक आयु से जोड़कर तथा इसे शास्त्राज्ञा मान कर इसे शारीरिक जीवन के पहले 25 वर्षों में विद्या-अध्ययनार्थ या फिर 50 वर्ष की आयु के बाद, मुक्ति की प्राप्त्यार्थ भी इसका पालन करते रहे हैं। पूर्व काल में नैतिकतावादी लोग सपत्नीक जीवन में काम अथवा रति को शास्त्र-सम्मत, विधिवत अथवा प्राकृत नियमानुकूल मानकर, गृहस्थ की मर्यादा के बाहर काम-भोग को पाप मानकर, सीमित अर्थ में इसका पालन करते रहे हैं। परन्तु देश-विदेश में लोग, सरकारें, शिक्षा-संस्थाएँ, समाज-शास्त्री वर्ग तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी सेवाओं में जुटे व्यवसायी (डाक्टर इत्यादि) इसके सर्वांगीण महत्त्व को यथोचित रीति से नहीं जानते अथवा जानते हुए भी इससे पूरा लाभ नहीं लेते। पुनश्च, जबकि आज जन-संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है, उसकी रोक-थाम के लिए भी अर्थात् सामाजिक संकट के निवारण के लिए भी, इसे नहीं अपनाया जा रहा।

योग और ब्रह्मचर्य की सामाजिक जीवन में उपेक्षा

यों तो योग को भी पहले केवल ईश्वरानुभूति ही का एक साधन मानकर सामाजिक जीवन में उस की उपेक्षा की जाती रही है परन्तु अभी पिछले 25-50 वर्षों में लोगों का इस ओर कुछ ध्यान गया है कि योगाभ्यास और उसके अन्तर्गत मानसिक एकाग्रता, मनन-चिन्तन इत्यादि ऐसे साधन हैं जिनसे

मनुष्य का मानसिक सन्तुलन बना रहता है और उससे उसे मानसिक शान्ति मिलती है और इसके फलस्वरूप पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन संवरता है। तथापि वर्तमान काल में जन-संख्या की समस्या, जिसके साथ ही बेरोज़गारी, अन्न समस्या, शिक्षा एवं स्वास्थ्य-क्षेत्र में प्रगति, कानून की स्थिति इत्यादि की समस्याएँ भी जुटी हुई हैं, को सुलझाने के लिए ब्रह्मचर्य को महत्त्व नहीं दिया जा रहा है!

सरकार सन्तति-निरोध के लिए लोगों को कृत्रिम साधन तथा डाक्टरी सुविधाएँ देती है और उसके लिए वह परिवार-नियोजन केन्द्रों, डाक्टरों तथा कृत्रिम प्रसाधनों पर करोड़ों रुपये भी खर्च करती है और सन्तति-निरोध के लिए आर्थिक प्रोत्साहन भी देती है परन्तु सच तो यह है कि यदि वह इतना धन और इतनी जन-शक्ति ब्रह्मचर्य के लाभों के बारे में लोगों को शिक्षित करने में खर्च करे तो देश का बहुत ही कल्याण हो सकता है। यही विधि स्वाभाविक एवं सात्विक भी है। महात्मा गाँधी, सन्त विनोबा भावे तथा अन्य उच्च कोटि के अध्यात्मवादी लोगों का यह कहना है कि कृत्रिम साधनों को अपनाने से यद्यपि सन्तति-निरोध हो सकता है तथापि इससे हमारे देश के लोग निस्तेज होते हैं, उनकी शारीरिक शक्तियों का क्षय तो होता ही है और उनमें वासना और भी अधिक प्रबल होती है क्योंकि अब वे सन्तान की उत्पत्ति और उससे बढ़ने वाली ज़िम्मेवारी से अपने को सुरक्षित अनुभव करते हुए, विषय-भोग को सुख का साधन मानकर उसकी ओर और भी ज्यादा प्रवृत्त होते हैं। कई लोग तो वेश्यावृत्ति के वशीभूत होकर कृत्रिम साधनों का प्रयोग करके पर-स्त्री गमन करते हैं और स्त्रियों में भी पति-व्रत भंग करके वासना-भोग की प्रवृत्ति बढ़ती है। आज पाश्चात्य देशों में ऐसा ही हो रहा है। परन्तु इधर भारत देश भी पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण कर रहा है! इसके परिणाम स्वरूप नैतिक मर्यादाएँ टूटती जा रही हैं और मनुष्य विलासता-प्रिय होता जा रहा है तथा बहुत तीव्र गति से भोग के साधनों का रसिया बनता जा रहा है।

फिर, जैसे कि गीता में कहा गया है, काम से मनुष्य में क्रोध पैदा होता है और क्रोध से ही मनुष्य की बुद्धि भ्रमित हो जाती है। यदि इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो आज समाज में जो हिंसात्मक आन्दोलन हैं या उग्रतावादियों द्वारा

तोड़-फोड़ है, उसका मूल कारण भी मनुष्य में ब्रह्मचर्य के पालन का अभाव है।

अतः अच्छा होगा यदि आज सरकार और समाजसेवी भी सामाजिक तथा देशीय समस्याओं को सुलझाने के लिए ब्रह्मचर्य के महत्त्व को समझें। आज इस बात को समझने की ज़रूरत है कि ब्रह्मचर्य का पालन न करने से देश की आर्थिक स्थिति, देश के कानूनी वातावरण, देश के लोगों के स्वास्थ्य और नैतिक विकास इत्यादि पर भी निश्चित रूप से बुरा प्रभाव पड़ता है। आज ब्रह्मचर्य को एक सामाजिक आवश्यकता मानने की आवश्यकता है।

आज सरकार ब्रह्मचर्य पालन को एक व्यक्तिगत धारणा मानकर अथवा इसे एक धार्मिक पहलू समझकर इसे परिवार-नियोजन के लिये एक सरकारी नीति के रूप में नहीं अपनाती और परिवार-नियोजन संस्थाओं, तत्सम्बन्धी पुस्तकों, पैम्फलेटों एवं प्रसार के दूसरे साधनों — यथा रेडियो, टेलीविज़न इत्यादि — द्वारा अथवा शिक्षा-संस्थाओं द्वारा पाठ्यक्रम में ब्रह्मचर्य का महत्त्व दर्शाकर इससे सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का कार्य नहीं कर रही। हमारा विचार यह है कि यदि इन सभी उपलब्ध साधनों द्वारा सरकार ब्रह्मचर्य के विभिन्न पहलुओं के मुख्य-मुख्य लाभों से जनता को परिचित कराये तो देश का बहुत ही कल्याण होगा। वे विभिन्न पहलू और उनके अन्तर्गत होने वाले लाभ निम्नलिखित हैं:—

व्यक्तिगत जीवन में लाभ

(1) **शारीरिक** — इसमें यह समझाया जा सकता है कि ब्रह्मचर्य हमारे स्वास्थ्य के लिये कितना लाभदायक है। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले व्यक्ति का शरीर कई प्रकार के रोगों से बचे रहने में सक्षम होता है। ब्रह्मचर्य से मनुष्य की शारीरिक शक्ति, कार्य-क्षमता तथा कार्योत्साह भी बढ़ता है और उसके फलस्वरूप उस में आशावादिता, प्रसन्नता, सहिष्णुता, धैर्य इत्यादि सदगुण पनपते हैं। आज मनुष्य ब्रह्मचर्य के इस महत्त्व को पूरी तरह न जानने के कारण तेजोभंग होता रहता है और स्खलन के कारण उसका शरीर रोगों का घर बना

रहता है। ईश्वर-दर्शन की बजाय वह डाक्टर-दर्शन ही करता रहता है और अमृतपान की बजाय दवा-पान में ही लगा रहता है। शारीरिक शक्ति को नष्ट कर के वह बुढ़ापे का आह्वान करता है और कमजोरी अनुभव करने के कारण विटामिन, पौष्टिक पदार्थ या शराब-कबाब की ओर भागता है। शक्ति के खजाने को गंवा कर फिर उसे भरने के लिये खर्च करता है और उस बड़े हुए खर्च को पूरा करने के लिए भ्रष्टाचारपूर्ण तरीकों से धन इकट्ठे करने का यत्न करता है। इस प्रकार वह एक कुचक्र में फँस जाता है। जैसे पानी का बाँध बान्धने से उस द्वारा बिजली पैदा करके देश की उत्पादन शक्ति बढ़ती है और पानी भी देहातों को डुबोने की बजाय खेतों को हरा-भरा कर के देश को समृद्धशाली बनाने के रचनात्मक कार्य में काम आता है। ठीक उसी प्रकार ब्रह्मचर्य का पालन करने से मनुष्य में शक्ति का जो संचय होता है, उस द्वारा भी मनुष्य उत्तम साहित्य-रचना, कला-कौशल या विद्या-वृद्धि इत्यादि के रूप में कल्याणकारी कर्तव्यों को सम्पन्न कर सकता है।

(2) मानसिक – इसके अन्तर्गत यह बताया जा सकता है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने से मनुष्य के संकल्प में दृढ़ता आती है। उसका मनोबल (Will Power) बढ़ता है और उसके स्वभाव में एकाग्रता आती है। इसलिए ही लोगों ने इसे विद्योपार्जन के लिये अथवा गहन बातों की गति को समझने के लिये ज़रूरी माना है। एकाग्रता, दृढ़ता, और मानसिक बल जहाँ हो वहाँ मनुष्य स्थूल तथा सूक्ष्म कठिनाइयों को लाँघता हुआ सफलता अवश्य ही प्राप्त कर लेता है और सफलता द्वारा मनुष्य के मन में हर्ष, उल्लास तथा अधिक उन्नति की ओर बढ़ने की उमंग का प्रादुर्भाव होता है।

(3) बौद्धिक – इसके अन्तर्गत यह बताया जा सकता है कि ब्रह्मचर्य ही बुद्धि का प्रकाश है। न केवल इससे बौद्धिक योग्यताओं का विकास होता है बल्कि इससे बुद्धि सात्विक भी होती है। न केवल इससे मनुष्य की निर्णय शक्ति अथवा विवेक-शक्ति जाग्रत होती है बल्कि विवेक सद्विवेक बनता है। यह भी जीवन में एक बड़ी उपलब्धि है क्योंकि इस द्वारा मनुष्य बुराइयों के

भँवर से बच कर रहता है और उसमें सन्तोष, सद्भावना तथा सत्य की पहचान होने के फलस्वरूप वह महान बन जाता है।

(4) **नैतिक** – ब्रह्मचर्य नैतिक जीवन की तो नींव ही है। इस द्वारा दृष्टि-वृत्ति के शुद्ध होने से तथा इन्द्रियों के एक बड़े आकर्षण को जीतने से मनुष्य अन्य आकर्षणों तथा प्रलोभनों को भी पार कर नैतिकता के शिखर पर पहुंचने में सफल होता है। उसमें निर्भय और निस्संकोच बनने तथा सत्य का पालन करने की अथाह शक्ति आती है।

(5) **आध्यात्मिक** – ब्रह्मचर्य आध्यात्मिक प्रगति के लिये तो पहला कदम ही है। ब्रह्मचर्य के बिना आत्मानुभूति तथा ईश्वरानुभूति कदापि नहीं हो सकती क्योंकि कामी मनुष्य की प्रीति देह से होती है, उसका मन भी चंचल होता है और देह की वास्तविकता के प्रति उसका विवेक जाग्रत नहीं हुआ होता, न ही पतनकारी प्रवृत्तियों पर उसका नियन्त्रण होता है। अतः वर्तमान जीवन में आनन्द, जो कि सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है तथा महानता की प्राप्ति और भविष्य में भी देवत्व एवं सात्विक सुखों की पूर्ण प्राप्ति का यदि मनुष्य को ज्ञान हो जाय तो वह ब्रह्मचर्य का पालन अवश्य करेगा ही।

(6) **आर्थिक** – मनुष्य वासना-भोग द्वारा अपनी शक्ति का क्षय करके कमज़ोर होता है और कमज़ोरी की पूर्ति के लिए उसे शक्तिवर्द्धक पदार्थों को अधिक मात्रा में लेने की ज़रूरत महसूस होती है या तो वह डाक्टरों के पास जाकर टॉनिक (Tonic) और विटामिन (Vitamins) की गोलिएँ या ताकत के इन्जेक्शन लगवाता फिरता है। अधिक सन्तानोत्पत्ति से भी उसका खर्च बढ़ जाता है और वासना वाला व्यक्ति सिनेमा, होटल, शराब, फैशन इत्यादि की ओर भी प्रवृत्त होता है। इन सबके लिए उसे धन जुटाना पड़ता है और उसके लिए वह अवैध तथा अनैतिक तरीके अपनाता है और चिन्तित रहने लगता है। इस चिन्ता तथा अवैध कार्यों के कारण फिर उसमें वासना भोगने की प्रवृत्ति भड़क उठती है ताकि वह मन को हल्का करे। इस प्रकार वह एक कुचक्र में फँस

जाता है। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला व्यक्ति इन सभी झंझटों से सुरक्षित, सरल, सन्तुष्ट और सदा प्रसन्न रहता है।

(7) सामाजिक - हम इस लेख द्वारा ब्रह्मचर्य का विशेष तौर पर सामाजिक लाभ बताना चाहते हैं। व्यक्ति के सुधार से समाज का भी आर्थिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक ढांचा सुधरेगा ही परन्तु विशेष बात यह है कि आज जन-संख्या की तीव्र वृद्धि के कारण जो तीन मुख्य भयंकर परिणाम सामने आए हैं उनका निराकरण होगा। जन-संख्या वृद्धि की द्रुत गति के कारण एक तो चिन्ताजनक निर्धनता हमारे देश में फैली है और आवास का अभाव महसूस होता है तथा बेरोज़गारी भी इतनी है कि इन्जीनियर और डाक्टर भी बेकार घूमते हैं। अतः अधिक सन्तान पैदा करके उसे भूख, बेरोज़गारी आदि को सौंपने का क्या अर्थ? दूसरी बात यह है कि इस तीव्र वृद्धि से मनुष्य का अपना भी अवमूल्यन हुआ है और अनैतिकता फैली है। समाज एक जमघट-जैसा बन गया है। इस भीड़-भाड़ से मनुष्य के स्वभाव पर, उसके मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ा है। इससे आज का मनुष्य अशान्त भी है और उसका वह मूल्य तथा मान भी नहीं है। आज मनुष्य लाठीचार्ज, जेल, गोली, आत्महत्या, मद्यपान इत्यादि का ही शिकार है। तीसरे, सारा वातावरण दूषित हो गया है। जल और वायुमण्डल सभी बिगड़ गए हैं। अतः मनुष्य का आज यह एक सामाजिक कर्तव्य है कि वह ब्रह्मचर्य का पालन करे।



भक्ति मार्ग में भी 'ब्रह्मचर्य' की महिमा और 'काम' की निन्दा

यदि हम ज्ञान की दृष्टि से देखें तो गीता में काम को नरक के द्वारों में से सर्वप्रथम गिनाया गया है और काम द्वारा क्रोध की उत्पत्ति, उससे बुद्धि का भ्रष्ट होना और फिर उससे सर्वनाश अर्थात् पूर्णतः अकल्याण बताया गया है। योग की दृष्टि से तो ब्रह्मचर्य की गणना यमों के अन्तर्गत की ही गई है और वैसे मर्यादा के अनुसार भी योगी तो स्त्री-भोगी हो ही नहीं सकता। योगी को तो चित्त की दूषित वृत्तियों का निरोध करना होता है और काम तो पतनकारी वृत्ति है। फिर, वैराग्य की दृष्टि से देखें तो योग वासिष्ठ में, भर्तृहरी के वैराग्य शतक में तथा शंकराचार्य के विवेक चूड़ामणि इत्यादि में भी वासना-भोग की बहुत कड़ी निन्दा की गयी है। फिर महाभारत में धर्म के जो दस लक्षण बताये गये हैं; उन लक्षणों में भी इन्द्रिय-निग्रह को शामिल किया गया है। गोया उनमें भी ब्रह्मचर्य-पालन सम्मिलित है। यह सब तो है ही परन्तु अब हम भक्तों एवं सन्तों की वाणियों से भी कुछ उद्धरण देकर यह दर्शाना चाहते हैं कि उन्होंने भी स्पष्ट शब्दों में कहा है कि कामी मनुष्य न भक्ति कर सकता है न सच्चे दिल से भगवान का नाम ही ले सकता है। कबीर के इन शब्दों पर ध्यान दीजिये —

कामी क्रोधी लालची,

इनसे भक्ति न होय।

भक्ति करे कोई सूरमा,

जाति वरन कुल खोय।

ठीक ही तो कहा है। भक्ति तो भगवान से प्रीति करने का नाम है परन्तु लालची की प्रीति किन्हीं इन्द्रिय-विषयक पदार्थों के संग्रह करने में होती है, कामी की प्रीति स्त्री की देह में होती है और क्रोधी की भी कई प्रिय आशाएँ होती हैं जिन के पूर्ण न होने से उसे क्रोध आता है। तो जिसकी प्रीति विषयों से, प्रेयसी से, या किन्हीं आशाओं से लगी हो, उसके मन में प्रभु से सच्चा स्नेह

कैसे हो सकता है? वह तो दाम, काम और चाम का भूखा होता है, उसके मन में प्रभु की स्मृति कैसे टिक सकती है? इसलिए काम विकार को सच्ची भक्ति का विरोधी बताते हुए कबीर कहते हैं -

जहां काम तहां राम नहीं,

जहां राम, नहीं काम।

दोनों कबहूँ न मिलैं,

रवि रजनी इक ठाम॥

भक्त, सन्त तथा सूफी तो स्वयं को ही पत्नी मानते हैं और परमात्मा को अपना पति, खसम, पिया अथवा 'पीव'। अतः कबीरादि तो कहते हैं कि जब परमेश्वर ही हमारा पति है तो स्त्री-पति के सम्बन्ध में वासना-भोग एक प्रकार का व्यभिचार है। कबीर तो पहले से ही पछता रहे हैं कि उन्होंने वासना-भोग में पड़कर बहुत बड़ी भूल की। वह महसूस कर रहे हैं कि उन्होंने ठीक तरह विचार नहीं किया और जब विचार किया तो भोग छोड़ दिया।

नारी तो हम भी करी,

जाना नाहिं विचार।

जब जाना तब परिहरी,

नारी बड़ा विकार॥

इस प्रकार, वे मान रहे हैं कि उन्होंने विकार में गोता लगाया है और अब उनको यह चिन्ता है कि ऐसा महापाप करने के बाद अब वे प्रभु के पास कौन-सा मुखड़ा लेकर जायेंगे? देखिये -

यार बुलावै भाव से, मो पै गया न जाय।

धन मैली पिउ उजला, लागि न सकौं पांय॥

फिर कहा है -

मैं अपराधी जन्म का,

नख-सिख भरा विकार।

तुम दाता दुःख भंजना।

मेरी करो सम्हार॥

अथवा - "मेरी चुनरी में लागा दाग,
पिया के घर जाऊं कैसे?"

अतः अब तो वह अपने प्रियतम की पतिव्रता सुन्दरी बनकर रहना चाहते हैं। पहले जो भूल हो चुकी सो हो चुकी परन्तु अब तो वह स्पष्ट कहते हैं कि जिसने परमेश्वर को अपना 'पति' माना है उसे उस पति अथवा 'पीव' की पतिव्रता सजनी बनकर रहना होगा। वरना, जिसने किसी देहधारी को अपना पति बना रखा है, उसने तो गोया मन में 'यार' बसा रखा है; वह तो व्यभिचारिन ही मानी जाएगी और उसका परमेश्वर रूप खसम उससे खुश न होगा। कबीर के शब्द ये हैं—

नारि कहावे पीव की, रहै और संग सोय।
जार् सदा मन में बसै, खसम खुशी क्यों होय॥

विभिचारिन विभिचार में,
आठ पहर हुसियार।
कहे कबीर पतिव्रत बिन,
क्यों रीझै भरतार॥

कबीर या जग आइ कै,
कीया बहुतक मित॥
जिन दिल बांधा एक से,
ते सौवे निःचित॥

तो देखिये, कबीर तो एक (प्रभु) ही से दिल लगाने को कहते हैं। वरना तो

1. पति 2. यार

3. परमेश्वर रूप पति

4. मित्र

विकार से किये पाप की चिन्ता लगी रहेगी। अतः यह याद रखना चाहिये कि काम विकार की तो बात छोड़ दीजिए, भक्ति के लिए तो देह के नाते भी भुलाने पड़ते हैं – भाव यह कि पति-पत्नी के बीच का विकारी नाता तोड़ना पड़ेगा—

जब लग नाता जगत का,

तब लग भक्ति न होय।

नाता तोड़ हरि जपे,

भगत कहावै सोय॥

कबीर तो ऐसा मानते हैं कि जब आत्मा-रूप सुन्दरी का ज्ञान-दीप जग जाता है, तब उसके मन में काम रहता ही नहीं बल्कि विकार तो वैसे ही जल जाता है, जैसे अंगार पड़ने से सूखा घास जल जाता है अथवा दीपक की लौ जलने से तेल जल जाता है। ध्यान दीजिए —

जबहिं नाम हिरदे धरा,

भया पाप का नाश।

मानो चिनगारी आग की,

परी पुरानी घास॥

यही बात कबीर जी इन शब्दों में कहते हैं—

चढ़ी अखाड़े सुन्दरी,

मांडा पिउ से खेल।

दीपक गोया ज्ञान का,

काम जरे ज्यों तेल॥

जिसकी वासना ही मिट गई, वह अब काम रूप खोटे कर्म में कैसे प्रवृत्त होगा? अतः वह कहते हैं कि जो आत्मा प्रभु की सजनी बन चुकी, उसका तो और कोई (पति या पत्नी) हो ही नहीं सकता। कबीर ने यह बात बहुत स्पष्ट शब्दों में यों कही है —

सूरा के तो सिर नहीं,

दाता के धन नाहिं॥
 पतिव्रता के तन नहीं,
 सुरति बसै पिउ माहिं॥
 नैनन प्रीतम मिलि रहा,
 दूजा कहां समाय।
 आठ पहर चौंसठ घड़ी,
 मेरे और न कोय॥

उपरोक्त से स्पष्ट है कि भक्तों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि पतिव्रता का तो मानो तन होता ही नहीं। तब वह भला किसी पुरुष को विषय-भोग के लिये तन देगी कैसे? उसके नैनों में तो सदा एक प्रभु-प्रीतम ही बसते हैं; तब वह अन्य किसी को अपना प्रीतम मानेगी कैसे? बात यह है कि प्रभु से प्यार करने वाला तो अपने तन को मिट्टी मानता है और दूसरों के तन को भी। तब वह मिट्टी से क्या नाता जोड़े? वह तो जानता है कि यह नाते रहने वाले ही नहीं है, अतः कबीर कहते हैं -

यह तन काँचा कुम्भ है,
 लिये फिर धा साथ।
 टपका लागा फूटिया,
 कुछ नहीं आया हाथ॥

पुनश्च -

तन सराय मन पाहरु,
 मनसा उतरी आय।
 कोऊ काहू का है नहीं,
 (सब) देखी ठोंक बजाय॥

और देखिये -

इक दिन ऐसा होयेगा,
 कोउ काहू का नाहिं।

घर की नारी को कहै,

तन की नारी जाहि॥

ठीक ही तो कहा है कि घर की नारी (स्त्री) की तो बात छोड़ो, एक दिन ऐसा आयेगा जब तन की नारी (नाड़ी-नसें) भी नहीं रहेंगी क्योंकि वे भी जला दी जायेंगी (मनुष्य के मरने पर ऐसा ही तो होता है); तब इनके लिये काम-चिता पर जलने की क्या जरूरत है ? अतः कबीर कामी को मोरी के कीड़े से तुलना करते हुए कहते हैं कि अब पलीद बनना छोड़ो। अब असार को छोड़कर सार ग्रहण करो -

कबीर कीट सुगन्धि तजि,

नरक गहै दिन-रात।

असार ग्राही मानव,

गहै आसारहि बात॥

सभी सन्त कवियों ने कहा है कि जो प्रभु से नाता जोड़ेगा वह ही प्रभु को पीव मानेगा और उसी प्रभु ही के लिए उसका अंग-अंग अकुलायेगा। कबीर कहते हैं -

विरहिन देह सन्देसरा,

सुनो हमारे पीव।

जल बिन मच्छी क्यों जिये,

पानी में का जीव॥

♦ ♦ ♦

अंखिया तो झाई परी,

पंथ निहार निहार।

जिभ्या तो छाला पड़ा,

नाम पुकार पुकार॥

सोओं तो सपने मिलै,

जागो तो मन माहिं।

लोचन राता सुधि हरी,

बिछुरत कबहू नाहिं॥

अब आप देखिये कि सन्त तुलसीदास ने इस विषय में क्या कहा है -

सन्त तुलसीदास की लेखनी से

सन्त तुलसी की तो जीवन-गाथा ही पुकार-पुकार कर कह रही है कि काम विकार को छोड़े बिना मनुष्य आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त कर ही नहीं सकता। सन्त तुलसीदास के जीवन की उस घटना को तो प्रायः सभी जानते ही हैं जिससे कि उनके मन में राम से प्रीति जगी थी। परन्तु फिर भी यहाँ संक्षेप में उसका उल्लेख कर देना लाभकर होगा ताकि जो लोग उससे अपरिचित हैं, वे भी उसे जान जायें। वह घटना इस प्रकार है -

सन्त तुलसीदास जी का अपनी पत्नी में बहुत ही अनुराग था। एक बार उनकी स्त्री अपने पिता के घर गयीं तो तुलसीदास जी पत्नी के बिना रह नहीं सके। वह अर्ध-रात्री को ही पत्नी के मायके की ओर चल दिये। रास्ते में नदी पड़ती थी। वर्षा के कारण नदी में बाढ़-सी थी। उसे पार करने के लिये भी कोई साधन नहीं था और यह काम था भी खतरे का। परन्तु तुलसीदास जी पर तो पत्नी के मिलन की धुन सवार थी। वह वहाँ पहुंचे बिना तो रह नहीं सकते थे। इतने में उनकी दृष्टि नदी में बहते हुए एक मुर्दे पर पड़ी। कहते हैं कि वे उस मुर्दे पर जाकर बैठ गए और पार उतर गये। जब वह अपने ससुराल पहुंचे तो द्वार बन्द था। परन्तु स्त्री के कोठे से एक सांप लटक रहा था। वे उसे रस्सी मान कर, उसी को पकड़ कर ऊपर उस कमरे में चले गये जहाँ उन की पत्नी थीं। जब वे स्त्री के सामने पहुंचे, तो वह आश्चर्य-चकित रह गयीं। उन्होंने कहा - “आप इस समय कैसे आये?” जब तुलसीदास ने उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया तो वह बोली - “आश्चर्य! इस हाड़-मांस और रक्त-कफ से परिपूर्ण शरीर के लिये आपने इतना खतरा मोल लिया और आधी रात गये इतना यत्न

किया! आपको लोक-लाज भी भूल गयी? इससे आपको क्या मिलेगा? इसमें तो आपके जीवन का क्षय ही होगा। ओहो, यदि आपकी ऐसी प्रीति राम से होती तो आप संसार से तर जाते।⁵ ... यह बात तुलसी जी के मन को लग गयी और उसी समय उन्होंने अपनी पत्नी को धर्म-माता के रूप में माना और चल दिये। उसके बाद देखिये तो उन्होंने कैसी भक्ति की और उस भक्ति में सारी रामायण लिख डाली। तभी हमने यह कहा कि उनकी तो जीवन-कहानी ही बोल रही है कि यदि कोई आध्यात्मिक उन्नति चाहता है तो उसे सपत्नीक जीवन में भी काम विकार का बहिष्कार करना होगा। फिर उन द्वारा लिखित कविता में भी 'काम' को छोड़ने के बारे में अनेकानेक पद हैं। यहाँ हम नमूने के तौर पर बहुत थोड़े ही पदों का उल्लेख कर रहे हैं—

तात तीनि अति प्रबल खल,
काम क्रोध अरू लोभ।
मुनि विज्ञान सुधाम मन,
करहिं निमिष मुहुं छोभ॥

काम, क्रोध, लोभादि को खल बताने के बाद उन्हें बहुत ही दुःखप्रद माना है—

काम क्रोध लोभादि मद,
प्रबल मोह की धारि।
तिन्ह महं अति दारुन, दुःखद,
माया रूपी नारि॥

इसके अतिरिक्त उन्होंने 'काम' को एक बड़ा मद माना है जिसका एक क्षण में ऐसा तो नशा चढ़ जाता है कि मनुष्य अपने स्वरूप को भूल कर उल्टे कर्म कर बैठता है।

नाथ विषय सम मद कछु नाहीं।

5. अस्थि चरममय देह मम, तामें ऐसी प्रीति।
तैसी जो श्री ईश महं, होती न भव भीति॥
6. तुलसी रामायण: आरण्यकाण्ड - 38
7. तुलसी रामायण: आरण्य 15/12

मुनि मन मोह करइ छन माहीं^{११}

फिर उन्होंने कामी मनुष्य को 'शठ' अर्थात् दुष्ट माना है तथा विष पीने वाला कहा है -

एहि तन कर फल विषय न भाई,
स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई।
नर तनु पाइ विषय मन देहीं,
पलटि सुधा ते सठ विष लेही।
ताहि कबहूँ भल कहइ न कोई,
गुंजा ग्रहइ परस मनि खोइ।

देखिये, उन्होंने तो कहा है कि यह काम-रूपी विषय पहले सुखद अनुभव होता है परन्तु यह है बहुत दुखदाई और वासना-भोग करने वाले मनुष्य को कोई भी 'भला आदमी' नहीं कहेगा क्योंकि वह तो वास्तव में सठ (शठ) ही है। सन्त तुलसीदास ने पुनः पुनः कामी मनुष्य को कपटी, खल, शठ आदि के समकक्ष रखा है। ध्यान दीजिये -

काम, क्रोध, मद, लोभ परायन,
निर्दय, कपटी कुटिल मलायन
बयरू अदारन सब काई सों,
जो कर हित अनहित ताहू सों^{१०}

ऐसे पापी लोगों में भी कामी की गणना सर्व प्रथम की गई है। इसके अतिरिक्त तुलसीदास जी ने यह भी माना है कि सतयुग (कृतयुग) और त्रेतायुग में कामी मनुष्य नहीं होता (क्योंकि वहाँ योग-खल द्वारा ही सन्तति होती है) -

अवगुण सिन्धु मन्दमति कामी,

8. तुलसी रामायण: उत्तर 43/1-2

9. तुलसी रामायण: किष्कि. 20/4-5

10. तुलसी रामायण: उत्तर 38/1-3

ऐसे अधम मनुष्य, खल
 कृतयुग वेता नाहिं।
 द्वापर कछुक वृन्द बहु,
 हो रहिं कलियुग माहिं॥¹¹

देखिये, उन्होंने कामी को पुनः 'अधम' और 'खल' कहा है तथा उसका उल्लेख 'अवगुण-सिन्धु' तथा 'मन्दमति' लोगों के संग किया है। इसके अतिरक्त उन्होंने लिखा है कि राम कहते हैं कि जिनमें 'काम' विकार नहीं है, वे ही मुझ प्रभु को प्रिय हैं -

विगत काम मम नाम परायण,
 सांति बिरति बिनती मुदितायन,
 सीतलता सरलता मयत्री।

इस प्रकार उन्होंने कामजीत मनुष्य की गणना दिव्य गुण धारण करने वालों में करके स्पष्ट कर दिया है कि 'काम-परायण' मनुष्य असुर है।

सन्त तुलसीदास जी इन काम-क्रोधादि से छूटने का उपाय बताते हैं। वे कहते हैं कि लोभी मनुष्य लोभ में प्रवृत्त होने के लिये दम्भ का सहारा लेता है, क्रोधी किसी के वचनों से भड़क कर क्रोधान्वित होता है अथवा तीक्ष्ण वचन बोल कर क्रोध व्यक्त करता है; इसी प्रकार, कामी नर स्त्री से वासना-भोग करता है। ये सभी बुराइयाँ जायेंगी तभी जब मनुष्य प्रभु से प्रीति जुटायेगा; उस एक से नाता जोड़ेगा। तभी सारे प्रपंच भी मिटेंगे और उसको लोक तथा परलोक, दोनों का सुख मिलेगा -

लोभ के इच्छा दम्भ बल,
 काम के केवल नारि।
 क्रोध के पुरुष वचन बल,
 मुनिवर कहहिं विचारी॥

तब लगि कुसल न जीव कहँ,
 सपनेहु मन विराम।
 जब लगि भजन न राम कहाँ,
 सोक धाम तजि काम॥
 मिटहहि पाप परिपंच सब,
 अखिल अमंगल भार
 लोक सुजस परलोक सुख,
 सुमिरत नाम तुम्हार।
 कामी नारि पियारि जिमि,
 लोभी के प्रिय दाम।
 तिमि रघुनाथ निरन्तर,
 प्रिय लागहु मोहि राम।

अतः हमें अब निर्णय करना चाहिए कि हम अपनी जीवन की नैया राम के हवाले करना चाहते हैं या काम के? हम शिव के अभिलाषी हैं या विष के? इसी 'काम' विकार के कारण ही तो रामायण में सूर्पनखा की नाक कटी और रावण के दस शीश जले! आज जो रामायण उपलब्ध है उससे स्पष्ट है कि इसी काम विकार के कारण रावण के 'नव लाख कुटुम्बी और सवा लाख नाती' मरे और सारी सोने की लंका जली। परन्तु कितने आश्चर्य की बात है कि प्रति वर्ष लोग रावण का बुत जलाते हैं, सूर्पनखा की नाक भी काटी जाती है परन्तु लोग अपने मन के 'काम' विकार को नहीं जलाते! वे रावण के बुत पर तो गधे का शीश दिखाते हैं परन्तु अपने मन में नहीं झाँकते। रामायण एक कल्पित रूपक हो या वास्तविक घटना, उसका सार तो यही है और यह तो मनुष्य को अपने मन में धारण करना ही चाहिए। तुलसी और उनकी रामायण के प्रसंगों को देख लेना चाहिये कि तुलसी जी ने तो स्पष्ट कहा है कि मलीन कर्मवाले लोग राम से नहीं मिल सकते। राम को पाना चाहने वाले केवल राम ही के उपासक होते हैं, काम के नहीं। देखिये -

सूधे मन, सूधे वचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल विधि रघुवर प्रेम प्रसूति।



वेष विसद, बोलनि मधुर, मन कटु, करम मलीन।
तुलसी राम न पाइये भए विषय-जल-मीन॥



एक भरोसा, एक बल, एक आस विश्वास।
एक राम-धनस्याम हित चातक तुलसी दास।

मीरा बाई

सभी जानते हैं कि मीरा बाई ने काम विकार को त्याग कर कृष्ण-प्रेम का प्याला पीने के कारण कई कष्ट सहन किये। राणा ने उनके पास सांप का पिटारा भेजा, उन्हें ज़हर का प्याला भी पिलाने की आज्ञा दी, उन्हें सूली पर सुलाने को भी कहा परन्तु मीरा श्री कृष्ण-भक्ति से पीछे नहीं हटी और उनकी इस अटूट भक्ति के परिणामस्वरूप उन्हें ईश्वरीय सहायता भी मिली। मीरा के ये पद इन्हीं दोनों धाराओं को व्यञ्जित करते हैं -

मीरा मगन भई हरी के गुण गाय।

सांप पेटारा राणा भेज्या,

मीरा हाथ दियो जाय॥

‘हाथ धोय जब देखन लागी’

सालिग्राम गई पाय।

जहर का प्याला राणा भेज्या,

इम्रत दीन्ह बनाय।

हाथ धोय जब पीवण लागी,

हो गई अमर ऊंचाय॥

सूल सेज राणा ने भेजी,
 दीज्यो मीरा सुलाय।
 सांझ भई मीरा सोवण लागी,
 मानो फूल बिछाय॥
 मीरा के प्रभु सदा सहाई,
 राखे बिघन हटाय।
 भजन भाव में मस्त डोलती,
 गिरधर पै बलि जाय॥

आज घर-घर मीरा के चित्र लगे रहते हैं और लोग उनके पदों को गाते भी हैं क्योंकि वे अनुभव-सहित हैं और मन की गहराई से निकले हैं परन्तु खेद है कि लोग मीरा का अनुकरण नहीं करते! मीरा ने तो श्रीकृष्ण ही को पति रूप में अपनाया था और काम को तो अपने इष्ट पर वार दिया था। मीरा के ये पद इसी सत्यता की साक्षी देते हैं -

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
 जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
 छोड़ि दई कुल की कानि, कहा करै कोई।
 संतन ढिग बैठि-बैठि, लोक लाज खोई।

ज़रा ध्यान दिजिए कि मीरा को इस भक्ति के लिए लोक-लाज भी खोनी पड़ी क्योंकि यह तो दो युगों से संसार की रीति रही है कि जब कोई प्रभु-प्रेम की ओर बढ़ता है तो लोग उस पर अट्टहास करते हैं। वे उसे कई यातनाएँ भी देते हैं। मीरा ने यही बात इस प्रकार व्यक्त की है -

पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे
 लोग कहै मीरा भई बावरी,
 सास कहै कुल नासी रे।
 जहर का प्याला राणा जी भेज्या,
 पीवत मीरा हाँसी रे।

मैं तो अपने नारायण की,
हो गई आपहि दासी रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
मिलौं अविनाशी रे।

जब मीरा को अविनाशी पति मिल गया तो फिर मीरा को किसका डर और काहे की चिन्ता? मीरा को तो अब 'राम रतन धन' मिल गया था, अब उसे और क्या चाहिये था? मीरा कहती है -

पायौ जी, मैंने राम रतन धन पायौ।
वस्तु अमौलिक दी मेरे सत गुरु,
किरपा कर अपनायौ।
जनम-जनम की पूँजी पाई,
जग में सभी खोवायौ।
खरचै नहिं कोई चोर न लैवे,
दिन-दिन बढ़त सवायौ।
सत की नाव खैबटिया सत गुरु,
भव सागर तर आयौ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
हरख ¹² हरख जस ¹³ गायौ।

परन्तु जिन लोगों की प्रभु से प्रीति ही नहीं है, जिनकी दृष्टि देह-अभिमान पर आधारित है, वे क्या जाने कि भक्ति, ज्ञान या योग क्या होता है; वे तो भक्तों तथा योगियों पर सितम ढाते हैं। उन्हें न तो ज्ञान-रत्नों की पहचान होती है, न ही उनके सामने जीवन का कोई ऊँचा लक्ष्य होता है। यही बात मीरा ने इस प्रकार कही है-

घायल की गति घायल जानै,
कै जिन लागी होय।

जौहरी की गति जौहरी जानै,
कै जिन जौहर होय।

परन्तु जिसको यह लौ लग गयी है, उसकी तो मिटाये नहीं मिटती। वह तो समझ जाता है कि यही एक युक्ति है जिस द्वारा मनुष्य बुरे कर्मों से बच सकता है। सार की बात तो यह है कि मनुष्य पवित्र बने और उसके लिए प्रभु-प्रेम में रमे, बाकी तो यज्ञ, कर्म-संन्यास इत्यादि से कोई लाभ नहीं। इसलिए मीरा गा उठी –

कहा भयो तीरथ व्रत कीन्दे,

कहा लियो करवट कासी ¹⁴

इस देह का गरब न करना

माटी में मिल जासी॥

यह संसार चहर की बाजी,

सौझ पड़यो उठ जासी।

कहा भयो है भगवा पहरयाँ,

घर तज भए संन्यासी॥

जोगी ¹⁵ होय जुगति नहीं जागी,

उलटि जनम फिर जासी।

अरज करूँ अबला कर जोरे,

स्याम तुम्हारी दासी॥

मीरा के प्रभु गिरधर नागर,

काटो जम की फाँसी॥¹⁶

ऊपर उद्धृत किए गए पदों से स्पष्ट है कि मीरा ने भी 'काम' विकार को छोड़कर एक प्रभु ही को पिया के रूप में अपनाने के लिए कहा है।

14. काशी में एक स्थान ऐसा है जहाँ एक छुरा रखा है। पूर्वकाल में कई लोग भक्ति-भाव से वहाँ जाकर छुरे से अपना सिर काट देते थे। उनका यह मिथ्या विश्वास था कि इससे प्रभु का मिलन होगा। इस प्रथा को 'काशी करवट' कहते हैं। आज भी वहाँ छुरे रखे हैं परन्तु यह प्रथा बन्द है।

15. आसन-प्राणायाम इत्यादि करने वाला

16. 'मीरा माधुरी' से उद्धृत

अब सूरदास जी की रचनाओं पर विचार कीजिए -

सूरदास जी

सूरदास के बारे में बहुत-से लोग मानते हैं कि वे जन्म के अन्धे नहीं थे। कहते हैं कि वे एक युवती को देख कर उस पर मुग्ध हो गये थे। वे बहुत देर तक उसकी ओर टिकटिकी बाँध कर खड़े रहे। अन्त में वह युवती उनकी ओर बढ़ी और पास आकर बोली - “कहिये महाराज, क्या आज्ञा है?” उस स्त्री के स्वतः ही आने और इस प्रकार पूछने पर सूरदास जी को अपनी दृष्टि, वृत्ति और स्थिति के कारण बहुत लज्जा आयी। उन्होंने सोचा कि आँखें बुराई की ओर प्रवृत्त करती हैं, इसलिए उन्होंने उस युवती को कहा - “आज्ञा यह है कि सूई लाकर मेरी दोनों आँखें फोड़ दो!” कई पुस्तकों में इस वृत्तान्त के बारे में बहुत ही हृदय-स्पर्शी संवाद मिलता है। कहा जाता है कि सूरदासजी के आग्रह और हठ के परिणाम-स्वरूप, उस स्त्री ने सूआ लाकर उनकी आँखें फोड़ दीं। इस प्रकार आँखें निकलवा देने से मन से विकार तो निकल नहीं जाता परन्तु इससे यह तो स्पष्ट है कि सूरदासजी ने भी काम विकार को इतना बुरा माना और प्रभु-प्रीति में इतना बाधक माना कि उससे छुटकारा पाने के विचार में आँखें फोड़ डालीं। फिर जब देखा कि विकार मन से मिटा नहीं तो उन्होंने प्रभु से इस प्रकार प्रार्थना शुरू की -

अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल।
 काम क्रोध कौ पहिरि चोलना,
 कंठ विषय की माल।
 महामोह के नूपर बाजत,
 निंदा - शब्द - रसाल।
 भ्रम-भरयो मन भयौ पखावज,
 चलत असंगत चाल।
 तृष्णा नाद करति घट भीतर,
 नाना विधि दै ताल।

सूरदास की सबै अविद्या,
दूरि करो नन्दलाल।

इस प्रकार, इन विकारों को तो अविद्या मानते हुए उनसे छुड़ाने के लिए ही वे प्रभु से प्रार्थना कर रहे हैं -

रे मन आपु को पहिचानि।
सब जनम तैं श्रमत खोयौ,
अजहुं तौ कछु जानि।

ज्यों मृग कस्तूरि भूलै,
सु तौ ताकैं पास।
श्रमता ही वह दौरि ढूँढ़ै,
जबहिं पावै वास।

भरम ही बलवंत सब मै,
ईसहू कै भाई।
सूर जो द्वै रंग त्यागे,
यहै भक्त सुभाई।

तो देखिए, सूरदासजी भी तो कह रहे हैं कि अब इन विकारों को छोड़ो और अपने आपको पहचानो। अब और रंगों को छोड़कर एक प्रभु-प्रीति ही का रंग चढ़ाओ।

इस प्रकार, पूर्व पृष्ठों के अध्ययन से स्पष्ट है कि सभी भक्तों ने भी काम विकार को छोड़ने के लिये कहा है। हाँ, उन्हें वह ईश्वरीय ज्ञान तो था ही नहीं कि जिसके बल से वे घर में सपत्नीक जीवन व्यतीत करते हुए पवित्र रह सकते; अतः उन्होंने युगल जीवन को छोड़ दिया और जैसे सूरदास जी ने दोष अपने मन का होते हुए भी आँखें निकाल दीं, वैसे ही वे भी पवित्र तो स्वयं रह नहीं सके और उन्होंने दोषी नारी को ठहराया और इसलिए नारी की निन्दा की।

परन्तु यह बात तो स्पष्ट ही है कि हर हालत में उन्होंने काम विकार को त्याज्य माना। लेकिन आज तो लोग न ईश्वरीय ज्ञान लेकर पवित्र बनने का पुरुषार्थ करते हैं और न वे भक्ति के अनुरूप ही इन विकारों को छोड़ते हैं।

अब हम कुछ और सन्त कवियों की कृतियों में से उनके कुछेक पद उद्धृत करते हैं। आप देखेंगे कि सभी ने एक स्वर से 'काम' विकार को छोड़ने के लिये कहा है। गुरु नानक जी को ही लीजिये -

सिक्खों के ग्रंथ साहिब की वाणी

अन्य सन्तों और भक्तों की भांति नानक देव जी ने और सिक्खों के गुरु तेग बहादुर जी ने भी काम विकार को छोड़ने और प्रभु-प्रीति में मन लगाने के लिये सम्मति दी है। वे काम विकार का जीवन से नितान्त, अहर्निश बहिष्कार चाहते हैं। उनके ये वचन हैं -

साधो मन का मानु तिआगउ।
कामु¹⁷ क्रोध संगति दुरजन की
ता ते अहिर्निन भागउ।¹⁸

ग्रन्थ साहिब में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि मनुष्य ने विकारों में पड़ कर प्रभु को भुलाया है। काम विकार द्वारा पैदा हुआ जो झूठा तन है उसे ही मनुष्य सच्चा मान कर बैठा है; वास्तव में यह उसकी भूल है -

काम क्रोध मोह बसि प्राणी
हरि मूरति बिसराई।
झूठा तनु साचा करि मानिओ
जिउ सुपना रैनाई।¹⁹

अतः कनक और कामिनी के पीछे जीवन गँवाने वाले मनुष्य को सिक्ख गुरु उपदेश देते हैं कि अब प्रभु की शरण लो वरना इन से छूटने का और यमराज

17. काम

18. राग गउड़ी महला

19. रात्रि

से बचने का और कोई उपाय नहीं है -

कहउ कहा ²⁰ अपनी अधमाई
 उरझिओ कनक कामनी के रस
 नह ²¹ कीरति ²² प्रभु गाई
 जग जूठे रुच ²³ उपजाई।
 कहि नानक अब नाहि अन्त गति
 बिनु हरि की सरनाई। ²⁴

नानक जी तो ऐसा मानते हैं कि जिस के मन में काम, क्रोध इत्यादि नहीं हैं, उसका मन ही ब्रह्म में टिका है -

कामु क्रोधु जिह परसै नाहि
 तिह घटि ब्रह्मु निवास ²⁵

नानक जी कहते हैं कि तन के सभी सम्बन्ध भक्ति के लिये निस्सार हैं। अतः वह काम, क्रोधादि विकार छोड़ कर प्रभु से नाता जोड़ने तथा उस एक ही का सहारा लेने को कहते हैं -

हरि बिनु तेरो को न सहाई।
 कांकी मात पिता सुन बनिता
 को काहु का भाई।
 धन धरनी अरु संपति सगरी
 जो मानिओ अपनाई।
 तन छूटै कुछ संगि न चालें
 कहा ताहि लपटाई। ²⁶

20. 'कहउ कहा' का अर्थ है - क्या कहूं

21. नह - न

22. कीरति

23.

रुचि

24. टोडी महला

25. सारंग महला

26.

सारंग महला।

सन्त गरीबदास की वाणी

सन्त गरीबदास ने भी काम विकार को परास्त करने के लिये प्रेरणा दी है। जो मनुष्य इन विकारों को लिपटा हुआ है, उसे तो उन्होंने अन्धा माना है -

इस दुनिया में आयकर, इन चारों को बंध।

काम क्रोध मोह चूहरा, लोभ लपटिया अन्ध।

उन्होंने तो स्पष्ट कहा है कि यदि कोई मनुष्य शारीरिक रूप से कमल आसन लगाता रहे परन्तु उसका मन भंवरे की तरह इधर-उधर उड़ान भर रहा हो तथा कुसंग में पड़ के छोटे कर्म कर रहा हो और विषयों ने मन में डेरा डाल रखा हो तो उस पर कभी भी भक्ति का रंग अथवा प्रभु का रंग नहीं चढ़ सकेगा -

कमल फूल मन भंवर है, कांटा करम कुसंग

पाँच विषय सूं बंधि रहा, कैसे लागै रंग

उन्होंने तो संन्यासियों और वैरागियों को भी कहा है कि यदि पाँच विकारों को और उनके बड़े परिवार को नहीं छोड़ा बल्कि केवल शारीरिक वेष ही बदल लिया तब तो मानो संन्यासी जी ने केवल एक सांप की तरह ही व्यवहार किया जो केंचूली तो उतार देता है परन्तु विषेला पहले की तरह ही बना रहता है-

वैराग नाम है त्याग का, पाँच पचिसौ संग,

ऊपर की कैचल तजी, अन्तर विषय भुजंग।

उन्होंने तो यह भी स्पष्ट कहा है कि यदि मन में विकार अथवा उनके पच्चीसों रूपान्तर बने हुए हैं तो जप-तप, दान-पुण्य, तीर्थ-यात्रा सभी-कुछ व्यर्थ हैं -

नाम जपा तो क्या हुआ, उर में नहीं यकीन,

चोर घुसं घर लूटहीं, पांच पचीसों तीन।

कोटि गऊ जे दान दें, कोटि जङ्ग जेवनार,

कोटि कूप तीरथे खनै, मिटे नहीं जम मार।

कोटि-तीरथ व्रत करै, कोटिन गज करि दान,

कोटि अस्व विप्रों दिये, मिटै न खँचातान।

गरीबदास जी ने तो कहा है कि ज्ञान, योग या भक्ति से तो शील आता है और मनुष्य एक प्रभु ही को मन में बसाता है। यदि किसी का मन एक प्रभु-प्रीति में नहीं टिका और काम इत्यादि में लिपटा है तो मानो प्रभु से लौ नहीं लगी —

ज्ञान जोग और भगति ले, शील संतोष विवेक
लै लागी तब जानिये, जब दिल आवे एक।

अतः गरीबदास जी ने तो चेतावनी दी है कि यह तन तो मिट्टी का महल है। आखिर एक दिन चार आदमी इसे कन्धे पर उठाकर मरघट ले जायेंगे और जला देंगे। यदि आपने इसमें विष की पोटली बांधी तो प्रभु के दरबार में क्या जवाब दोगे? यदि इसी बुरे घन्धे में लगे रहोगे और पिता परमात्मा को नहीं अपनाओगे तो 'प्रभु के दरबार में अपने पिता का क्या नाम बताओगे?' तब तो वैश्या के पुत्र कहलाओगे।

यह माटी का महल है, मन बांधी विष पोट
अहरन पर हीरा धरा, ताहि सहै घन चोट।
हीरा घन की चोट सहि, साचे कूं नहिं आंच
वह दरगाह में क्या कहें, जाके संग हैं पांच।

माया हुई तो क्या हुआ, भूल रहा नर भूत
पिता कहेगा कौन कूं, तू बेसवा का पूत।

यह माटी का महल है, तासे कैसा नेह
जो साईं मिलि जात है, तौ यार वचन देह।

अतः गरीबदास जी कहते हैं कि तू पांचों इन्द्रियों को साध और काम, क्रोधादि विकारों को छोड़ तो तुझे सामने ही प्रभु का घर दिखाई देगा —

शील संतोष विवेक से, जाके दरबाना
काम क्रोध भागे जबै, गढ़ देखा साना।

अब पलटू साहिब की सुनिये—

पलटू साहिब

पलटू साहिब भी हैरान हैं कि मनुष्य जान-बुझकर काम-क्रोधादि माया के कुएँ में गिरता है। वे कहते हैं कि यदि मनुष्य माया से ठगे जाने की बजाय इस एक काम विकार को ठग दे और एक प्रभु से प्रीति करे तो वह सच्चा ईश्वर-भक्त बन जायेगा —

जानि बूझि कुआं परै, पलटू चलै न देख
मन माया में मिलि गया, मारा गया विवेक।

माया ठगिनी जग ठगा, इक ठगा न कोय
पलटू इकहैं सो ठगें तो साचा भक्ता होय।

पलटू साहिब काम की निन्दा करते-करते नारि शब्द का प्रयोग कर गये हैं। भाव उनका यही है कि सम्भोग बुरी चीज है। वे कहते हैं कि मनुष्य को संसार में इन्द्रियजीत होकर कर्म करना चाहिये —

खरबूजा संसार है, नारी छुरी बेन
पलटू पंजा शेर का, यों नारी का नैन।

इन्द्रिजीत कारज करै, जगत सरा है भोग
जैसे वर्षा सिखर पर, नहीं भीजवे जोग।

पलटू पलटू क्या करे, मन को डारे धोय
काम क्रोध को मारिकै, सोई पलटू होय।

परन्तु प्रश्न उठता है कि यह काम-क्रोधादि मन से जायेंगे कैसे? इनके लिये पलटू साहिब कहते हैं कि जब मनुष्य जग को नाशवान जानते हुए इसके सुखों को क्षण-भंगुर मानते हुए तथा विषय-विकार को अन्ते दुःखदायक मानते हुए जग की आशाओं को छोड़ेगा तभी वह इन विकारों से छूटेगा —

छोड़ै जग की आस को, काम-क्रोध मिटि जाय
पलटू ऐसे दास को, देखत लोग डराय।

अब देखिये सन्त मलूकदास जी क्या कहते हैं -

संत मलूकदास

मलूकदास जी कहते हैं कि जिसने 'काम' विकार को जीत कर प्रभु प्रेम नहीं किया, उनके नैनों में छाले पड़े हैं -

प्रेम नेम जिन ना कियो, जीतो नाहीं मैं^{२७}
अलख पुरुष जिन ना लख्यो, छार परो तेहि नैन।

मलूकदास जी काम विकार को अमल अर्थात् नशा मानते हुए कहते हैं कि इस कलिकाल में सारा संसार इस नशे में पड़ा हुआ है परन्तु मलूक दास जी भी काम विकार की निन्दा करते-करते नारी शब्द का प्रयोग कर बैठे हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य केवल एक परब्रह्म परमेश्वर ही की शरण लेने से इस महाविकार से छूट सकता है -

नारी नाहिं निहारिये, करै नैन की चोट
कोई इक हरिजन ऊबरे, पारब्रह्म की ओट
नारी घोंटी अमल की, अमली सब संसार
कोई ऐसा सूफी न मिला, जो संग उतरै पार।

अतः वह तो एक प्रभु से प्रीति जोड़ने को कहते हैं ताकि
काम विकार जल जाय और पाप का पहाड़ चकनाचूर हो जाय।

राम नाम एकै रती, पाप के कोटि पहाड़
ऐसी महिमा नाम की, जारि करै सब छाड़

अब देखिये सहजोबाई क्या कहती हैं -

सहजो बाई

कामी मति भिड़ल सदा, चले चाल विपरित
सील नहीं सहजो कहे, नैन माहि अनीत।

सहजो बाई कह रही हैं कि 'कामी' व्यक्ति की मति भ्रष्ट होती है, उसका चाल-चलन विपरीत होता है और उसकी नयनों में अनीति होती है अर्थात् उसकी दृष्टि विकारी होती है। सहजो बाई कहती हैं कि जिसके मन की जैसी वासनाएँ होती हैं, वह वैसी जगहों पर जाता है और उसकी वैसी ही गति भी होती है -

सहजो रहै मन बासना, तैसो पावै ठौर
जहाँ आस तहाँ वास है, निस्वै करी करोड़।

अतः सहजोबाई यह सम्मति दे रही हैं कि काम, क्रोध इत्यादि को छोड़ कर अब प्रभु के प्रेम में दीवाने बनों-

काम क्रोध लोभ मोह मद, तजि भज हरि को नाम
निस्वै सहजो मुक्ति हो, तहै अमरपुर धाम।

प्रेम दिवाने जो भये, मन भयौ चकनाचूर
छके रहै घूमत रहै, सहजो देखि हज़ूर
प्रेम दिवाने जो भये, कहै बहते नैन
सहजो मुख हांसी छुटै, कबहुँ टपकै नैन।

इस प्रकार सहजोबाई भी प्रभु प्रेम में ही छके रहने के लिए कहती हैं। अब भक्तिन दया बाई के भक्ति-काव्य में काम-विरोधी पदों पर ध्यान दीजिए -

दया बाई

काम क्रोध मद लोभ नाहि, खर विकार करि हीन
पथ कुपथ न जानही ब्रह्म भाव रस लीन।

वह कहती हैं कि जो ब्रह्मधाम लौटने के संकल्प में निष्ठ रहता है, उसमें षट (छहों) विकार नहीं होते। कलियुगी लोग जिस कुपथ पर चल रहे हैं अथवा द्वापर

युगी लोग जिस रजोगुणी पथ पर चलते थे, वे उनसे ऊँचा उठकर सन्मार्ग पर चलते हैं। सर्व गुणों के स्रोत परमात्मा की प्रीति में अथवा भगवत् गुणानुवाद में यही तो विशेषता है कि जैसे मलयागिरी पर चन्दन के वृक्षों के निकट आये वृक्षों में भी सुगंध आ जाती है अथवा पारस के साथ लगकर पत्थर भी कँचन बन जाता है, वैसे ही सर्व गुणों के स्रोत प्रभु के संग से मनुष्य भी पावन बन जाता है; उसके मन से अज्ञानान्धकार भाग जाता है। दयाबाई के अपने शब्द ये हैं -

मलयागिरि के निकट ही, सब चन्दन है जात
छूट करम कुवासना, महा सुगंधि महाकांत
लोहा पारस के निकट, कंचन ही सो होय
जितना चाहें लै करै, लोहा कहै न कोय
जैसे सूरज के उदय, सकल तिमिर नसि जाय
मिह तुम्हारी हे प्रभु, क्यों अज्ञान रहाय।

दया बाई ने तो कह ही दिया है कि प्रभु से मन जोड़ने से मन निर्विकार होगा और उसमें गुणों की सुगंध आयेगी।

अब बिहार के प्रसिद्ध सन्त दरिया साहिब के वचनों को ही देखिये -

दरिया साहिब (विहार वाले)

काम क्रोध मद लोभ तज, गरब²⁸ गरूरी झारि
विमल प्रेम मनि वारि के राख दृष्टि उजियारि²⁹

और देखिये -

कनक कामिनि के फँदे में, लालची मन लपटाय
कलपि कलपि जिव जाय है, बिर्या जनम गँवाय
मातु पिता सुत बाँधवा, सब मिलि करै पुकार
अकेला हंस चलि जातु है, कोई नहि संग तुम्हार।

दरिया साहिब कहते हैं संसार कनक और कामिनि के फँदे में जन्म को यों

28. गर्व।

29. दृष्टि को पवित्र बनाओ अर्थात् वासना, मोह, घृणा आदि की दृष्टि से न देखो।

ही गंवा रहा है; वह यह भूल गया है कि आखिर एक दिन यह सभी दैहिक नाते छोड़कर आत्मा रूप हूँ अकेला ही उड़ जायेगा। यही बात संत चरनदास जी कह रहे हैं -

सन्त चरनदास

तन मन जरै काम ही, चित करि डाँवाँडोल
धरम सरम सब खोय के, रहै आप हिय खोल।

संत चरनदास जी वासना-भोग को धर्म-शर्म खोने के तुल्य मान रहे हैं और वे कहते हैं कि ईश्वरीय स्मृति में मन न टिकने का कारण यही तो है कि मनुष्य का मन इन्द्रियों के वश है। ये पद पढ़िये।

इन्द्रियन के बस मन रहै, मन के बस रहै बुद्धि
कहो ध्यान कैसे लगै, ऐसा जहाँ विरुद्धि।

अतः जो प्रभु-भक्त है, उन्हें अपनी बुद्धि में यह भाव ठोक-ठोक कर बैठाना चाहिए कि जब तक मन रूप दर्पण स्वच्छ नहीं हुआ है तब तक मनुष्य ईश्वरीय आनन्द का रसास्वादन नहीं कर सकता।

सन्त दादू दयाल ने इस विषय में क्या लिखा है, उसे देखिये -

सन्त दादू दयाल

जिसका दर्पण ऊजला, सो दर्पण देखै माहि,
जिसकी मैली आरसी, सो मुख देखै नाहि।

अब प्रश्न उठता है कि मन उजला कैसे हो? उसके बारे में दादू जी यों कहते हैं कि तन-मन को करीम (प्रभु) के काम ले आओ, इसी में भलाई और शोभा (नीका) है और पुरुषों में से एक उत्तम पुरुष परमात्मा ही की नारी बन जाओ-

तन मन काम करीम के, आवै तो नीका
जिसका तिस को सौपिये, सोच क्या जी का।
मेरे हिरदे हरि बसें, दूजा नाहि और

कहो कहाँ धौं राखिये, नहीं आन की ठौर।

पुरुष हमारा एक है, हम नारी बहु अंग
जे जे जैसी ताहि सौं, खेलै तिस ही रंग।

अतः दादू जी कहते हैं कि उस एक प्रभु ही को मन में बसा लो वरना यदि काम-दाम के कुकृत्य में लगे रहे और सुकृत्य कुछ भी न किया तो क्या साथ ले जाओगे?

आदि अन्त लौं आइ करि, सुकिरत³⁰ कछू न कीन्ह
माया मोह मद मंछरा, स्वाद स्वाद सबै चित दीन्ह।

अब दादू जी का विचार तो यही है कि राम-नाम की औषधि लो ताकि कोटि-कोटि विकार मिट जायें—

राम-नाम निज औषधि, काटै कोटि विकार
विषम व्याधि धौं ऊबरे, काया कंचन सार।

बुल्ले शाह भी यही कह रहे हैं कि एक प्रभु पर आशिक हो जाओ। भले ही लोग इस पर आपकी निन्दा करेंगे और आपको 'प्रभु-स्नेही' कहने की बजाय 'काफिर' ही कहेंगे परन्तु आप उनकी इस निन्दा को सुनते हुए भी 'जी हां', 'जी हां' कहते हुए प्रभु-प्रीति की रीति निभाते चलो —

बुल्ले शाह

बुल्ला आसिक³¹ होयों रब्ब³² दा, मुलामत³³ होई लाख
लोग काफिर³⁴ काफिर आखदे³⁵ तूं आहो³⁶ आहो आख।

अब किन्चित तुलसी साहिब (पूना वाले) के वचनों को पढ़िये —

30. सुकृत, श्रेष्ठ कर्म

31. आशिक

32. भगवान

33. निन्दा

34. नास्तिक

35. बोलते

36. जी हां

तुलसी साहिव³⁷

तुलसी साहिब कहते हैं कि जब यह आत्मा पहले-पहले ब्रह्मलोक (वतन) से आयी थी, तब यह पवित्र थी परन्तु बाद में यह अपनी पवित्र चाल भूल गयी और यह अज्ञान के कारण ही लज्जा-शर्म छोड़कर विलासिता में पड़ गयी—

उजला आया वतन³⁸ से, जतन किया करि काल

चाल भुलाई आपनी, यों भये बन्धन जाल।

इन्द्री सुख रस रीति में, विलसत जन्म सिराय

कहा कहूं अज्ञान को, नेक न मन सरमाय।

यह अज्ञानी जीव की, क्यों कर करूं बखान

अपनी बुद्धि विकार की, करै न मन पहिचान।

यह जग जीव चिरकाल से, भटकत फिरैं निकाम

काम बाम³⁹ मन में बसै, जुग जुग से भरमान

मनुष्य की इस मनोदशा का ठीक ही तो चित्रण किया गया है। तुलसी साहिब कहते हैं कि मनुष्य का सद्विवेक बिल्कुल ही नष्ट हो गया है। वह कर तो रहा है विकर्म ही परन्तु जीवन में चाहता है शान्ति और आनन्द! यह तो वैसी ही बात हुई कि जैसे कोई खाये तो नींबू और आशा करे मीठे स्वाद की!

मन राखत वैराग में, घर में राखत रौंड,

तुलसी बिड़वा नीम का, चाखन चाहत खाण्ड।

हमने ऊपर कुछेक कवियों की वाणियों में से प्रसंगानुसार कुछ उद्धरण दिये हैं। इन्हीं की तरह ही अन्य भक्तों के भी बोल हैं। उदाहरण के तौर पर रसखान को ही लीजिये। वह तो कृष्ण-भक्ति में लवलीन थे, यहाँ तक कि वह कहते हैं कि मैं नन्द की लाठी और कम्बल (कामरिया) पर तीन लोकों का राज भी वारने को

37. यह रामचरित मानस के रचयिता गोसाईं तुलसीदास से भिन्न हैं। इनका जन्म पूना में हुआ था और यह हाथरस में जाकर बसे थे तथा इन्होंने 'घट रामायण' रची थी।

38. निज धाम अर्थात् ब्रह्मलोक।

39. स्त्री, अर्थात् (दो) युगों से मनुष्य के मन में काम और स्त्री ही बस रहे हैं।

तैयार हूँ और यदि एक ओर मुझे अष्ट सिद्धि और नव निधि मिले तथा दूसरी ओर श्रीकृष्ण के साथ गौएँ चराने का काम तो मैं अष्ट-सिद्धि और नव निधि की बात बिसार कर गौएँ चराना ज्यादा पसन्द करूँगा।

वा लकुटी कामरिया पर राज तिहुं पुर को तजि डारौं।
आठहुं सिद्धि नवौ निधि को सुख नंद की गई चराइ बिसारौं॥
रसखानि जबै इन नैनन तें ब्रज के बन-बाग निहारौं।
कोटिक ये कलधौत के धाम करील की कुँजन ऊपर बारौं॥

आगे रसखान कहते हैं कि जिसका पार गणेश, सुरेश, शुक्रदेव, व्यास आदि भी नहीं पा सके और जिसे वेद ज्ञान का सागर मानते हैं, वही जिसे अहीर की छोरियां छाछ पर नाच नचाती हैं, उस पर मैं कोटि-कोटि काम-कला वारता हूँ -

शेष गणेश महेश दिनेश, सुरेशहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड, अच्छेद अभेद सुवेद बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रहैं, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोरीयाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥
धूरि भरे अति सोभित स्यामजू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अंगना पग पैजनी बाजती पीरी कछोटी ॥
वा छवि को रसखानि विलोकत वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि-हाथ सो लै गयौ माखन रोटी॥

आदि शंकराचार्य के विचार

अद्वैत वेदान्त के अथक एवं प्रबल प्रचारक आदि शंकराचार्य के तो अपने जीवन-वृत्त से ही यह बात भली-भाँति सिद्ध हो जाती है कि ब्रह्मचर्य-पालन के मामले में उनकी निष्ठा कितनी दृढ़ थी। बहुत-से लोगों को शायद यह मालूम नहीं होगा कि शंकराचार्य जी ने विवाह और विकार से बचने के लिए किस प्रकार चतुराई से काम लिया था। इसलिए हम संक्षेप में तत्सम्बन्धी वृत्तान्त का यहाँ

उल्लेख कर रहे हैं:-

बात यह है कि शंकराचार्य जी अपनी माता की एकमात्र सन्तान थे। शंकराचार्य अभी तीन वर्ष के ही थे कि उनके पिता का देहान्त हो गया। जब वे बड़े हुए तो माता बाल्यावस्था में ही उनका विवाह करके पुत्र-वधू का मुख देखना चाहती थी। परन्तु शंकराचार्य 'काम' विकार के जाल से बचना चाहते थे। उसके लिए वे सोचते रहते थे कि किस युक्ति से अपनी माता से इसके लिए स्वीकृति लें कि वे विवाह नहीं करेंगे। अब एक दिन ऐसा हुआ कि माता और पुत्र दोनों ही ग्राम के समीप आलवाई नदी पर स्नान करने गये। माता स्नान करके कपड़े बदल रही थी। शंकर नदी में स्नान कर रहे थे। उन्होंने एका-एक करुण-क्रन्दन करते हुए कहा -

“माँ, ओ माँ, अब मेरा अन्त समय आ गया है, मुझे मगरमच्छ पाँव से पकड़ कर ले जा रहा है।”

ये शब्द सुनते ही माँ ने रोना-चिल्लाना शुरू कर दिया।

परन्तु शीघ्र ही शंकर ने कहा - “मेरे बचने का एक ही उपाय हो सकता है, माँ! बस, कह दो कि तुम मुझे प्रभु के अर्पण करती हो। माँ, अब देर करने का अवसर नहीं। तुम यदि तुरन्त ही मुझे संन्यास के लिए आज्ञा दे दोगी तो हो सकता है कि प्रभु मुझे अपनी शरण में मान कर मगरमच्छ से मेरी रक्षा करें।”

माता बेचारी मजबूर थी। वह तो पुत्र को जीवित देखना चाहती थी, फिर चाहे वह विवाह करे या संन्यास ले। उसने शंकर को संन्यास की स्वीकृति दे दी। उस समय शंकर की आयु आठ ही वर्ष की थी। “आज यदि कोई बालक या बालिका आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने का संकल्प ले तो उसके माता-पिता ही मगर-मच्छ की तरह उसके पाँव पकड़ कर उसे विषय-विकार के भँवर में ले जाने का यत्न करते हैं, और तो क्या, यदि वह पवित्र जीवन के लिए अपने संकल्प में दृढ़ रहता है तो उसे मारते-पीटते तक हैं और कहते हैं कि अभी यह व्रत लेने के लिए तेरी आयु थोड़े ही है?” अब देखिये कि शंकराचार्य जी ने काम विकार के बारे में क्या कहा है -

कामः क्रोधो लोभदम्भाद्यसूया-

अहंकारेर्ष्यामत्साद्यास्तु धोराः

धर्मा एतं राजसाः पुम्प्रवृत्ति-

यस्मादेषा तद्रजो बन्धहेतुः (11.114 वि.चू.)

इसमें शंकराचार्य जी ने कहा है कि काम, असूया इत्यादि घोर कर्म हैं, ये पाप कराने वाले हैं। ये ही मनुष्यात्मा के बन्धन के कारण हैं। उन्होंने अपने एक ग्रन्थ में इन विषय-विकारों को काले सर्प के विष से भी अधिक घातक विष माना है और कहा है कि ये विषम विषय मनुष्य को 'मलीन-बुद्धि' बना देते हैं और उसके लिए पग-पग पर 'मृत्यु' रूप होते हैं। ध्यान दीजिये -

दोषेण तीव्रो विषयः कृष्ण सर्प विषादपि।

विषं निहन्ति भोक्तारं द्रष्टारं चक्षुषाप्ययम् ॥79॥ (वि.चू.)

पुनश्च- विषम विषय मार्गेर्गच्छतोऽनच्छ बुद्धेः

प्रतिपदमभियातो मृत्युरप्येष विद्धि ॥83॥ (वि.चू.)

अतः शंकराचार्य जी ने कदम-कदम करके मृत्यु की ओर ले जाने वाले इस विकार को छोड़ने के लिए कहा है, परन्तु इसे छोड़ें कैसे? शंकराचार्य कहते हैं कि काम-विकार का मूल कारण तो देह-अभिमान ही है। अतः देहाभिमान को छोड़ कर आत्मा-निश्चय (Soul-Conscious) बनो। उनके वचन हैं-

देहात्मना संस्थित एवं कामी

विलक्षणः कामयिता कथं स्यात्।

अतोऽर्थसन्धानपरत्वमेव

भेदप्रसक्त्या भवबन्धहेतुः ॥812॥ (वि.चू.)

अर्थात् देहाभिमान ही 'कामी' होता है। देह से स्वयं को विलक्षण अथवा न्यारा समझने में 'काम' विकार कैसे हो सकता है? अतः वे देह के प्रति घृणा पैदा करते हुए निम्नलिखित शब्दों में कामी मनुष्य को 'मूढ़ बुद्धि' कहते हुए आत्म-निष्ठ होने का उपदेश देते हैं-

त्वन्मासमेदोऽस्थिपुरीषराशा-

वहंमति मूढजनः करोति।

विलक्षणं वेत्ति विचारशीलो

निजस्वरूपं परमार्थं भूतम् ॥ 161 ॥ (वि.चू.)

इसका अर्थ यह है - “त्वचा, माँस, मेद, अस्थि और मल की राशि रूप देह में मूढजन अहं बुद्धि करते हैं। विचारशील तो अपने परमार्थिक स्वरूप को इससे पृथक् ही जानते हैं। अतः शंकर कहते हैं-

अत्रात्मबुद्धि त्यज मूढ बुद्धे

त्वन्मांस मेदाऽस्थिपुरुष राशी ॥ 62 ॥ (वि.चू.)

“अरे मूर्ख! इस त्वचा, मांस, मेद, अस्थि और मलादि के समूह में आत्मबुद्धि छोड़ और निर्विकल्प होकर शान्ति को प्राप्त करो।

कुछ लोग कहते हैं कि ‘हम एकदम थोड़े ही ‘काम’ विकार को छोड़ सकते हैं। जिस समय वासना का हम वेग महसूस करते हैं, तब तो उसका समाधान करना ही होता है; वैसे हम कोशिश करते हैं कि यह हमसे छूट जाये।’ शंकराचार्य कहते हैं कि विषय का भोग करना समस्या का समाधान नहीं है -

सर्वदा स्थापन बुद्धे शुद्धे-ब्राह्मणि सर्वथा।

तत्सामाधानमित्युक्तं नत चित्तस्य लालनम् ॥ 27 ॥ (वि.चू.)

अन्यश्च-वासनावृद्धिः कार्यं कार्यं वृद्धयया च वासना।

वर्धते सर्वथा पुंसां संसारो न निवर्तते ॥ 54 ॥ (वि.चू.)

संसार बन्धविच्छिद्यैतद्वयं प्रदहेद्यतिद्विः।

वासनावृद्धिरेताभ्यां चिन्तया क्रियाया बहिः ॥ 15 ॥ (वि.चू.)

अर्थात् चित्त की वृत्ति के लालन से उसका समाधान नहीं होता बल्कि समाधान तो अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित होने से होता है। वासना से तो कार्य बढ़ता है और कार्य से पुनः वासना बढ़ती है और, इस प्रकार, दोनों ही बढ़ते हैं।

अतः संसार के बन्धन से छूटने की इच्छा वाला विषयों का चिन्तन और उनकी बाह्य क्रिया दोनों ही को मिटाता है।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कहते हैं – “हम वेद, शास्त्र, दर्शन इत्यादि का अध्ययन करने वाले हैं। हम उनका अर्थ जानते हैं। हमारा विचार है कि शास्त्रों में काम विकार को पूर्णतः छोड़ने के लिए नहीं कहा गया है।’ परन्तु शंकराचार्य कहते हैं कि जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता अथवा जो वासना वाला तथा अभिमानी है, वह शास्त्रों के अर्थ को समझ ही नहीं सकता। वह चाहे कितने ही वेद शास्त्र क्यों न पढ़ा हुआ हो, वह विषयी व्यक्ति कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। वह कहते हैं –

1. प्रज्ञावानपि पण्डितोऽपि चतुरोऽयन्त सूक्ष्मार्थदृग्
व्यालीस्तमन वेत्ति बहुधा सम्बोधितोऽपि स्फुटम्।

2. भ्रान्त्यारोपितमेव साधुकलयत्यालबते तद्गुणान्
हन्तासौ प्रबला दुरन्तमसः शक्तिमर्हत्यावृत्तिः ॥ 16 ॥ (वि.चू.)

3. देहेन्द्रयादावसति भ्रमेदित्ता
विद्वानहन्तां न हजाठाति यावत्।

तावन्न तस्यास्ति विमुक्ति वार्ता-

प्यस्त्वेष वेदान्तनयान्तदर्शी ॥ 64 ॥ (वि.चू.)

अर्थात् तमोगुण या वासना से ग्रस्त हुआ मनुष्य अति बुद्धिमान्, विद्वान्, चतुर और शास्त्र के अत्यन्त सूक्ष्म अर्थों को देखने वाला भी हो तो भी वह नाना प्रकार से समझाने पर भी अच्छी तरह नहीं समझता; वह भ्रम से अपने ऊपर कई उपाधियाँ आरोपित करता है। ओहो, दुरन्त तमोगुण या वासना की यह महति आवरण शक्ति बड़ी ही प्रबल है। सच है कि जब तक विद्वान् असत् देह और इन्द्रियों में भ्रम से उत्पन्न हुई अहन्ता को नहीं त्यागता तब तक वह वेदान्त-सिद्धान्त का पारदर्शी क्यों न हो, उसकी मुक्ति की कोई बात ही नहीं है।

अब देखिए कि स्वामी रामतीर्थ ब्रह्मचर्य के बारे में क्या कहते हैं –

स्वामी रामतीर्थ

“सफलता की पहली शर्त ब्रह्मचर्य है। भले ही आप नये विचारों के हों या पुराने विचारों के, भले ही आपकी पुस्तकों ने उसका महत्त्व बतलाया हो या न बतलाया हो — राम आपको कहता है कि सफलता के लिए पवित्रता तथा ब्रह्मचर्य की नितान्त आवश्यकता है। यदि भारतीय बचे रहना चाहते हैं, तो ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखें अन्यथा कुचले जायेंगे।”

उपरोक्त वचनों को स्पष्ट करते हुए स्वामी रामतीर्थ जी ने दीपक का उदाहरण देते हुए इस प्रकार कहा है:-

“यह दीपक है। आपके सामने यह जल रहा है। यह क्यों जलता है? इसके मध्य भाग में तेल भरा हुआ है। यह तेल बत्ती के द्वारा ऊपर चढ़ता है तथा ऊपर आ कर प्रकाश के रूप में बदल जाता है। अगर इसके तेल वाले हिस्से में कोई छेद हो जाये, तो इसका तेल शनैः-शनैः बह जायेगा। फिर इस दीपक से प्रकाश नहीं होगा। यही अवस्था आपकी है। यदि व्यक्ति विपरीत आचरण करेगा, तो उसकी दशा तेल-हीन दीपक-जैसी होगी। जिसके शरीर से अपवित्र कृत्य नहीं होते, जिनके मन में अपवित्र विचार उत्पन्न नहीं होते, उनके भोजन का सार, रस, रक्त, माँस-मेद, अस्थि-मज्जा, शुक्र बनता है और अन्त में शुक्र मस्तिष्क में चढ़ कर बुद्धि के रूप में परिवर्तित हो जाता है।” फिर संयमी गृहस्थ और सन्तति निरोध की चर्चा करते हुए वे कहते हैं -

“यदि जन-संख्या की समस्या सुलझाये बिना छोड़ दी जाती है तो राष्ट्रीय एकता की सारी बातें और आपसी मेल-जोल के सभी नारे कल्पना के महल सिद्ध होंगे, हमें इस कठिन पहेली को अवश्य सुलझाना होगा; अन्यथा हम मर जायेंगे।” आगे संयम की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा है -

“एक समय था जब अधिक सन्तान होना वरदान समझा जाता था। परन्तु वे समय अब बीत गए। अब तो बिल्कुल विपरीत स्थिति हो गयी है। और अधिक भीड़ वाली जनसंख्या को देखते हुए, बड़ा परिवार होना एक शाप हो

गया है। विचारहीन व्यक्ति जो अब भी बचकाना विचार से चिपटा हुआ है कि मृत्यु के बाद स्वर्ग में उसका स्थान तभी सुरक्षित रह सकता है यदि उसके काफी बच्चे हों – उस व्यक्ति को अब अपनी आँखें खोलनी चाहिए और देखना चाहिये कि यहाँ तक कि मृत्यु से पूर्व ही वह अपने घर को नरक बना रहा है; क्योंकि आधुनिक भारत में वह अधिक सन्तान उत्पन्न कर रहा है। हमें अपने देश से इस सबसे बड़े बरबाद करने वाले सिद्धान्त को सर्वथा दूर कर देना चाहिए जो अब तक हमें अपने प्रवाह में बहाता रहा है— “विवाह करो, अज्ञान से सन्तान की खूब वृद्धि करो और बन्धन में मर जाओ!” अब हम अपने पिछड़ेपन के लिए मुसलमान शासकों को दोष देते हैं, फिर हम ब्रिटिश सरकार पर दोष लगाते हैं, इसके बाद हम भारतीय धर्मों को इसके लिए उत्तरदायी बनाते हैं, इसके उपरान्त हम शिक्षा प्रणाली पर दोषारोपण करते हैं। इस प्रकार की आलोचना में शायद हम कुछ हद तक ठीक भी हो सकते हैं, परन्तु वास्तविक दोष हमारी अपनी अपवित्रता का है जो विश्व के सबसे पवित्र सम्बन्धों को भी दोषपूर्ण बना देती है...।’

इसके आगे वे इसी विषय में बहुत ही महत्वपूर्ण एवं कुरीतियों के कलंक को मस्तक से धो डालने वाले ये शब्द कहते हैं –

विवाह सम्बन्ध – “इस अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा सभी संस्थाओं से पवित्र संस्था की ओर हम अत्यन्त असावधानी से, अत्यन्त अवैज्ञानिकता से तथा अत्यन्त लज्जाजनक ढंग से ध्यान देते हैं। आपकी तमाम जन्मपत्रियों, ज्योतिषियों की गणनाओं, लग्न-मुहूर्त को पूर्ण करने के बावजूद-भारत में विवाह असमय होते हैं, अशुभ और अपवित्र होते हैं। कोई भी ग्रह-नक्षत्र अपने पवित्र गृहों में निवास नहीं करते, जब वे देखते हैं कि उनके नाम पर जोड़े विवाह करने जा रहे हैं। वे ग्रह-नक्षत्र अपनी-अपनी स्थितियों में विचलित होते और कांप उठते हैं, क्योंकि ये विवाह पशुओं से भी हीन होते हैं। एक जोड़े के विवाह को, जोकि अपना निर्वाह करने की भी क्षमता नहीं रखता, उन्हें पवित्र बनाने की अपेक्षा, विवाह के समय उच्चारण किये गये मन्त्र अपने गुणों को खो देते हैं और वे अपनी शक्ति खोकर व्यर्थ हो जाते हैं। फूल अपने सौन्दर्य को कैसे धारण कर सकते हैं जबकि उनका उपयोग उस अपवित्र संस्कार में किया जा रहा हो जो दो दिवालिया व्यक्तियों को

जोड़ने के लिए किया गया हो ताकि वे अयोग्य, असमर्थ, मूल्यहीन, बेकार सन्तान को पैदा करके देश की जन-संख्या की भीड़ को और अधिक बढ़ा सकें।’

फिर राम तीर्थ जी ने युवकों से बड़े जोरदार शब्दों में अपील की है। अब उस अपील से प्रेरणा लीजिये —

नवयुवकों से अपील

“नवयुवको! बन्द करो, इसे बन्द करो! और नौजवानो! आप ही भारत के भविष्य की आशा हो! आप ही इसे बन्द करो। समाचार के नाम पर, भारत के नाम पर, अपने लिये तथा अपने उत्तराधिकारियों के लिये मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि देश में अविवेकपूर्ण, असमय, अन्धाधुन्ध विवाहों को बन्द करो। ऐसा (बन्द) करोगे तो इससे जनता पवित्र हो जायेगी और कुछ हद तक इस से जन-संख्या की समस्या हल होगी।

मान लीजिये कि ये सुझाव अस्वाभाविक हैं — कुदरत के खिलाफ हैं, परन्तु यदि ऐसा सोच कर आप अन्धाधुन्ध विवाहों को और अविवेकपूर्ण सन्तानोत्पत्ति को जारी रखेंगे तो आपको अकाल और मृत्यु का शिकार होने के रूप में दण्ड मिलेगा। यह कोई अत्युक्ति नहीं है, यह एक कठोरतम सत्य और क्रूर वास्तविकता है... पुनः पवित्रता के महत्त्व को जतलाते हुए तथा काम विकार की निन्दा करते हुए वे कहते हैं —

“हरबर्ट स्पेंसर ने अपने ‘शरीर विज्ञान के सिद्धान्त’ में दिखलाया है कि ऊँचे दर्जे के मानसिक विकास में सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति कम हो जाती है। हम कब तक इतने नीचे गिरे रहेंगे और पशुओं की तरह सन्तान पैदा करते रहेंगे? हमारे अपने शास्त्रों के अनुसार भी ब्रह्मचर्य की बड़ी महिमा कही गयी है। शास्त्र इसकी महिमा करते नहीं थकते। पवित्रता के बिना मनुष्य में न तो शारीरिक शक्ति हो सकती है और न आध्यात्मिक शक्ति।आपको काम-सम्भोग सम्बन्धी इच्छा को वश करना ही होगा। जो पाशविक इच्छा को वश में नहीं कर सकता, वह मूर्ख है।... ‘पाशविक’ विशेषण यह बतलाता है कि काम-वासना की इच्छा नीचे दर्जे की इच्छा है।... मानव को पशुओं की अपेक्षा

ऊँचा समझा जाता है; परन्तु उसी परिमाण में, जहां तक कि वह विवेक द्वारा अपनी वासनाओं को वश में रख सके। परन्तु जो मनुष्य पशुओं के समान नीचे हो, जो अन्धाधुन्ध सन्तान पैदा करता जाय, वह तो पशु से भी नीचे गिर जाता है। पवित्रता...पवित्रता संगीनों के जोर से आपको पवित्रता की रक्षा करनी होगी। नहीं तो विकास के संघर्ष का निर्दय चक्र आपको कुचल देगा। आज आपकी आशा का आधार एकमात्र पवित्रता ही है।...हे भारत के लोगो ! यदि आप में संयम का अभाव रहा तो आप जीवित नहीं रह सकते। यह कहना आपको कठोर लगता होगा; परन्तु आपको संयम (इन्द्रिय निग्रह) अपनाना ही होगा। आपको अपने शरीर के लिये, आपको अपने मस्तिष्क के लिये, आपको अपने धर्म के लिये, इस संसार के लिए और परलोक के लिए – आपको पूर्णतः पवित्र आचरण वाला बनना होगा...।’

अब किंचित यह जान लीजिये कि आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द जी ने ‘ब्रह्मचर्य-पालन’ के विषय में क्या कहा है।

स्वामी दयानन्द

स्वामी दयानन्द जी की जीवन-कहानी में स्वामी सत्यानन्द जी ने ‘वैराग्यवान दयानन्द’ के बारे में लिखा है कि – “इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहां दयानन्द जैसे वैराग्यवान वीरों को स्नेह-बन्धन में बांधने के लिये, बन्धुवर्ग विवाह-शृंखला को सर्वोत्तम समझते हैं। इस परम्परा-प्राप्त पद्धति पर दयानन्द जी के माता-पिता आरूढ़ हो गये और लगे शीघ्रता से उनके विवाह का उद्योग करने। उन्होंने स्थिर कर लिया कि बीसवें वर्ष में ही पुत्र का विवाह कर दिया जायेगा।... दयानन्द जी ने सोचा कि उन्हें सदा के लिये जकड़ने के निमित्त यह कड़ी जंजीर तैयार की जा रही है। इसलिए उन्होंने मित्रों द्वारा इसका घोर विरोध किया और पिता से निवेदन किया कि वे उन्हें विद्या-अध्ययन के लिये काशी भेज दें.. परन्तु उनके माता-पिता ने स्पष्ट कह दिया कि – “तुम्हारे काशी-गमन में गृह-त्याग की झलक है। अब हम तो तुम्हारा विवाह करके रहेंगे।” दयानन्द जी के बहुत आग्रह करने पर उन्हें पास के किसी गांव में एक विद्वान के

पास भेज दिया गया परन्तु जब एक बार उनके गुरु ने भी विवाह की बात की तो दयानन्द जी ने उसे भी बताया कि “मेरे मन में विवाह के लिये बहुत घृणा है।” जीवन-कहानी में लिखा है – “दयानन्द जी के मन में जो वैराग्य समाया हुआ था, उसमें उनके साथ कोई इष्ट मित्र सम्मिलित न था। सब उनके विवाह के पोषक थे। अतः उन्होंने सोचा कि यदि मैं घर में रहूँ तो माता-पिता तो विवाह किये बिना रुकेंगे नहीं, ये जितने लोग मेरे विवाह के बन्धन बांध रहे हैं, ये मेरा ब्रह्मचर्य-व्रत भंग करना चाहते हैं, मेरा भविष्य बिगाड़ना चाहते हैं।” अतः कोई बाईस वर्ष की आयु में वे घर से निकल गये...। आखिर सिद्धपुर के मेले में उनके पिताजी चार सिपाहियों के साथ आये और उन्होंने दयानन्द जी को एक शिवालय में बैठे पा लिया। पिताजी ने क्रोध में आकर दयानन्द जी को बहुत डाँटा-डपटा। उन्होंने यह भी कहा कि – “तूने सदैव के लिये हमारे वंश को दूषित कर दिया है। तू हमारे कुल को कलंक लगाने वाला जन्मा है।” अपने पिता के आवेश से बचने के लिये, दयानन्द जी ने एक बहाना बनाया। अपने आसन से उठकर, पिता के दोनों चरण पकड़ कर वे बोले – “मैंने गृह-त्याग तो धूर्त लोगों के बहकाने से किया है। मैं अपने कर्म का पर्याप्त फल पा चुका हूँ। मैंने दुःख उठाये हैं। मुझे क्षमा कीजिये” परन्तु पिता जी ने उन पर पहरा लगाये रखा। तो भी तीसरे दिन जब पहरेदार गहरी नींद में थे, दयानन्द जी ने एक चाल चली। उन्होंने हाथ में पानी का एक लोटा भरकर ले लिया ताकि यदि कोई जाग गया तो उसे कह दिया जायेगा कि शौच के लिये जा रहे हैं, वरना तो आज भाग निकलेंगे ही। सो, यह बहाना बनाकर वे भाग गये...।

देख लीजिए कि ब्रह्मचर्य व्रत को बनाये रखने के लिये उन्होंने कितना परिश्रम किया ! इस से ब्रह्मचर्य के विषय में उनके विचार स्पष्ट हैं। फिर उन्होंने ‘सत्यार्थ प्रकाश’ में भी तृतीय सम्मुल्लास में ब्रह्मचर्य के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए स्पष्ट कहा है कि “जो विवाह करना ही न चाहें, वे मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी रहते हों तो भले ही रहें।”

अब महात्मा गांधी, जिन्होंने भी अपने जीवन में सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य के बहुत प्रयोग किये और जिन्होंने ब्रिटिश सरकार के शासन को

हिलाकर रख दिया, उनके विचारों पर भी ध्यान दीजिये। ब्रह्मचर्य की व्याख्या करते हुए वे आज के दूषित वातावरण और आज की स्थिति के बारे में क्या कहते हैं, उसे पढ़िये -

महात्मा गाँधी के विचार

ब्रह्मचर्य क्या है? - ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ यह है कि पुरुष और स्त्री एक-दूसरे से भोग न करें और न एक-दूसरे को विकार की दृष्टि से देखें और न छुएं भी। उनके मन में स्वप्न में भी विकर्म के विचार न उठें। एक-दूसरे को कामुकता की दृष्टि से न देखें। ईश्वर ने जो गुप्त शक्ति हमें प्रदान की है, बड़ी दृढ़ता के साथ हम उसे संचित करें। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक ओज तथा पौरुष का आलोक प्राप्त करने के लिये हम उसका उपयोग करें...

“अब तनिक हम इस बात पर विचार करें कि हमारे चारों ओर क्या तमाशा हो रहा है? पुरुष और स्त्री, बूढ़े और तरुण, युवक और युवती, बालक और बालिकायें, सभी तो काम लिप्सा के जाल में जकड़े हुए हैं। वासना से अन्धे होने के कारण उन्हें सत्य-असत्य की पहचान तक नहीं है। वासना में ग्रसित उन्मत्त लड़के-लड़कियों को मैंने स्वयं पागलों की तरह भटकते हुए देखा है। मेरा अनुभव भी इसी तरह का है। क्षणभर के सुख के लिये हम बड़े परिश्रम से उत्पन्न की हुई अमूल्य निधि के रूप में संचित अपनी जीवन शक्ति को पल-भर में गंवा देते हैं। नशा उतरने पर हम अपना खजाना खाली पाते हैं। दूसरे दिन प्रातः हमारा शरीर भारी और सुस्त मालूम पड़ता है और दिमाग काम करने से इन्कार कर देता है।...” अब देखिये कि गाँधी जी काम विकार को अन्य विकारों का भी मूल मानते हुए क्या कहते हैं-

काम ही विकारों का मूल

“अहंकार, क्रोध, भय, ईर्ष्या, आडम्बर आदि का कारण है - ब्रह्मचर्य व्रत का भंग होना। मन के वश में न रहने से तथा बार-बार बच्चे से भी अधिक नादान बन जाने से, जाने-अनजाने हम कौन-सा पाप न कर बैठेंगे और घोर पाप करते हुए भी आगा-पीछा कैसे सोच सकेंगे?”

अब उन लोगों के प्रश्न का उत्तर गांधी जी के शब्दों में पढ़िये⁴⁰ जो यह कहते हैं कि - यदि सभी लोग ब्रह्मचर्य का पालन करने लगे तो यह संसार कैसे चलेगा?

सभी ब्रह्मचारी तो संसार कैसे चलेगा?

“परन्तु यह पूछा जा सकता है कि क्या कभी किसी ने ऐसा ब्रह्मचारी देखा है? यदि सब लोग ब्रह्मचारी बन जायें तो क्या संसार का सर्वनाश न हो जाएगा? इन प्रश्नों के धार्मिक पहलू पर विचार नहीं करना है; केवल साँसारिक दृष्टि ही से इन प्रश्नों पर हमें विचार करना है। मेरी समझ में इन दोनों प्रश्नों की तह में हमारी कमजोरी और कायरता छिपी हुई है। वास्तव में हम ब्रह्मचर्य पालन करना ही नहीं चाहते। इसलिये उससे बचने के लिए सैंकड़ों बहाने ढूँढ निकालते हैं। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने से यदि संसार नाश होता हो, तो हमें क्या? हम ईश्वर तो नहीं जो संसार की चिन्ता करें? जिसने संसार को पैदा किया है, वही उसकी रक्षा करेगा। हमें यह जानने की तकलीफ़ नहीं उठानी चाहिये कि और लोग ब्रह्मचर्य पालन करते हैं या नहीं। हम व्यापार, वकालत या डाक्टरी आदि पेशों का काम आरम्भ करते समय तो कभी इस बात का विचार नहीं करते कि यदि सभी व्यापारी, वकील या डाक्टर बन जायें, तो क्या परिणाम होगा? जो लोग वास्तव में ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहते हैं, इन प्रश्नों का उत्तर उन्हें अपने-आप मिल जाएगा।”

अब किन्चित्त उन लोगों के प्रश्न के उत्तर के बारे में भी मालूम कर लीजिये जो यह पूछते हैं कि यदि पति और पत्नी दोनों में से एक की रज़ामन्दी (स्वीकृति) ब्रह्मचर्य के लिए न हो तो क्या किया जाय? महात्मा गांधी से इस विषय में पत्र लिखकर पूछा गया था। वह पत्र इस प्रकार था -

40. If the observance of **Brahmcharya** should mean the end of the world, that is none of our business. Are we God that we should be so anxious about its future? He who creates it, will surely see to its preservation, We should not take trouble to enquire whether other people practise **Brahmcharya** or not. When we enter a trade or profession, do we ever

“पूज्य बापू, आप लिखते हैं कि संयम के पालन में एक को दूसरे की रज़ामन्दी की आवश्यकता नहीं है; क्या यह औचित्य की सीमा से आगे जाना नहीं है? पत्नी को जब तक अपने ज्ञान में साझी न बना सकें तब तक राह देखनी ही चाहिए। हिन्दुस्तान में अधिकांश अज्ञान का राज सर्वत्र फैला हुआ है और उसमें भी स्त्रियों के लिये तो पढ़ाई का एक तरह से दरवाज़ा ही बन्द है। ऐसे देश में यह मानने से कैसे काम चलेगा कि सब लोग सच्चे रास्ते की पहचान कर तुरन्त उस पर चलने लगेंगे? मैं अभी अविवाहित हूँ, पर थोड़े ही दिनों में ब्याह होने वाला है। अतः संयम की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए विवाह की सफलता पर आपके स्पष्ट विचार मुझे ज्ञात हों, इसी विचार से यह पत्र आपकी सेवा में भेज रहा हूँ।”

महात्मा गाँधी का उत्तर

“जिस संयम को दूसरों की सहमति की आवश्यकता होती है वह संयम टिक नहीं सकता और समाज को उसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। संयम की सुरक्षा तो अन्तर्नाद से ही हो सकती है। संयम का बल मन के बल पर अवलम्बित है। ‘संयम’ ज्ञान और प्रेम-मय हो, तो उसकी छाप आसपास के वातावरण पर अवश्य पड़ेगी। यहाँ तक कि विरोधी भी अनुकूल हो जाता है। पति और पत्नी के विषय में यही बात है। पत्नी तैयार न हो, तो तब तक पति को और पति तैयार न हो, तब पत्नी को रुकना पड़े — इस प्रकार, तब तो बहुत करके दोनों भोग-बन्धन से कभी छूट ही न सकेंगे। बहुत से उदाहरणों में हम देख चुके हैं कि जहां एक का ‘संयम’ दूसरे पर अवलम्बित होता है वहाँ वह अन्त में टूट ही जाता है, और यह ढिलाई और कमजोरी ही इसका प्रधान कारण है। हम यदि कुछ और अधिक गहराई में उतर कर देखें तो मालूम होगा कि जहां एक को दूसरे की रज़ामन्दी की ज़रूरत होती है, वहाँ संयम की सच्ची तैयारी या उसकी लग्न की ज़रूरत होती है...।”

आगे गाँधी जी लिखते हैं —

“ऊपर दिए गए पत्र के लेखक का रास्ता तो सीधा है। वह अभी अविवाहित

है, और यदि वे संयम की आवश्यकता का अनुमान जीवन में समझकर ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहते हैं, तो फिर वे कलह के बन्धन में ही क्यों जा रहे हैं? इस संबंध में माता-पिता और दूसरे सगे सम्बन्धी, मित्र आदि तो अपने कच्चे अनुभव के बल पर यह कहेंगे ही कि एक युवक का ब्रह्मचर्य धारण करना समुद्र मंथन करके तैरना है। यों कहकर, धमकी देकर, बिगड़ कर और दण्ड देकर भी उसे ब्रह्मचर्य के शुभ-संकल्प से डिगाने का प्रयत्न करेंगे। परन्तु जिसके लिये ब्रह्मचर्य का भंग ही सबसे बड़ा दण्ड हो, साम्राज्य पाने का प्रलोभन भी जिसे भंग करने के लिए तत्पर नहीं कर सकता, तो फिर वह किसी भी धमकी से डर कर क्यों ब्याह करेगा? जिसका आग्रह इतना तीव्र नहीं, जिसने संयम रखने में ब्रह्मचर्य का इतना बड़ा मूल्य न आंका हो, उसके लिए मेरे पास कोई औषधि नहीं...।’

अब जो लोग कहते हैं कि काम तो स्वाभाविक अथवा प्राकृतिक (Natural) है और कि भोग के बिना तो मनुष्य को कई रोग भी हो जाते हैं, अब ज़रा वे देखें कि गाँधी जी क्या कहते हैं:-

‘काम’ विकार अप्राकृतिक नहीं और काम भोगे बिना रोग की बात ग़लत है

“यदि संयम को सम्भव और श्रेयस्कर मान लिया जाय, तो हमें उसके पूरा करने योग्य बनने के साधन ढूँढ़ निकालने होंगे। यदि हम संयम से रहना चाहते हैं, तो हमें अपनी जीवनचर्या बदलनी पड़ेगी...यदि हम जननेन्द्रिय का संयम करना चाहते हैं; तो हमें अन्य सभी इन्द्रियों का संयम करना ही होगा। यदि हाथ, पैर, नाक, कान आदि सभी इन्द्रियों की लगाम ढीली कर दी जाय, तो जननेन्द्रिय का संयम असंभव है। अशान्ति, चिड़चिड़ापन, हिस्टिरिया, पागलपन आदि रोग जिनके लिए लोग ब्रह्मचर्य पालन करने के प्रयत्न का दोष लगाते हैं, वास्तव में अन्य इन्द्रियों के असंयम का फल सिद्ध होंगे। कोई भी आदमी पाप का अथवा प्राकृतिक नियमों के तोड़ने का दण्ड भोगे बिना नहीं रह सकता।

शब्दों पर मैं कभी नहीं झगड़ता, यदि आत्म-संयम, प्रकृति के नियमों का उसी प्रकार उल्लंघन है जिस प्रकार सन्तति-निरोध के कृत्रिम उपाय हैं तो भले

ही यह बात कही जाय, परन्तु मेरा ख्याल तो तब भी यही बना रहेगा कि पहला उल्लंघन कर्तव्य और श्रेयस्कर है। इसलिए कि — उससे व्यक्ति और समाज का कल्याण होता है और इसके विपरीत दूसरे से उन दोनों का पतन। बढ़ती हुई जन-संख्या का निरोध करने के लिए ब्रह्मचर्य का एक ही सच्चा रास्ता है। स्त्री संग के बाद बढ़ती हुई सन्तान रोकने के लिए कृत्रिम साधनों का प्रयोग करने से तो मानव समाज का नाश होगा।'

स्वामी रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द

अब स्वामी विवेकानन्द जी के बारे में यह तो सभी जानते ही हैं कि उन्होंने गृहस्थाश्रम में प्रवेश ही नहीं किया था। उन्होंने सन् 1886 में, जब वे 23 वर्ष के थे, संन्यास ले लिया था। स्पष्ट है कि वे ब्रह्मचर्य को ईश्वरानुभूति के लिये अत्यन्त आवश्यक मानते थे और 'काम' वासना से बच कर रहने ही की शिक्षा देते थे क्योंकि उनके गुरु — स्वामी रामकृष्ण — ने विवाह करके भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया था। वे हर नारी को माता ही की दृष्टि से देखते थे। इस विषय में विवेकानन्द जी ने अपने गुरु के बारे में, न्यूयार्क में अपने एक भाषण में जो कुछ कहा था, उसमें से कुछ अनुच्छेद यहाँ उद्धृत हैं —

“जब यह बालक मन्दिर का पुजारी था, उसी समय उसकी विचित्र प्रकार की पूजा देखकर लोगों को भ्रम हुआ कि इसके मस्तिष्क में कुछ हेरफेर हो गया है और, इसलिये, उसके कुटुम्बी उसे घर लीवा ले गये और उसका विवाह एक छोटी-सी कन्या से यह सोचकर करा दिया कि शायद इस रीति द्वारा ही इसके मस्तिष्क का सन्तुलन फिर ठीक हो जाय। परन्तु यह बालक विवाह के उपरान्त घर पर न रह कर फिर अपने काम पर वापस आ गया तथा अपने उन्माद में और भी अधिक तन्मय हो गया। इस विवाह के बारे में मेरे गुरुदेव यह बिल्कुल भूल ही गये थे कि उनकी स्त्री भी है। अपने मायके में लड़की ने यह भी सुन रखा था कि उसके पति को धर्मोन्माद हो गया है और उन्हें कुछ लोग पागल भी समझते हैं। उसने ठीक-ठीक बात का स्वयं पता लगाने का निश्चय किया। वह अपने घर से निकल पड़ी और उस स्थान पर आयी, जहाँ उसका पति

था। तब वे अपनी स्त्री के चरणों पर गिर पड़े और उन्होंने कहा “जहाँ तक मेरी बात है, जगत माता ने तो मुझे यह दर्शा दिया है कि वह प्रत्येक स्त्री में निवास करती है और, इसलिये, मैं हर स्त्री को माँ के रूप में देखता हूँ। यही एक दृष्टि है जिससे मैं तुम्हें देख सकता हूँ...।” वह बालिका अत्यन्त पवित्र तथा उदार हृदय की थी, और वह अपने पति की आकांक्षाओं को समझ सकी। उसने तुरन्त ही उत्तर दिया, “आपको सांसारिक जीवन में घसीटने की मेरी इच्छा कदापि नहीं है, बस, इतना ही चाहती हूँ कि मैं आपके समीप रहूँ, आपकी सेवा करूँ तथा आप से शिक्षा ग्रहण करूँ।” वह मेरे गुरुदेव के अनन्यतम भक्त-शिष्यों में एक बनी। इस प्रकार अपनी धर्मपत्नी के सहयोग से उनका अन्तिम विघ्न भी टूट गया और वे अपने मनोनीत पथ पर चलने के लिये स्वतन्त्र हो गये।⁴¹

अब आपने देख लिया कि स्वामी विवेकानन्द भी स्त्री-पुरुष के बीच देह-अभिमान वाले सम्बन्ध को ‘विघ्न’ मानते थे और उनके गुरु स्वामी रामकृष्ण विवाह हो चुकने के बाद अपनी पत्नी को ‘शारदा माँ’ मानते थे। इस रीति से उन्होंने काम विकार से बचने की युक्ति अपनाई थी। इस विषय में स्वामी विवेकानन्द अपने गुरु के बारे में एक अन्य स्थान पर लिखते हैं –

“...दूसरा विचार जो उनके मन में उत्पन्न हुआ, वह यह था कि ‘काम-वासना’ दूसरा शत्रु है।⁴² मनुष्य वस्तुतः आत्मस्वरूप है, आत्मा निर्लिङ्ग है, वह न तो स्त्री है न पुरुष। उन्होंने सोचा कि काम तथा काँचन के ही कारण उनको माँ के दर्शन नहीं होते। सारा विश्व माता ही का रूप है, अतः किसी स्त्री को, स्त्री भाव से कैसे देख सकता हूँ? – यह विचार उनके मन में पूर्ण रूप से जम गया था। प्रत्येक स्त्री हमारी माता है; तथा हमें उस अवस्था को पहुँच जाना चाहिये, जब कि प्रत्येक स्त्री में केवल जगन्माता का ही स्वरूप दिखे; और यह ध्येय उन्होंने

pause to consider what the fate of the world would be if all men were to do like wise? The true **Brahmchari** will, in the long run, discover for himself answer to such questions.

41. विवेकानन्द साहित्य, जन्मशती संस्करण, पृष्ठ 253-54 will, in the long run, discover for himself answer to such questions.

42. इससे पहले वे ‘धन’ को शत्रु बता आये हैं।

अपने जीवन में पूर्ण रूप से निभाया...।’⁴³

उपरोक्त से स्पष्ट है कि स्वामी रामकृष्ण तथा विवेकानन्द दोनों का यही मन्तव्य था कि जो कोई भी अपने जीवन के लक्ष्य की सिद्धि चाहता है, जो कोई परमात्मा का अनुभव करना चाहता है, उसे काम-वासना को छोड़ना ही होगा। उसके लिये उन्होंने यह युक्ति अपनाई थी कि वे हरेक नारी को ‘माता’ मानते थे। इसके अतिरिक्त वे यह भी कहते थे कि आध्यात्मिक पथ के पथिक की दृष्टि दैहिक न होकर आत्मिक होनी चाहिए।

देखिये, इस विषय में विवेकानन्द जी ने रामकृष्ण जी का जीवन परिचय देते हुए क्या कहा है –

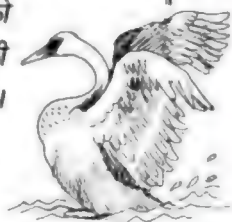
“...उनकी साधनाओं में से एक साधना स्त्री-पुरुष के भेद-भाव को समूल नष्ट कर देने की थी। आत्मा निर्लिङ्ग है, वह न स्त्री है न पुरुष। स्त्री-पुरुष का भेद केवल शरीर में ही है; और जो मनुष्य आत्म-ज्ञान प्राप्त करना चाहता है वह यह भेद-भाव कभी नहीं मान सकता। यद्यपि हमारे गुरुदेव ने पुरुष शरीर में जन्म लिया था, परन्तु फिर भी सभी विषयों में वे स्त्री-भाव लाने की चेष्टा करने लगे। वे यह सोचने लगे कि वे स्वयं पुरुष नहीं बल्कि स्त्री हैं, अतः स्त्रियों के समान ही कपड़े पहनने लगे...। इस प्रकार की निमित्त साधना के बाद उनके मन का स्वरूप पलट गया तथा वे स्त्री-पुरुष के भेद की कल्पना बिल्कुल भूल गये और इस प्रकार जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण बिल्कुल बदल गया...।’

इसी अवस्था की महिमा करते हुए, आगे विवेकानन्द जी कहते हैं –
“सोचकर देखो, उनका जीवन कितना धन्य है जिनका काम-भाव पूर्ण रूप से नष्ट हो गया है, जो प्रत्येक रमणी का भक्ती-भाव से दर्शन कर रहे हैं, तथा जिनके निकट प्रत्येक नारी के मुख ने एक ऐसा रूप धारण कर लिया है, जिसमें साक्षात् उसी आनन्दमयी भगवती जगद्धात्री का मुख ही प्रतिबिम्बित हो रहा है। हमारी दृष्टि भी इसी प्रकार की होनी चाहिये...यदि हम वास्तविक धर्म लाभ करना चाहते हैं तो इस प्रकार की पवित्रता अनिवार्य है।’

43. विवेकानन्द साहित्य, जन्मशती संस्करण (अद्वैत, आग्रम, कलकत्ता), पृष्ठ 151

इस अध्याय में हमने कुछ थोड़े ही सन्तों, आचार्यों, धार्मिक नेताओं इत्यादि के वचन उद्धृत किये हैं जिन से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने काम विकार को जीतने तथा ब्रह्मचर्य का पालन करने पर जोर दिया। इनके अतिरिक्त भी कितने ही अन्य साधु, महात्मा, सन्त, धर्म-प्रचारक हुए हैं, जिन्होंने भी ब्रह्मचर्य पर बल दिया है। यहाँ हम स्थानाभाव के कारण उनके वचन उद्धृत नहीं कर सके। परन्तु एक बात स्पष्ट है। जब सन्तों और आचार्यों ने ब्रह्मचर्य-पालन के लिए उपदेश दिया है तो परमपिता परमात्मा, जिन्हें 'पतित-पावन' कहा जाता है, ने ब्रह्मचर्य को अनिवार्य ही बताया होगा। वह तो सतयुगी दैवी सृष्टि की स्थापना करते हैं, तब अवश्य ही वे देवता बनने की शिक्षा देते हैं और ब्रह्मचर्य पालन के लिए श्रेष्ठ युक्तियाँ भी बताते हैं। हमने इस पुस्तक में उन युक्तियों का भी उल्लेख किया है।

हमारे देश में हर वर्ष जन-संख्या में जो वृद्धि होती है, वह आस्ट्रेलिया की कुल आबादी के बराबर होती है। फिर, आस्ट्रेलिया का क्षेत्रफल हमारे से दुगना है। दूसरे शब्दों में यों भी कहा जा सकता है कि हमारे देश की आबादी सारे विश्व की जन-संख्या का 15% है यद्यपि हमारे देश का क्षेत्रफल विश्व भू-क्षेत्र का लगभग 2.4% मात्र ही है। गोया हमारे देश की आबादी पहले ही बहुत गुंजान है और इस पर भी उसमें हर वर्ष अत्यन्त तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। फिर, इसमें भी विशेष शोचनीय बात यह है कि हमारे देश कि क्षेत्रफल का 50% प्रतिशत बेकार है। इस प्रकार, स्पष्ट है कि अब भारत भूमि अधिक नर-नारियों का भर वाहन नहीं कर सकती। अब जन-संख्या में इस गति से वृद्धि होने की स्वीकृति देना गोया सारे देश को एक अभूतपूर्व दुरावस्था में ले जाने के समान होगा। आपको मालूम होना चाहिए कि इ.स. 2000 में भारत की आबादी एक अरब के नज़दीक पहुँची है। आगे तो.....।



गृहस्थाश्रम में ब्रह्मचर्य

यूनान देश में सुकरात¹ (Socrates) नाम से एक प्रसिद्ध 'महात्मा' हुए हैं। उनसे एक शिष्य ने स्त्री-पति सम्बन्ध के बारे में कुछ प्रश्न किये थे। उनके बीच जो वार्तालाप हुआ था वह इस प्रकार बताया जाता है -

शिष्य ने पूछा - मनुष्य को स्त्री-प्रसंग कितनी बार करना चाहिये?

सुकरात - जीवन में केवल एक बार।

शिष्य - यदि इससे तृप्ती न हो तो?

सुकरात - तो वर्ष में एक बार

शिष्य - इतने में भी मन न माने तो?

सुकरात - महीने में एक बार।

शिष्य - फिर भी न रहा जाये तो?

सुकरात - खैर महीने में दो बार करे, परन्तु ऐसा करने वाले की मृत्यु जल्दी होगी।

शिष्य - यदि इतने पर भी इच्छा बनी रहे तो?

सुकरात - पहले कफन मंगा कर घर में रख ले, फिर चाहे जैसा किया करे!²

ऊपर जिस वार्तालाप का उद्धरण दिया गया है, वह तो द्वापर युग तथा कलियुग के लोगों के सम्बन्ध में है क्योंकि सुकरात तो पिछले 2500 वर्षों के भीतर के ऐतिहासिक काल में ही हुए हैं। सतयुग और त्रेतायुग में तो 'काम' का नाम-निशान ही न था, तभी तो सतयुग को 'देव युग' भी कहा जाता है। पुनश्च, सुकरात ने जीवन में एक बार संभोग की बात तो 'मानवों' के लिये कही है जबकि सतयुग में तो थे ही देवी-देवता। देवताओं के उस काल में तो सन्तानोत्पत्ति मनोबल से होती थी, न कि काम-वासना के भोग से। यह बात स्वयं वेदों³ और पुराणों में भी लिखि हुई है। उदाहरण के तौर पर श्रीमद्भागवत,

1. कई लोग इसे 'सोक्रैटीज' नाम से भी जानते हैं।

2. याने उसे रोग, दुर्बलता, चिन्ता और अशान्ति होगी, तभी तो मृत्यु जल्दी होगी और तभी तो 'काम' को 'नरक का द्वार' कहा गया है।

3. मित्रावरुणा से उर्वशी द्वारा मानसिक पुत्र वशिष्ठ जी का जन्म हुआ।

जिसे वैष्णव लोग पंचम वेद मानते हैं, में सृष्टि के शुरू में मानसी सन्तति अथवा योग बल द्वारा सृष्टि का उल्लेख⁴ है। अथर्व वेद में भी यह कहा गया है कि पहले योगज सृष्टि थी। ग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि “देवताओं ने ब्रह्मचर्य द्वारा मृत्यु को जीता था”⁵। भाव यह हुआ कि सतयुग से पहले, कल्पान्त में, जिन्होंने ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूपेण पालन किया, वे मनुष्य से देवता पद के अधिकारी बने और देवताओं को काल तो सताता नहीं है – यह बात तो लोक-प्रसिद्ध है ही।

स्वयं शास्त्रों में इस प्रकार के उल्लेख होने के बावजूद भी बहुत-से नर-नारी शास्त्रों की दुहाई देकर कहते हैं कि गृहस्थ में हर युग में काम-भोग की खुली छुट्टी तो शास्त्र ने दी है। ऐसा कहने वाले लोग निर्मललिखित पांच बातों की अवहेलना करते हैं:-

पच्चीस वर्ष तक अखण्ड एवं सर्वांगीण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन

जो लोग गृहस्थ में ‘काम’ की छूट मानते हैं, उन्हें यह मालूम होना चाहिये कि स्वयं शास्त्रों में 25 वर्षों तक तो अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत पालन की बात कही गयी है और ब्रह्मचर्य भी आठों प्रकार का होना अनिवार्य माना गया है। आठ प्रकार के ब्रह्मचर्य-नाश के बारे में शास्त्रों में इस प्रकार कहा गया है –

स्मरण¹ कीर्तन² केलि³: प्रेक्षण⁴ गुह्यभाषण⁵

संकल्पः⁶ अध्यावसायच⁷ क्रिया⁸ निष्पत्तिरेव च॥

एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः।

विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः॥⁹

अर्थात् (1) किसी स्त्री का (वासना भाव से) स्मरण करना, (2) उसके रूप-लावण्य, अंग-प्रत्यंग की कीर्ति करना अथवा उस के गीत गाना (3) स्त्रियों के साथ

4. ब्रह्माजो ने अपने मन से मनुओं को पैदा किया अर्थात् सृष्टि के शुरू में मानसिक बोध ही था। (श्रीमद्भागवत, स्क 3 और अध्याय 20)
5. मनसो रेतः प्रथमं यदासीत (अथर्व वेद 19/52/1) (ii) ब्रह्मा की पुत्री तप से उत्पन्न हुई (अथर्व वेद 6/133/4)
6. ब्रह्मचर्येण देवा तपसा मृत्यु उपाञ्जत्।
7. अग्नि पुराण 372/9-10

केली करना अर्थात् ताश, चौपड़ आदि खेलना (4) स्त्री को बुरी दृष्टि से देखना (5) उस से एकान्त में (गुह्य) बातें करना (6) उसे प्राप्त करने के लिए मन में संकल्प करना (7) उसकी प्राप्ति के लिए यत्न करना और (8) उससे सहवास करना - ये आठ प्रकार के मैथुन हैं। मुक्ति की कामना वाले मनुष्य को ब्रह्मचर्य का पालन करना है, इन्हें छोड़ना है।

ब्रह्मचर्य की नींव ही सुदृढ़ नहीं हुई तो गृहस्थ के अधिकारी कैसे?

परन्तु आप देखते हैं कि आज तो ब्रह्मचर्याश्रम में ही प्रायः हरेक कन्या के ब्वाय फ्रेंड (Boy Friend) और बालक के गर्ल फ्रेंड (Girl Friend) बने हुए हैं! आज की बात नहीं; 25-50 वर्ष पहले भी भला कितने ऐसे बालक-बालिकाएँ होंगे जो ब्रह्मचर्य का उपरोक्त प्रकार से पालन करते होंगे? अतः जबकि किसी ने पहले आश्रम का ही ठीक, मर्यादा-युक्त रीति से पालन नहीं किया तो कोई गृहस्थ आश्रम का अधिकारी ही कैसे हो सकता है? अब तो हरेक को चाहिये कि पहले तो ठीक-रीति से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे, बाद में वह दूसरी बात करे।

पुनश्च, आप देखेंगे कि ऊपर स्मरण, कीर्तन, केली, प्रेक्षण इत्यादि जो आठ अंग ब्रह्मचर्य-नाश के बताये गये हैं, उनका मूल भाव तो यह है कि मनुष्य वासना-भाव से स्मरण न करे, वासना दृष्टि से (कुदृष्टि से) 'न देखे' वासना-वृत्ति से स्त्री का गायन न करे वरना वो लोग 'शक्तियों' तथा 'देवियों' का तो गायन करते हैं और धर्म-ग्रन्थों में भी कहा गया है - "नार्यस्तु यत्र पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता"⁸ अर्थात् जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता रमण करते हैं। तो भाव यह हुआ कि नारियों को पवित्रता और पूज्या के भाव से देखें। मनुष्य के मन में यह भाव तो तभी होता है जब उसमें रूहानियत अर्थात् आध्यात्मिकता होती है। वासना के बिना स्मरण हो आना (जैसे कि माता-बहन का स्मरण होता है), गायन करना इत्यादि तो तभी होता है जब मनुष्य की दृष्टि और वृत्ति शुद्ध अथवा आत्मिक हो, उसमें स्त्रीत्व-पुरुषत्व का आभास या

देह-भाव न हो। परन्तु आज ब्रह्मचर्य आश्रम में बालक-बालिकाओं अथवा युवकों-युवतियों की ऐसी निर्मल, उच्च एवं ज्ञान-युक्त मनोस्थिति कहाँ है? वे तो ब्रह्मचर्याश्रम में भी सिनेमा, टी.वी. या अश्लील पत्र-पत्रिकाओं के अध्ययन आदि-आदि द्वारा उपरोक्त आठ प्रकार के मैथुनों में से कई प्रकार का मैथुन करते होते हैं। तो जब उनके ब्रह्मचर्य की नींव ही सुट्टू नहीं है तो उन्हें 'गृहस्थ में काम-भोग' की छूट के लिए शास्त्रों का हवाला देने का अधिकार ही कैसे है? उनकी वह आत्मिक दृष्टि ही कहाँ परिपक्व हुई है? ब्रह्मचर्य का तो भाव ही 'ब्रह्मा के समान पवित्र आचरण' अथवा 'ब्रह्म' में बुद्धि स्थित करके आचरण करना है। अतः जिनकी यह स्थिति नहीं हुई, वे ब्रह्मचारी कैसे?

25 वर्ष की सीमा अधिकतम नहीं है, न्यूनतम है

फिर बात यह भी है कि शास्त्र तो कहता है कि हरेक मनुष्य को कम-से-कम पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। यदि नर-नारी यह अवस्था आने पर 36 वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालना करना चाहें तो और भी उत्तम है। उसके बाद यदि वे 40 वर्ष तक इस नियम का पालन करें तो बहुत ही अच्छा है। तब यदि वे आजीवन ही यह व्रत ले लें, उस-जैसी तो दूसरी बात ही नहीं है। शास्त्र यह नहीं कहता कि 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करके पवित्रता की छुट्टी कर दो। नहीं, यह तो द्वापर युगी एवं कलियुगी मनुष्यों के लिए कहा गया है कि यदि वे आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकते अथवा 36 या 40 वर्ष तक भी नहीं कर सकते तब कम-से-कम 25 वर्ष तक तो पालन करें ही। सतयुग और त्रेतायुग में तो मैथुनी सृष्टि ही नहीं थी, तब की तो बात और भी निराली है परन्तु द्वापर तथा कलियुग में भी 25 वर्षों की सीमा निम्नवर्ती (Lower limit) है न कि ऊपर की सीमा (Upper Limit)

(2) शास्त्र द्वारा निश्चित की गयी मर्यादाएँ

फिर, शास्त्र में स्त्री-संग के सम्बन्ध में भी कई मर्यादाएँ निश्चित की गयी हैं। उनमें एकादशी, द्वादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, प्रतिपदा, पण्ठी, अष्टमी इत्यादि तिथियों तथा ग्रहण, रामनवमी, शिवरात्रि, जन्माष्टमी, श्राद्धदिवस, संक्रान्ति,

रविवार आदि दिनों में तथा मास में अन्य चौदह दिन भी स्त्री-संग के लिये निन्दित कहे गये हैं। इसके अलावा बहुत से नक्षत्रों में भी स्त्री-सहवास निषिद्ध है। फिर किसी भी पर्व के दिन भी स्त्री-सहवास वर्जित है और भारत देश के बारे में तो प्रसिद्ध है कि यहाँ वर्ष के 365 दिनों में 366 पर्व होते हैं। गोया वर्ष में शायद ही कोई दिन ऐसा रह जाता होगा जब कोई ऐसा पर्व, ऐसा नक्षत्र, ऐसा वार, ऐसी तिथि या रजोदर्शन काल में से कोई-न-कोई ऐसा कारण न होता हो कि जिसके कारण मनुष्य को पवित्र (ब्रह्मचर्य व्रत का व्रती) बनकर रहने के लिए न कहा गया हो। गोया, शास्त्र ने तो कामी मनुष्यों को गृहस्थ में काम-भोग की छूट देकर तत्क्षण ही उन्हें कुछ ऐसे विधान और निषेध बता दिये हैं जिससे कि मनुष्य को बहुत मुश्किल से ही वर्ष में किसी दिन वासना-भोग की छूट मिल सकती हो। फिर, याद रखिये कि यह छूट भी द्वापर युग तथा कलियुग के नर-नारियों के लिए है जो आजीवन पवित्र रहने का व्रत निभाने की हिम्मत नहीं रखते।

3. योगाभिलाषियों के लिए ब्रह्मचर्य अनिवार्य

ध्यान देने के योग्य एक बात यह भी है कि इस कलिकाल में भी जो लोग ईश्वरानुभूति के अभिलाषी हैं उनके लिये, चाहे वे गृहस्थ क्यों न हों, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन अनिवार्य है। श्रीमद्भगवद् गीता में कई बार ऐसा उल्लेख आया है। उदाहरण के तौर पर गीता में यह वचन है – यत् इच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति (अ. 8, श्ल 11), अर्थात् प्रभु-मिलन की इच्छा वाले लोग ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। गीता में 'काम' को कहीं ज्ञानी मनुष्य का महावैरी कहा है तो कहीं 'नरक का द्वार',¹⁰ कहीं काम को आसुरी लक्षण बताया है तो कहीं इसे ज्ञान रूप तलवार से मारने की सम्मति दी है। पतञ्जलि के 'राजयोग'¹¹ शास्त्र में भी योगी के लिए यम-नियमों का पालन आवश्यक बताते हुए ब्रह्मचर्य का उल्लेख

9. आश्लेषा, मेघा, मूल, कृत्तिका, ज्येष्ठा, रेवती, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा इत्यादि नक्षत्रों में भी स्त्री-सहवास निषिद्ध है।

10. गीता 16/21

11. पतञ्जलिकृत 'राजयोग' 2/80

नियमों के अन्तर्गत न करके 'यम' के अन्तर्गत किया है, जिसका अभिप्राय यह होता है कि इसका पालन न करना पाप है और यह मन की पवित्रता, स्थिरता एवं योगाभ्यास के लिए परम आवश्यक है। शास्त्रों में यह भी लिखा है कि प्रजापिता ब्रह्मा ने इन्द्र द्वारा ब्रह्मचर्य को बहुत लम्बे काल तक पालन करने के बाद ही, ईश्वरीय ज्ञान का अधिकारी माना। अतः सपत्नीक जीवन व्यतीत करने वाले भी जो लोग ईश्वरीय ज्ञान के अभिलाषी एवं योग के इच्छुक हैं, उन्हें गृहस्थ में न केवल ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की छूट या सम्मति है बल्कि परम आज्ञा है – यह आश्चर्य की बात नहीं, स्वाभाविक है क्योंकि ज्ञानवान् एवं योग-युक्त व्यक्ति तो आत्म-द्रष्टा होते हैं, उनकी देह-दृष्टि नहीं रहती; वे ईश्वरीय आनन्द के पिपासु होते हैं; उन्हें काम रूप हलाहल में रंच मात्र भी रुचि नहीं होती।

4. विवाह का निषेध

शास्त्रों में तो विवाह के लिए भी बहुत-से नियम हैं। उदाहरण के तौर पर उनमें लिखा है कि यदि कोई मनुष्य धन के लोभ से अपनी कन्या किसी नीच को, वृद्ध नर को या कुरूप को अथवा खराब चरित्र वाले मनुष्य को देता है तो वह मरने के बाद प्रेत बनेगा।¹² अब आप ही बताइये कि आज कौन-से ऐसे माता-पिता, संरक्षक (Guardians) या अभिभावक (words) हैं और कौन ऐसी कन्या या ऐसा बालक है जिसे धन की लिप्सा नहीं रहती? आज तो पुत्र वालों की ओर से सगाई निश्चित करने से पहले ही दहेज में स्कूटर, टी.वी., बैंक बैलेंस इत्यादि तय कर लिये जाते हैं और कई कन्याओं के माता-पिता भी लड़के के नाम कितना बैंक बैलेंस है, उसके पास कार (Car) है या नहीं – इस प्रकार की बातों की छानबीन कर लेते हैं। शास्त्रों में तो इस प्रकार के विवाह को, जिसमें धन-द्रव्य इत्यादि का लालच किया जाय और शील इत्यादि न देखा जाय, 'आसुरी विवाह' कहा है।¹³ मालूम रहे कि शास्त्रों में आठ प्रकार के विवाह का वर्णन है जिनमें

12. कन्यां यच्छति वृद्धाय नीचाय धनलिप्सया।

कुरूपाय कुशीलाय स प्रेतो जायते नरः॥

13. ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायैचैव शक्तितः।

कन्या प्रदानं 'स्वाच्छन्माद्रासुरो धर्म' उच्यते।

सर्वोत्तम 'ब्राह्म' ¹⁴ विवाह है। वह विवाह आज के विवाह से सर्वथा भिन्न है। इसका पता न होने के कारण ही आजकल के माता-पिता वासना-युक्त विवाह करा रहे हैं।

आज श्री लक्ष्मी तथा श्री नारायण – जैसे सुशील कहाँ हैं?

फिर, करोड़ों में से कोई यदि इस धन-लिप्सा से छूटा भी हो तो बताइए कि कितने ऐसे बालक-बालिकाएँ हैं जिनके विवाह की बातचीत से पहले किसी से दिल नहीं लगा होता? मन से तो वो किसी-न-किसी को पहले ही वर चुके होते हैं। कई तो कर्म से भी कुछ-न-कुछ भ्रष्ट हो चुके होते हैं। यह भी न हो तो यौनाकर्षण (Sex) और तथाकथित 'लव' एवं विलासतापूर्ण (Love and luxury) नावल या अश्लीलता से भरा (obscene) साहित्य तो वे पढ़ चुके होते हैं। पूर्णतः बे-दाग तो कोई भी बचा नहीं होता। तब उनके शील की क्या कहे? वे तो अपने खान-पान और पहनावे में किसी-न-किसी फिल्म स्टार को ही अपना आदर्श मानते हैं न कि किसी धर्माचार्य को। माता-पिता यह थोड़े ही देखते या जानते हैं कि जिस बालक के साथ सगाई की बात चलाई जा रही है, वह रिश्तत तो नहीं लेता, उसकी दृष्टि-वृत्ति तो खराब नहीं, वह चरित्रहीन तो नहीं? बल्कि उन्हें तो यदि यह मालूम हो जाय कि इस लड़के की इतनी 'ऊपर की कमाई' है तो वे खुश होते हैं। सगाई तय करने वाले ही ध्यान खिंचवाकर कहते हैं कि इस लड़के का इतना वेतन है और इतनी 'ऊपर की कमाई' है। फिर कितने ही बालक-बालिकाएँ सिग्रेट पीते, नशीले पदार्थों (Drugs) का सेवन करते, गंदे नावल पढ़ते और हर आधे दिन सिनेमा, टी.वी. में दुष्चरित्रता की बातें तो देखते-सुनते हैं ही। अतः 'कुशील से विवाह न हो – इस शास्त्राज्ञा का भी कहाँ पालन होता है? आज जो लोग ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहने वाले अपने पुत्रों -पुत्रियों को विवाह के लिए जोर देते हैं, उन्हें सताते एवं आतंकित करते हैं और शास्त्रों की दुहाई देते हैं, उन्हें चाहिए कि पहले कोई श्री नारायण और श्री राम के समान सुशील वर तो ढूँढ़ें? क्या इस

14. ब्राह्मो दैवस्तथैवार्थः प्राजापत्यस्तथेऽसुरः। गान्धर्वो-राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः (मनु 3.21)

विवाह आठ प्रकार के है – (1) ब्राह्म (2) दैव (3) आर्ष (4) प्राजापत्य (5) आसुरी

(6) गान्धर्व (7) राक्षसी (8) पैशाचिक

कलिकाल में ऐसा वर कोई मिलता भी है? मनु ने तो मनु-स्मृति में कहा है कि यदि शास्त्र की यह शर्तें पूरी नहीं होती अर्थात् यदि कोई सुशील, चरित्रवान वर नहीं मिलता तो कन्या को आजीवन कँवारा ही रहने देना चाहिये। जो लोग सन्देह करते हों, उन शक्की मिज़ाज वालों से हमारा निवेदन है कि शक और वहम छोड़ दें और विवेक का प्रयोग करें। पंडित लोग तो इस बात में ही खुश हैं कि खूब शादियाँ हों क्योंकि उनकी इसी तरह ही कमाई होती है। माता-पिता भी फारिग होना चाहते हैं परन्तु अफसोस यह है कि सभी देते हैं शास्त्रों की दुहाई! प्रसिद्ध अंग्रेज़ नाटककार एवं कवि शेक्सपियर ने इस बात की अच्छे शब्दों में भर्त्सना की है।¹⁵

इसके अतिरिक्त, ऊपर हम जिस श्लोक की चर्चा कर रहे थे, उसमें 'वृद्धाय' और 'कुरूपाय' शब्द भी हैं। यदि सतयुग और त्रेतायुग के देव-तुल्य नर-नारियों से तुलना की जाये तो आजकल के नर-नारी कुरूप एवं वृद्ध ही तो हैं। कमरें झुकी हुई, आँखें अन्दर को घँसी हुई या तो कमज़ोर, चेहरे तेज और ओज से रहित व पीले या हरे हुए-हुए, किसी को कब्ज, किसी को सिर का दर्द, किसी का दाँत टूटा हुआ, किसी ने चश्मा लगाया हुआ, किसी को ब्लड प्रेशर (रक्त-चाप बढ़ा हुआ), किसी को श्वास-रोग, किसी को चमड़ी का रोग तो किसी को स्वप्न-विकार, कुछ-न-कुछ तो हरेक को लगा ही हुआ है। सारे शरीर पर कितने तो घावों एवं चोटों के निशान हैं और हर आये दिन कुछ-न-कुछ होता ही रहता है। ऐसे अंग-भंग, दिन-हीन, दुर्बल एवं क्षीण-मनसा लोगों को 'कुरूप' नहीं कहेंगे तो क्या श्री लक्ष्मी श्री नारायण या श्री सीता-श्री राम के समान 'सुन्दर' कहेंगे?

फिर ज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो अब सभी 'बूढ़े' भी हो चुके हैं, क्योंकि सतयुग और त्रेता युग बीत चुके, द्वापर युग भी बीता और अब कलियुग भी दम तोड़ रहा है, तो आज जब न घी मिलता है न तेल, न गेहूँ, न चीनी, न दूध, न पानी तो शादी-शादी धुन लगाना तो आँख पर पट्टी बाँधना ही है। आज जो लोग शास्त्रों के हवाले देकर वासना-भोगार्थ शादी के लिए बालक-बालिकाओं

को बाध्य करते हैं और फिर व्रत की इच्छा प्रगट करने पर उन्हें आतंकित करते हैं, वे भला सोचें कि आज शास्त्र मत के अनुकूल वर-वधू हैं कहाँ? शास्त्रों में तो विवाह पद्धति में लिखा है कि पुरुष वधू को कहता है कि “तुम्हें पाकर मैं ‘लक्ष्मी-युक्त’ एवं कान्ति तथा श्री से युक्त हो गया हूँ, पहले लक्ष्मी-हीन था।” गोया स्त्री के लिए भी पुरुष का मिलना एक प्रकार से श्री नारायण का मिलना हुआ। इसीलिए ही तो आज विवाह होने पर जब पत्नी ससुराल में आती है तो सभी कहते हैं कि ‘घर में लक्ष्मी आयी है।’ परन्तु श्री लक्ष्मी और श्री नारायण तो पवित्र थे, तभी तो मन्दिरों में देवी-देवता मानकर उनकी पूजा की जाती है और तभी तो श्रीकृष्ण जन्माष्टमी इत्यादि पर सम्भोग वर्जित है और श्रीकृष्ण आदि देवताओं के मन्दिरों में काम-भोग बहुत बड़ा पाप माना गया है तथा श्रीकृष्ण के अनन्य भक्तों – सूरदास, मीरा इत्यादि ने भी वासना भोग का त्याग किया। तो यदि वर ‘लक्ष्मी-पति’ बना है और वधू ‘नारायणी’ बनी है तब तो काम-कटारी चलनी ही नहीं चाहिये। परन्तु इन सभी ज्ञान-रहस्यों को न जानने के कारण ही कुक्कड़ ज्ञानी लोग दूसरों को शास्त्रों की कुकड़ू-कूँ तो सुनाते हैं परन्तु बैठे रहते हैं गोबर एवं विष्ठा पर!

ग्रन्थों में ब्रह्मचर्य की महिमा और ‘काम’ की निन्दा

देखने की बात तो यह है कि ग्रन्थों एवं शास्त्रों में तो ब्रह्मचर्य की भूरी-भूरी महिमा है। वाग्भट्ट ने कहा है कि “इसके नाश से निश्चय ही मनुष्य का नाश है क्योंकि यही तो जीवन का आधार है।”¹⁶ इसी प्रकार ‘शिव संहिता’ में लिखा है –

बिन्दुपात से ही मृत्यु है और इस बिन्दु की धारणा में ही जीवन है। इसलिए अति प्रयत्नपूर्वक बिन्दु धारण करना चाहिए।¹⁷ तो जबकि ब्रह्मचर्य को जीवन और ‘काम’ को मृत्यु तक कह दिया गया है, तब फिर शास्त्रों की दुहाई देने की क्या बात रही? परन्तु आश्चर्य है कि फिर भी लोग कहते हैं कि ‘तब गृहस्थ किया

16. यत् नाशे नियतो नाशो यस्मिंस्तिष्ठति जीवनम्।

17. मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु धारणात्।

तस्मात् अति प्रयतनेन कुरुते बिन्दु धारणम्॥

ही क्यों जाय और गृहस्थ-आश्रम उत्तम क्यों माना गया है? उक्त मालुम होना चाहिये कि शास्त्रों में स्त्री को 'सह-धर्मिणी' कहा गया है। भाव यही है कि पुरुष धर्म-पालन में (न कि धर्म-भ्रष्ट होने के लिये) उसे सहायक के रूप में अपनाता है और विषय के सामने होते हुए भी विकार से बचे रहने के अभ्यास के लिये भी गृहस्थ करता है। इसलिए शास्त्रों में कई जगह आया है कि - 'हे कल्याणी, हम दोनों रेतः का संयम करेंगे'¹⁸ अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे। पुनश्च, गृहस्थ को इसलिए भी उच्च कहा गया है कि गृहस्थ अपने लिये स्वयं कमाते हैं, वे सामाजिक कार्य भी करते हैं जिससे अन्न-धन, सुविधाओं इत्यादि में वृद्धि होकर सभी का भरण-पोषण इत्यादि होता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि गृहस्थ में वासना-भोग की छूट है। यदि ऐसा हो तो गृहस्थ को 'गृहस्थ धर्म' क्यों कहा जाये और 'गृहस्थ आश्रम' की संज्ञा क्यों दी जाय? शास्त्रों में धर्म के जो दस लक्षण बताए गये हैं, उनमें 'इन्द्रिय-निग्रह'¹⁹ भी सम्मिलित है और मन की शुचि (पवित्रता) और 'दम' का अर्थ है मन का वशीभूत होना, 'शौच' तन के अतिरिक्त मन और बुद्धि की भी पवित्रता का वाचक है और 'इन्द्रिय-निग्रह' का अर्थ इन्द्रियों को वश करना है। 'काम विकार' अशुचि भी है और मन का पर-वश होना भी।

अतः 'गृहस्थ धर्म' कहने का आशय तो यही हुआ है कि यह धर्म-पालन ही की सुविधा के लिए किया गया है न कि धर्म से गिरने के लिये। 'आश्रम' शब्द भी पवित्र स्थान का वाचक है। जबकि ब्रह्मचर्य आश्रम में पवित्रता है, वानप्रस्थ आश्रम में भी और संन्यास-आश्रम में भी तो गृहस्थ आश्रम में वासना-भोग की बात कैसे हो सकती है? परन्तु जैसे आजकल ब्रह्मचर्य आश्रम में, वानप्रस्थ आश्रम में तथा संन्यासाश्रम में पतन आ गया है, वैसा ही हाल गृहस्थ में हो गया है; इसलिए लोगों ने धीरे-धीरे ऐसा मान लिया है कि गृहस्थाश्रम में तो वासना-स्वातंत्र्य है। वास्तव में यह भूल है। गृहस्थाश्रम की उत्तमता ही इसी से

18. तावेहो विवाहवहै सह रेतो दधाबहै (पार.कं. 6 B)।

19. धृति क्षमा दमः अस्तेयं शौचम् इन्द्रियनिग्रहः

धीर्विद्या सत्यं अक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्। (मनु. 6 B 2)

है कि इसमें मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार की उत्पत्ति के कारण सामने होते हुए भी उनसे ऊपर उठा रहता है।

फिर, विचित्र बात तो यह है कि आज लोग गृहस्थ-गृहस्थ की रट तो बहुत लगाते हैं परन्तु वे 50 वर्ष के बाद न तो वानप्रस्थी बनते हैं (अर्थात् न वन में जाते हैं) न संन्यासी। वे 50 वर्ष के बाद भी विकारी गृहस्थी ही बने रहते हैं, पुराने पापी हो जाते हैं और नक-कटे पंथियों की तरह अपने-जैसा ही दूसरों को भी बनाने की फ़िक्क में रहते हैं। वे सोचते भी नहीं कि आज आश्रमों की व्यवस्था की तो बात ही फीकी हो गयी है। आज मनुष्य की सौ वर्ष की आयु ही नहीं रही कि वे वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम निभायें। आज तो भारतवासी की औसत आयु ही 40 वर्ष है; तो क्या 10 वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन (यह तो स्वतः ही होता है), 11 से 20 वर्ष गार्हस्थ्य, 21 से 30 वर्ष तक वानप्रस्थ और 31 से 40 तक संन्यास-आश्रम निश्चित कर लिया जाय? संसार के लिये हंसी का विषय हो जायगा। 21 वर्ष के बाद यदि सभी वन में चले जायें तो सब कार्य-धन्धे बन्द हो जायेंगे और वन ही नगर बन जायेंगे। फिर, आज वन बचे ही कितने हैं?

चलो, मान लो कोई दुराग्रही एवं हठी व्यक्ति इस सब बात के बाद भी कहता है कि शास्त्र तो कहते हैं कि 25 वर्ष से लेकर गृहस्थ में वासना-भोग करो। ऐसे मनुष्य को सोचना चाहिये कि शास्त्र तो यह भी कहते हैं कि मनुष्य 10 बच्चे पैदा करें; तब क्या आज देश और दुनिया की ऐसी दशा है कि गृहस्थी 10 बच्चे पैदा करें? हर गृहस्थी को दूध की 10 बोतलें मिलेंगी भी? उनके लिए स्कूल या कालेज में जगह भी होगी? उन्हें नौकरी मिल सकेगी? तब तो हर दम्पति को कहीं आने जाने के लिए उन्हें अपनी ही बस करनी होगी या अपना अलग ही रेल का डिब्बा लेना पड़ेगा? क्या उन्हें तेल, घी इत्यादि भी मिलेगा या उन्हें गेंहू भी कहां से मिलेगा? आज तो प्रतिदिन समाचार प्रकाशित होते हैं कि अमुक पिता ने अपने सात बच्चों को दूध में विष घोल कर पिला दिया²⁰ क्योंकि उनके पास पेट पालने के लिए कुछ न था। आज अमुक माता ने

अपने मरे पुत्र का राशन खा लिया।¹ अमुक ने अपने बच्चों को बेच दिया।² फलां-फलां शहर में स्त्रियां रोटी और धन के अभाव में अपना तन बेच रही हैं। सरकार भी कहती है कि सन्तति निरोध करो। तब ऐसी संकटकालीन परिस्थिति में सभी मानते हैं कि शास्त्र का यह मत कि 10 बच्चे पैदा करो, पालन करना हानिकारक है। अतः जबकि मनुष्य संकट काल में शास्त्र-मत को भी ताक पर रख देता है तो उसे सोचना चाहिए कि आज देश के संकट काल में यह रट लगाना कि 'गृहस्थ' में वासना-भोग शास्त्र द्वारा वर्जित नहीं है, कहाँ तक उचित है?

मरने की घड़ी आ पहुंची है, दुर्भिक्ष पड़ रहे हैं, हर जगह क्यू (Queue) लगे हैं, इन्सान परेशान है और फिर भी जैसे अफीमची 'अफीम...अफीम' की रट लगाता है, वैसे उन्मत्त होकर "काम ! काम !!" (जो कि वास्तव में विषपूर्ण नशा है) की रट लगाना, नष्ट बुद्धि वाले मनुष्य की तरह बात करना है।

5. समय और स्थान का ज्ञान

'काम'के लिए आतुर-व्याकुल होने वाले मनुष्यों को यह मालूम होना चाहिए कि शास्त्रों में भी लिखा है कि कैसा भी भ्रष्ट मनुष्य क्यों न हो, निम्नलिखित स्थानों पर तथा निम्नलिखित अवस्थाओं में स्त्री-सहवास वर्जित है—मन्दिर¹ में, रास्ते में², श्मशान में³, औषधालय में⁴, ब्राह्मण के घर में⁵, गुरु के घर में⁶, दूसरे लोगों के सामने⁷, मित्र और गुरुजनों के बिछौने पर⁸, सवरे⁹, सन्ध्या को¹⁰, उपवास के दिन¹¹, शिव रात्रि¹², राम-नवमी¹³, जन्माष्टम¹⁴, या अन्य किसी पर्व वाले दिन¹⁵, या रविवार¹⁶, आदि-आदि वार को, अपवित्र अवस्था में¹⁷, दवा लेने के बाद¹⁸, बिल्कुल भूखे¹⁹, दुःखी मन से²⁰, आवेश में, क्रोध में और थकावट में²¹।

ऊपर 1 से लेकर 8 तक तो उन स्थानों का वर्णन है जहाँ वासना भोग नहीं होना चाहिये और 9 से 16 तक उन समयों, तिथियों, दिनों या पर्वों का वर्णन है

21. इण्डियन एक्सप्रेस 11.9.74

22. इण्डियन एक्सप्रेस 20.9.74

जब सम्भोग नहीं होना चाहिये और 17 से 21 तक उन अवस्थाओं का उल्लेख है जिन में भी यह वर्जित है। अब हम इन में से प्रथम दो पर अर्थात् स्थान और समय पर, विचार करते हैं -

स्थान और समय

वास्तव में कामान्ध नर-नारियों को पता ही नहीं है कि वर्तमान समय ऐसा धर्म-ग्लानि का समय है जब स्वयं कामारि परमपिता परमात्मा शिव सतयुगी पवित्र सृष्टि की पुनः स्थापना के लिए अवतरित हुए हैं। अतः अब जो यह समय चल रहा है, यह अज्ञानान्धकार की रात्रि है, इसका हर दिन 'शिवरात्रि' है। जैसे जन्माष्टमी के अवसर पर श्री कृष्ण का और रामनवमी के दिन श्री राम का गायन और आह्वान होता है, अब श्री कृष्ण (श्री नारायण) के सतयुगी राज्य के लिए तथा श्री राम के त्रेतायुगी राज्य की पुनः स्थापना के लिये ईश्वरीय कार्य हो रहा है। अतः अब यह समस्त सृष्टि ही शिवालय अथवा मन्दिर है क्योंकि यहाँ शिव आये हुए हैं। यह सारी पृथ्वी ही गुरुओं के उस परम सद्गुरु का घर है, उसका बिछौना है। परमात्मा शिव अब प्रजापिता ब्रह्मा के कमलमुख द्वारा सच्चे ब्राह्मणों को पैदा कर रहे हैं, अतः अब यह ब्राह्मणों का घर है। अब यहाँ ज्ञान रूप महाऔषधि दी जा रही है, अतः यह औषधालय भी है जहाँ काम, क्रोधदि रोगों से त्रस्त आत्मा को निरोग (निर्विकार) बनाने का साधन हो रहा है। अब मनुष्य रास्ते पर ही है क्योंकि वे ज्ञान मार्ग में या ईश्वरीय याद रूप यात्रा पर जा रहे हैं। अब यह संसार श्मशान भी होने वाला है क्योंकि अब निकट भविष्य में एटम और हाइड्रोजन बमों द्वारा महाविनाश होने वाला है।

पुनश्च, यही समय सन्ध्या समय भी है और सवेरे का समय (ब्रह्म मुहूर्त अथवा अमृत वेला) भी है क्योंकि वर्तमान समय परमपिता शिव सभी को ब्रह्मलोक वापस ले जाने के लिये ज्ञान रूप अमृत दे रहे हैं, संध्या भी सिखा रहे हैं, योग-स्थित भी कर रहे हैं और अब सतयुग रूप सवेरा हो रहा है। यह सर्वोत्तम पर्व तो है ही क्योंकि इसे ही 'पुरुषोत्तम संगम युग' कहते हैं और वास्तव में दीपावली, जन्माष्टमी, रक्षाबन्धन इत्यादि सभी त्यौहार परमपिता परमात्मा

शिव के इस अवतरण काल से सम्बन्धित हैं।

जो लोग इस बात को न मानते हों कि वर्तमान समय परमापिता परमात्मा शिव भारत में अवतरित हुए हैं और इसे शिवालय अथवा देवस्थान बना रहे हैं और सतयुगी पावन सृष्टि अथवा श्री कृष्ण एवं श्री राम का राज्य स्थापन कर रहे हैं तथा निकट भविष्य में महाविनाश भी होने वाला है, उन्हें यह रहस्य हम विस्तारपूर्वक एवं स्पष्ट रूप से बताने की सेवा करने के लिये तैयार हैं।

अवस्था

ऊपर 17 से लेकर 21 तक जिन अवस्थाओं का वर्णन किया गया है, आज देखा जाय तो मनुष्य उनमें से ही किसी-न-किसी अवस्था में है। मानसिक रूप से अपवित्र अवस्था में तो सभी हैं ही। हरेक आत्मा को शान्ति की भूख भी है ही। सभी के मन दुःखी हैं और उनमें आवेश तथा क्रोध भी भरा है। अनेक जन्म लेते-लेते अब सभी आत्माएं विश्व-शान्ति के लिए पुकार रही हैं, गोया थकी हुई भी हैं ही। अतः इन अवस्थाओं को देखते हुये भी मनुष्य को अब काम को पूर्ण-रूपेण छोड़ कर पवित्र एवं योग-युक्त बनना चाहिये क्योंकि अब सृष्टि की संकटकालीन स्थिति है।

इस पर भी यदि कोई नहीं समझता तो उस दुर्भाग्यशाली मनुष्य की क्या कहें? वह तो पतित ही बना रहना चाहता है और विष को छोड़ने के मामले में भी व्यर्थ ही ज़िद्द किये हुए है — ऐसा मानना चाहिए। परन्तु उसे इतना तो मालूम होना ही चाहिये कि शास्त्र भी बार-बार इस बात को कह रहे हैं कि जो बालक अथवा बालिका आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहते हैं, उन्हें न रोका जावे।²³ कम-से-कम इतना सहयोग तो सभी से इच्छित है ही।

मनुष्य संकटकाल में शास्त्र-भक्त को भी ताक पर रख देता है तो उसे सोचना चाहिए कि आज देश के संकटकाल में यह रट लगाना कि 'गृहस्थ' में वासना-भोग शास्त्र द्वारा वर्जित नहीं है, कहाँ तक उचित है? मरने की घड़ी आ पहुँची है, दुर्भिक्ष पड़ रहे हैं, हर जगह क्यू लगे हैं, इंसान परेशान है और फिर भी जैसे अफीमची 'अफीम....अफीम' की रट लगाता है, चैये उन्मत्त होकर "काम! काम!!" (जो कि वास्तव में विषपूर्ण नशा है) की रट लगाना, नष्ट बुद्धि वाले मनुष्य की तरह बात करना है।

ब्रह्मचर्य और मस्तिष्क का सम्बन्ध

विज्ञान के इस युग में कुछेक लोगों ने मानवीय मस्तिष्क की तुलना कम्प्यूटर से की है। एक विज्ञान-वेत्ता ने कहा है कि मनुष्य का मस्तिष्क जो काम करता है, यदि उन कार्यों के लिये कम्प्यूटर बनाया जाय तो उसकी लम्बाई-चौड़ाई अमेरिका के प्रसिद्ध नगर - न्यूयार्क - से कम नहीं होगी। फिर कई वर्ग मील बड़े क्षेत्रफल पर यह जो कम्प्यूटर स्थित होगा, उसे सक्रिय करने के लिये उतनी विद्युत शक्ति की आवश्यकता होगी जितनी कि अब न्यूयार्क महानगर में खपती है और साथ-साथ इसके तापमान (Temperature) को बढ़ने से रोकने के लिये न्यूयार्क की हडसन नदी का जितना पानी भी चाहिये होगा। तब भी उस कम्प्यूटर में वे सभी योग्यताएँ नहीं होंगी जो मानवी मस्तिष्क में हैं। साधारण विवेक भी वैज्ञानिकों की इस बात को मानता है क्योंकि आखिर कम्प्यूटर का आविष्कार अथवा निर्माण भी तो मानवी मस्तिष्क ही ने किया है, अतः उसका श्रेष्ठ होना स्वतः ही सिद्ध है।

अब किन्चित विचार कीजिये कि न्यूयार्क-जैसे विराट नगर जितने क्षेत्रफल वाले कम्प्यूटर को बनाने में, उसे क्रियाशील करने में, उसे चालू हालत में बनाये रखने में, उसके लिये आवश्यक विद्युत पैदा करने में तथा अन्यान्य बातों में कितना धन और कितना श्रम लगेगा? खरबों डालर खर्च करने के बावजूद भी उसे बनाने, चलाने और उससे काम लेने के लिये मनुष्यों - आपरेटरों व इंजीनियरों की ज़रूरत तो रहेगी ही। परन्तु कितने आश्चर्य की बात है कि मनुष्य इतने विचित्र मस्तिष्क, जो उसे मुफ्त में मिला है, का यथोचित मूल्य नहीं समझता! वह अपने अकृत्यों द्वारा शीघ्र ही उसे क्षीण कर देता है अथवा उसे रोगग्रस्त कर बैठता है। यदि मस्तिष्क की उपयोगिता को हम और किसी प्रकार भी अंकिना न जानते हों, तो आर्थिक मूल्य की दृष्टि से भी वह अरबों-खरबों रुपये की चीज़ है। इतना ही नहीं, उसके बिना तो यह तन भी बेकार है और मनुष्य स्वयं भी किसी काम का नहीं है। किन्तु आश्चर्य है कि यों तो मनुष्य एक-एक रुपया कमाने तथा बचाने की कोशिश करता है और दूसरी ओर वह

जो इतना बड़ा खज़ाना लिये है, उसे यों ही लुटाय़े चला जाता है!

मनुष्य के मस्तिष्क को मनुष्य स्वयं जो क्षति पहुंचाता है, उनमें से वासना-भोग विशेष है। बहुत से शरीर-शास्त्री मानते हैं कि ब्रह्मचर्य को नष्ट करने से मनुष्य के मस्तिष्क को आघात पहुँचता है। कई वैज्ञानिकों का कथन है कि कामाधीन होकर मनुष्य अपने मस्तिष्क के एक अमूल्य द्रव को गँवाता है। इसके परिणामस्वरूप उसके मस्तिष्क की शक्ति का हास होता है। यदि मनुष्य के विचार शुद्ध रहें तो उसका मस्तिष्क प्रतिभाशाली बना रहेगा, उसकी आयु भी बढ़ी होगी, उसमें कार्य-क्षमता भी बढ़ेगी और वह विचार-कुशल भी होगा। इस सत्यता को जानते हुए मनुष्य को चाहिये कि ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करे।



ब्रह्मचर्य-पालन और वैज्ञानिक निरीक्षण

वर्तमान युग एक ऐसा युग है जिसमें मनुष्य हरेक कर्म के गुण-दोष को या हरेक बात की सत्यता-असत्यता को बुद्धि की कसौटी से परखना चाहता है तथा विज्ञान के द्वारा उसका समर्थन सुनना चाहता है। यही स्थिति आज ब्रह्मचर्य के बारे में भी है। आध्यात्मवाद में तो ब्रह्मचर्य का महत्त्व चिरातीत से गाया गया है। आध्यात्मिक साधनों में तो ब्रह्मचर्य को योगाभ्यास के लिए, प्रभु से मिलने के लिए तथा मुक्ति और जीवनमुक्ति की प्राप्ति के लिए आवश्यक माना जाता रहा ही है, परन्तु आज तो लोग वैज्ञानिकों द्वारा इसका महत्त्व सुनना चाहते हैं। यद्यपि वैज्ञानिकों के मत को जानने के बाद भी कई लोग, जिन्हें व्यसन हैं या कोई बुरी आदत है, अपने दुर्व्यसन को नहीं छोड़ते तथापि कुछ लोगों पर तो उनके कथन का प्रभाव पड़ता ही है। अतः हम यहाँ इस बात पर थोड़ी चर्चा करेंगे कि वैज्ञानिकों के निरीक्षण तथा परीक्षण हमें ब्रह्मचर्य के बारे में किस निष्कर्ष पर ले जाते हैं।

वैज्ञानिक निरीक्षण

ब्रह्मचर्य के बारे में वैज्ञानिकों के निरीक्षणों के परिणाम हमारे सामने दो रूपों में आये हैं। एक तो उन्होंने काम-भोग से मनुष्य के मस्तिष्क, स्नायु मंडल आदि पर पड़ने वाले परिणामों का अध्ययन किया है। उससे यह स्पष्ट विदित होता है कि काम-भोग मनुष्य के मस्तिष्क, सुषुम्नाशीर्ष, स्नायुमंडल तथा समस्त शरीर पर बहुत बुरा प्रभाव डालता है और उसके कई मानसिक गुणों को भी आघात पहुँचाता है।

वैज्ञानिक निरीक्षणों द्वारा दूसरे रूप में हमारे सामने जो निष्कर्ष आते हैं, उनका सम्बन्ध जीव विज्ञान (Biology) से है। जीव-शास्त्रियों ने जीव जगत में बहुत-से जीव-जन्तुओं तथा पशु-पक्षियों का अध्ययन किया है कि कौन-से पशु या पक्षी अपने वंश की वृद्धि कैसे करते हैं। इसी के अन्तर्गत उन्होंने उल्लेख किया है कि उस जीव पर काम-क्रिया का प्रभाव पड़ता है। उस उल्लेख से पता चलता है कि वासना-भोग तो शरीर को ऐसी क्षति पहुँचाता है कि वह मृत्यु तक का कारण बन जाता है।

वैज्ञानिक प्रयोगों से प्राप्त निष्कर्ष

आज जीव-विज्ञान (Biology), शरीर विज्ञान (Physiology) तथा आर्युर्विज्ञान (Medical Sciences) एवं औषधि विज्ञान (Clinical and Pharmaceutical Sciences) में प्रायः यही तरीका अपनाया जाता है कि किसी औषधि या क्रिया का मनुष्य पर प्रभाव जानने के लिए उसका प्रयोग पहले किसी पशु पर करके देखा जाता है। यदि खरगोश, मेंढक, चूहों, गिलहरियों या अन्य पशुओं पर उसका प्रभाव पड़ता है तो डाक्टर लोग बाद में उसका प्रयोग मनुष्यों पर करते हैं वरना नहीं। गोया इन तथा अन्यान्य पशुओं पर किये गये प्रयोगों से मनुष्यों पर पड़ने वाले प्रभाव को भी जान लिया जाता है। अब ब्रह्मचर्य के प्रसंग में महत्वपूर्ण बात यह है कि इन प्राणियों के जीवन का अध्ययन करने से विज्ञान हमें इसी निष्कर्ष पर ले जाता है कि 'काम' भोग का इन पर निश्चय ही बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसा देखा गया है कि कई बार चूहे, गिलहरियाँ और खरगोश प्रजोत्पत्ति के कर्म के बाद मर जाते हैं अथवा बेहोश होकर गिर जाते हैं। यदि और कुछ न भी हो तो इनकी गति और उछल-कूद में तो अन्तर आता ही है। इनकी गति में वह स्फूर्ति नहीं रहती और ऐसा मालूम होता है कि यह कोई ऐसा तत्व गंवा बैठे हैं जो इनके शरीर को और इनकी बुद्धि को बल देता था। बड़े-बड़े हष्ट-पुष्ट बैलों, घोड़ों तथा सुअरों को भी इस कर्म के बाद थकावट या शक्तिहीनता के प्रभाव में एक ओर गिरते अथवा बेहोश होते देखा गया है। अतः यह निष्कर्ष लेना स्वाभाविक है कि मनुष्य पर भी इसका बहुत ही हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

छोटे-छोटे जीव-जन्तुओं पर प्रभाव

ऊपर हमने जो उदाहरण दिये हैं, वे कुछेक बड़े प्राणियों से सम्बन्धित हैं। यदि हम छोटे-छोटे जीव-जन्तुओं का अध्ययन करें तो मालूम होता है कि उन पर इसका और भी अधिक बुरा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के तौर पर तितली ही को लीजिए। इसकी कहानी बड़ी विचित्र है। इसके सुन्दर-सुन्दर, रंग-रंगीले पर जो हमें दिखाई देते हैं, ये इसे शुरू से ही प्राप्त नहीं होते। यह प्रारम्भ में कुछ मास रोमावृत अवस्था में रहती है। उसके बाद यह एक-डेढ़ वर्ष चमकते हुए एक कीड़े की अवस्था में होती है। बाद में यह वृक्ष की छाल के नीचे

या किसी दीवार की दरार में रेशम के कीड़े की तरह एक खोल बनाकर बस जाती है। तभी इसे सुन्दर और अद्भुत नमूनेदार पर प्राप्त होते हैं और यह डाल-डाल पर मंडराने लगती है। फिर वह चुपचाप शान्त स्वभाव से कहीं पड़ी होती है तो नर तितली मीलों दूर होने पर भी अपनी सूंघने की शक्ति से मालूम कर लेता है कि मादा तितली कहाँ है। इसके बाद होता यह है कि प्रथम प्रणय के बाद ही नर तितली की मृत्यु हो जाती है। मादा भी सैकड़ों अण्डे देकर मृत्यु को प्राप्त होती है। देखिये तो काम-भोग के परिणाम कितने घातक हैं!

ऊपर हमने तितली की मृत्यु के बारे में जो-कुछ कहा है, वह अन्य कई जीव-जन्तुओं पर भी लागू होता है। विज्ञान जीव वेत्ताओं ने ऐसी कई चींटियों तथा मकोड़ों का उल्लेख किया है जिनके नर गर्भ-स्थापन करने की क्रिया करते ही मर जाते हैं। मकड़े के बारे में भी यही बताया गया है कि वह सम्भोग के बाद मर जाता है। शहद की मक्खियों की भी कुछ ऐसी ही कहानी है। जब मधु-मक्खियों की रानी संयोग के लिए आकाश में उड़ती है तो नर मक्खियाँ उसके पीछे-पीछे उड़ती जाती हैं। जब नर मक्खी इस रानी मक्खी से मिलती है तो मिलने के तुरन्त बाद उसकी मृत्यु हो जाती है।

इस प्रकार के निरीक्षणों से विदित होता है कि कीड़े-मकोड़ों तथा छोटे जीव-जन्तुओं में तो सन्तानोत्पत्ति की क्रिया का सम्बन्ध उनकी मृत्यु से जुटा हुआ है। जैसे-जैसे हम बड़े प्राणियों का निरीक्षण करते हैं वैसे-वैसे हमें मालूम होता है कि यद्यपि उनमें इस क्रिया के समकाल में मृत्यु नहीं होती तथापि वह कर्म उन्हें मृत्यु की ओर ले ज़रूर जाता है। प्रजोत्पत्ति का हर कर्म मौत की ओर बढ़ता हुआ कदम है। जलचर मछलियों, नभ-चर पक्षियों और थलचर पशुओं पर निस्संदेह 'काम' का बहुत घातक ही प्रभाव पड़ता है। पक्षियों के वह मधुर गीत और वह नाच नहीं रहते। उनके पंखों के सुन्दर रंगों पर भी प्रभाव पड़ता है। मछलियाँ इसके बाद दुर्बल और क्षीण होती हैं। घोड़ों और बैलों इत्यादि की कहानी तो हमने ऊपर कही ही है।



इतिहास उवाच

यदि हम इतिहास का ध्यान से अध्ययन करें तो हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि विषय-भोग ही मनुष्य के पतन का कारण बना है। वासना और विलासिता के कारण ही बड़े-बड़े राज्य धूलि-धूसरित हो गये हैं। कामाग्नि ने अनेकानेक के पराक्रम और वर्चस्व को मिटाकर उन्हें परिस्थितियों से परास्त होने पर मजबूर किया है। बड़े-बड़े कुशल सेनानी भी रंग-रूप के जाल में फँसकर पराजय और अपयश के भागी बने हैं। इस 'काम' विकार ने आज तक ऐसे भी करोड़ों लोगों का खाना-खराब किया है जिनका इतिहास में उल्लेख नहीं है। इतिहास में जिनका उल्लेख है, उनकी जीवन-कहानी से भी पता चलता है कि यद्यपि वे लाखों लोगों पर हुकूमत करते थे तथापि काम ने उनको भी गुलाम बना रखा था। उस गुलामी के कारण वे अन्ततोगत्वा तख्त और ताज गँवा बैठे।

उदाहरण पृथ्वीराज का

पृथ्वीराज का इतिहास तो कोई बहुत ज्यादा पुराना नहीं है। उसके बारे में तो सभी भारतवासी जानते हैं कि उसने मुहम्मद गौरी को पहली बार रणक्षेत्र में परास्त किया था। परन्तु उसके विषय-विकार ही अन्ततोगत्वा भारत की नाव को ले डूबे। यह भारत के दुर्भाग्य थे कि पृथ्वीराज अपनी वासना का गुलाम बनकर संयोगिता को स्वयंवर से ज़बरदस्ती उठा लाया था। इससे जयचन्द से जो उसकी दुश्मनी हो गयी थी, वह भारत देश के लिए बहुत ही हानिकारक सिद्ध हुई। फिर, इतिहास कहता है कि जब मुहम्मद गौरी भारत पर बार-बार आक्रमण कर रहा था, तब भी पृथ्वीराज भोग-विलास में डूबा हुआ था। अन्तिम युद्ध, जिसमें पृथ्वीराज मुहम्मद गौरी से पराजित हुआ था, उस रण में सम्मिलित होने के लिए जब पृथ्वीराज को प्रस्थान करना था, तब उसकी कमर उसकी रानी ने ही कसी थी। गोया उस समय भी वह वासना से अपनी बुद्धि मलीन करके गया था तथा अपने ओज को आघात पहुँचा कर रण की ओर निकला था। उसका जो परिणाम हुआ, वह केवल उसे या उसके वंश ही

को नहीं भुगतना पड़ा, बल्कि उसके कारण सारे भारत देश को सैकड़ों वर्षों तक गुलामी करनी पड़ी। भारत का न केवल धन ही विदेशियों द्वारा लूटा गया बल्कि यहाँ की आध्यात्मिक संस्कृति पर भी कड़ी चोट लगी। उसके बाद कितने वीरों को देश के लिए समस्त जीवन न्योछावर करना पड़ा और पीढ़ी-दर-पीढ़ी को न जाने कितने कष्ट झेलने पड़े!

तो आप देख लीजिये कि एक व्यक्ति के द्वारा पवित्रता का नाश होने पर न केवल वह अपना राज्य-भाग्य गँवा बैठा और बन्दी बनाया गया बल्कि समस्त प्रजा को भी उसके कारण मुसीबतों का सामना करना पड़ा। उसके बाद तो गोया देश का तेज़ी से पतन ही होता आया है। जब एक राजा की वासनात्मक प्रवृत्ति का परिणाम सारे देश को सैकड़ों वर्षों तक भोगना पड़ा तो एक साधारण व्यक्ति की वासना और विलासिता का कुप्रभाव भी तो उसके परिवार पर, उसके ग्राम पर या उसके अपने घेरे में आने वाले लोगों पर पड़ता ही होगा। कहने का भाव यह है कि जैसे एक राजा अपने ताज और तख्त को अपनी काम-लिप्सा के कारण गँवा बैठता है, वैसे ही एक साधारण व्यक्ति भी तो अपना स्वास्थ्य, यौवन, बल, उत्साह, कार्य-क्षमता तथा इन सभी द्वारा प्राप्त होने वाले सुखों को गँवा बैठता होगा।

राजा रत्नसेन और अलाउद्दीन की लड़ाई रानी पद्मिनी के कारण

रानी पद्मिनी का किस्सा तो सभी भारतवासी जानते ही हैं। पद्मिनी के अद्भुत सौन्दर्य की गाथाएं सुनकर, वासनाधीन हुए अलाउद्दीन ने उसके पति राणा रत्नसेन को कितना परेशान किया था! इतिहासकार कहते हैं कि अलाउद्दीन पद्मिनी को पाने के लिए आठ वर्ष तक चित्तौड़ का घेरा डाले रहा। दोनों ओर के बहुत-से वीर इसी युद्ध में मारे गये। इसका मुख्य कारण अलाउद्दीन खिलजी की कामान्धता ही तो थी। रानी पद्मिनी को दर्पण में देखने के बाद अलाउद्दीन ने कितने षड्यन्त्र रचे और यत्न किये! आखिर उसकी कुदृष्टि की तृप्ति की बात जब मान ली गयी तब उसके बाद भी वह अपने को संभाल नहीं सका। उसने राणा रत्नसेन का ही अपहरण कर लिया ताकि उसको छुड़ाने के लिए

पद्मिनी को उसके पास आना ही पड़ेगा। इतिहास में बताया गया है कि 'गोरा' और उसका भतीजा 'बादल' दोनों वीर सेना को इकट्ठा करके युक्ति से रत्नसेन को छुड़ाने गये। अखिर अलाउद्दीन ने पुनः चित्तौड़ पर आक्रमण किया। तब पद्मिनी दूसरी रानी नागमति के साथ ही रत्नसेन के शव के साथ चिता पर जिन्दा जल गयी थी। अलाउद्दीन को तो अब पद्मिनी की राख ही देखने को मिली। अब देख लीजिए, काम विकार के कारण कितना रक्तपात हुआ!

राणा भीमदेव का पतन

इतिहास के सभी विद्यार्थी जानते हैं कि मुहम्मद गौरी के जरनैलों ने सोमनाथ पर आक्रमण किया था। तब वहाँ जो राजा राज करता था, उसका नाम था — भीमदेव। उसने मुहम्मद गौरी का सामना करने के लिए पूरी तैयारी की और गौरी की सेना को नीचा भी दिखाया। परन्तु जिन दिनों गौरी ने वहाँ डेरा डाल रखा था, उन दिनों राणा, सोमनाथ मन्दिर की एक देवदासी के नाम-रूप में बुरी तरह फँस गया। इसी देवदासी पर सोमनाथ मन्दिर का मुख्य पुजारी भी मोहित था। अब वह राजा को अपना प्रतिद्वन्द्वी मानने लगा। वह डाह से, मन-ही-मन जलने-भुनने लगा और राजा से बदला लेने के लिए मौका ताकने लगा। अखिर वह आक्रमणकारियों से मिल गया। उसने सोचा कि उनका सहायक बनने से वह राजा भीमदेव को नीचा दिखा सकेगा और कि वे (यवन) विजयी होने पर भी उसको परेशान नहीं करेंगे, न ही मन्दिर को हाथ लगायेंगे। परन्तु यह उसका मिथ्या विश्वास था। अन्त में उसने नगर में घुसने का एक गुप्त दरवाजा अन्दर से खोल दिया और गौरी की सेना को भीतर आने का रास्ता बता दिया जिसका उन्हें पता भी न था और जिस रास्ते के बारे में राणा निश्चिन्त था। परिणाम यह हुआ कि आक्रमणकारियों ने मन्दिर को ध्वस्त कर दिया और वहाँ का सारा धन लूट लिया। कहते हैं कि युद्ध से पहले वाली रात्रि चाँदनी रात थी और उस रात को राजा उस देवदासी ही के पास था और अपना कीमती समय, अपनी शक्ति और अपना सर्वस्व नाश कर रहा था। परन्तु उसकी इस चंचलता के कारण देश के इतिहास में परतन्त्रता का पहला पल शुरू हुआ। साथ ही मन्दिर के महापुरोहित ने वासनाधीन होकर न केवल धर्म के

नाम पर कलंक लगाया बल्कि वह अपने देश को भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुलाम बनाने का निमित्त बना।

नेपोलियन की दशा

नेपोलियन के हाथ में सत्ता आने से पहले, वहाँ सोलहवें लुई (Louis XVI) तथा उसके बोरबोर वंश का राज्य था; उसमें भी वासना और विलासिता काफी बढ़ चुकी थी। राजा के प्रमुख सरदारों और सामंतों में भी 'काम'रूपी भेड़िया अच्छी तरह घुस चुका था। आखिर सन् 1789 में वहाँ राज्य-क्रान्ति हुई और लोगों ने विलासी राजा, रानी और प्रमुख सहायकों को मार डाला।

इधर नेपोलियन के हाथ में राज्य की बागडोर आ रही थी। वह एक के बाद दूसरी विजय प्राप्त करता जा रहा था। जब नेपोलियन 26 वर्ष का था तो वह एक 36 वर्षीया सुन्दरी, जिसका नाम जोज़ेफिन था और जो चरित्रहीन एवं निर्दयी थी, के रूप-त्लावण्य में गिरफ्तार हो चुका था। उससे उसने विवाह भी कर लिया। सन् 1804 में जब उसका राज्याभिषेक हुआ तो उसने जोज़ेफीन के सिर पर राजमुकुट भी पहनाया। उसके कुछ समय बाद नेपोलियन ने उसे तलाक देकर 'मेरी लूसी' नामक युवती से विवाह किया। फिर भी वह जोज़ेफीन के आकर्षण-पाश से मुक्त नहीं हो सका। उसकी वासना की आग बढ़ती ही गई थी। इतिहास कहता है कि अन्त में वाटरलू के युद्ध में जाने से पहले सांय को नेपोलियन स्वयं को पतित बना चुका था। उसका मन उन मलीन विचारों के कारण युद्ध की योजना तथा निर्देशन कार्य में सही रीति से नहीं जुट सका। इसका परिणाम यह हुआ कि नेपोलियन के भाग्य का तारा टूट गया। वह बुरी तरह परास्त हुआ और संसार के इतने महान सेनापति का दयनीय अन्त हुआ। इस हार के जहाँ सैन्य तथा अन्य कारण थे, वहाँ काम वासना भी एक कारण था क्योंकि इससे उसकी मानसिक एकाग्रता में और शारीरिक क्षमता इत्यादि पर बुरा प्रभाव पड़ा था।

हिटलर का हाल

हिटलर, जिसने अपनी विजयों से संसार में उथल-पुथल मचा दी थी, आखिर

अपनी वासनाओं के कारण पराजित हुआ। उसके निजी फोटोग्राफर, ह्यूगो जेगर (Hugo Jaeger) ने उसके जो छायाचित्र लिए हैं, जिन्हें कि सन् 1970 में पहली बार प्रकाशित किया गया, इस बात का जीता-जागता प्रमाण हैं कि अपनी प्रारम्भिक विजयों के नशे में चूर हिटलर कामातुर सुन्दरियों से घिरा रहने लगा और जब वह काम विकार से आक्रान्त होकर भोगों में पड़ गया था तो उसका उल्का की तरह पतन होना शुरू हुआ। अल्बर्ट स्पीयर (Albert Speer) ने हिटलर के जीवन के बारे में संस्मरण लिखे हैं, उनसे स्पष्ट हो जाता है कि हिटलर अपने को वासना और विलासिता में नष्ट करने लगा था। अल्बर्ट ने लिखा है कि हिटलर कहा करता था कि - “नारियाँ मेरी ओर आकर्षित होती हैं क्योंकि मैं अविवाहित हूँ।” सिनेमा के ऐक्टर के साथ भी ऐसा ही होता है। जब वह विवाह कर लेता है तो उसमें की कोई ऐसी विभूति वह गँवा बैठता है जिसके कारण नारियाँ, जो पहले उसकी प्रशंसा किया करती थीं और उसकी ओर आकर्षित होती थीं अब नहीं होतीं। इतिहास साक्षी है कि हिटलर युद्ध के अखिरी दौर में ईवा ब्रोन (Eva Broun) के आकर्षण-पाश में खूब फँस गया था। सन् 1945 में जब हिटलर की मृत्यु हुई तो ईवा ब्रोन भी इस अन्तिम यात्रा में उसकी संगिनी थी।

अभिमन्यु का उदाहरण

महाभारत को इतिहास मानने वाले लोग कहते हैं कि अभिमन्यु बहुत बड़ा वीर था; उसने कौरवों के चक्रव्यूह को अकेले तोड़ दिया था और बहुत-से अतिरथियों से अकेले लड़ा था। परन्तु उसके दुर्भाग्य की बात यह है कि उससे पहले वह कामाधीन होकर अपनी पत्नी के पास गया था। उस दिन उसकी पराजय और मृत्यु हो गयी थी।

इन्दौर के महाराजा 'हुल्कर' का राज-सिंहासन गँवाना

यह किस्सा सन् 1917 और उसके बाद का है। इन्दौर के तत्कालीन महाराजा तुकोजी राव हुल्कर का अमृतसर की एक पेशावर गायिका 'मुमताज' से दिल लग गया। वह उसे इन्दौर में ले गये। वे उसके रूप-त्वावण्य पर इतने मोहित हो गये

कि बम्बई, मसूरी, इंग्लैंड, भानपुरा, जहाँ भी वे जाते वे उसे साथ ले जाते या पहले ही उसे वहाँ पहुँचवा देते। आखिर मुमताज़ से महाराजा को एक लड़की भी पैदा हुई जो मर गई। महाराजा ने मुमताज़ और उसकी माँ वज़ीर बेगम को सदा पहले में रखा ताकि वे भाग न जायें। परन्तु आखिर सन् 1924 में मुमताज़ महाराजा को छोड़ गयी। किन्तु राजा का दिल तो मुमताज़ में अटका था। उसके बिना उनका जीवन मुश्किल हो गया था। महाराजा ने उसे वापिस लाने के लिए अपने विश्वास-पात्र सेवकों को नियुक्त किया और इस कार्य के लिए उन्हें खूब पैसा भी दिया। उन्होंने कई षड़यन्त्र मुमताज़ को लाने के लिये रचे। आखिर जब कोई दाव नहीं चला तो उन्होंने मुमताज़ को, जब कि वह बम्बई में ठहरी हुई थी और वहाँ के नगर निगम के एक सदस्य (Bawla) की रखैल के तौर पर रहती थी, ज़बरदस्ती उठाकर लाने की पूरी योजना बनाई। इस योजना के अनुसार उन्होंने उस कमिश्नर की कार का पीछा किया और बम्बई के मालाबार हिल पर जब वह कार जा रही थी तो उसमें अपनी कार दे मारी। उन्होंने बावला पर आक्रमण करके उसे बुरी तरह घायल किया। वे मुमताज़ को उसकी कार से निकाल कर अपनी कार में बिठा कर भाग जाना चाहते थे कि कुछ अंग्रेज जो किसी क्लब में खेलने के बाद लौट रहे थे, गलती से उधर को मुड़ आए। परन्तु जब उन्होंने देखा कि कुछ लोग एक महिला पर चाकू से वार कर रहे हैं और चीख-पुकार हो रही है तो वे उन आक्रमणकारियों से जूझ पड़े। गोलिएँ चलीं; छुरियों से भी वार हुआ और अन्त में उनमें से एक व्यक्ति पकड़ा गया। पुलिस ने मुकदमा चलाया जिसकी चर्चा सारे भारतवर्ष में हुई। सभी जानते थे कि इन्दौर के महाराजा के कहने पर ही यह सब-कुछ हुआ है। नौ व्यक्तियों पर दावा किया गया था। इनमें इन्दौर के महाराजा का नायब अंगरक्षक (Asstt. A.D.C.) भी था, वहाँ की खुफिया पुलिस का एक सब-इन्स्पेक्टर भी शामिल था और इन्दौर की सेना का एडज्यूटेंट जनरल (Adjutant General) भी था और दूसरे भी कई व्यक्ति शामिल थे। मुकदमे के फैसले के अनुसार शफी अहमद, पुष्पशील पाँडे और शामराव को फाँसी की सजा मिली। तत्कालीन प्रिवी काउंसिल में आवेदन करने पर भी वे नहीं छूटे। देखो तो, दूसरे के 'काम-काण्ड' में हाथ डालने वालों का यह हाल होता

है तो स्वयं काम-भोगी मनुष्य का जन्म-जन्मान्तर क्या हाल होता होगा!

अन्त में अंग्रेज सरकार ने महाराजा को सूचना दी कि अब उसकी जाँच के लिए एक जाँच आयोग (Commission of Enquiry) नियुक्त किया जायेगा। उन्होंने महाराजा से कहा कि वह इस कमिशन के सामने अपनी सफाई पेश करें या वे राज्य-सिंहासन से उतर जायें। आखिर 1 मार्च, 1926 को तुकोजी ने इन्दौर के राज्य-सिंहासन को छोड़ना मंजूर किया। इस प्रकार न केवल महाराजा का ताज और तख्त छिन गया बल्कि इस खोटे कर्म में जिस-किसी ने भी उसका साथ दिया या उसकी सहायता की वह भी फाँसी पर लटका या बदनाम और परेशान हुआ।

यूनान, मिस्र, रोम तथा यूरोप के इतिहास की साक्षी

यदि हम संसार के इतिहास का एक बार फिर इसी दृष्टिकोण से अध्ययन करें तो हम देखेंगे कि जो देश किसी समय सभ्यता के शिखर पर पहुँच गए थे और समृद्धशाली एवं विकसित राष्ट्र थे, बाद में उनका सर्वस्व नष्ट होने का एक कारण यह भी था कि वे विलासिता में फँस गये थे, उन्हें वासना ने दबोच लिया था।

अभी थोड़ा समय पहले ही वियतनाम के युद्ध के जो परिणाम हमारे सामने आये, उनसे भी यही निष्कर्ष लेना पड़ता है। यद्यपि अमेरिका के पास सैन्य शक्ति, वैज्ञानिक साधन और अस्त्र-शस्त्र आदि अत्याधिक थे, तथापि उसे निराशाजनक परिस्थितियों में वियतनाम छोड़ना पड़ा। इन सभी का एक कारण यह भी था कि अमेरिका के सैनिक विलासी थे, वे वासनाओं के चक्कर में पड़े रहते थे।

अतीत की बात को एक ओर रखकर यदि हम वर्तमान की ओर देखें तो भी ऐसे ही निष्कर्ष सामने आते हैं। इंग्लैंड के 'प्युब्लो' (Pablo) नामक विदेश मंत्री के स्कैंडल का सभी को पता है। वासना ही ने उसके राजनीतिक जीवन का दुखद अन्त कर दिया। उसे मंत्री पद से इस्तीफा देना पड़ा और विश्व-भर में अपयश का विषय बनना पड़ा। उसके कारण वहाँ के समूचे मंत्री मण्डल की जड़ें

हिल गयीं और सारे देश पर अन्य देशों के लोग अट्टहास करने लगे। उसके बाद भी कई विशिष्ट लोगों पर ऐसे आक्षेप लगाए गए हैं। यहाँ तक कि फिल्ड मार्शल मान्टगुमरी पर समलैंगिक भोग (homo-sexuality) का आक्षेप लगाया गया और विश्व-युद्ध के दौरान उसके समलैंगिक आकर्षण के केन्द्र व्यक्ति की मृत्यु हो जाने से उसके युद्ध कार्य में कुछ काल उदासीन होने की बात कही गयी है।

अभी पिछले दिनों अमेरिका के सेनेट (senate) के कुछ सदस्यों के सम्भोग के किस्से समाचार पत्रों में छपे हैं। इसके परिणामस्वरूप उन सदस्यों को सेनेट से त्यागपत्र देने पड़े हैं; उनकी जो विश्व-भर में अपकीर्ति हुई है, सो अलग। एक सेनेट सदस्य के बारे में तो एक महिला ने कहा है कि उसे उस सदस्य ने क्लर्क के तौर से अपने दफ्तर में रखा परन्तु न तो वह टाइप जानती थी, न कागज़ों को ठीक तरह फाइलों में लगाना। वास्तव में उसे वासना-भोग के लिए ही रखा गया था। उससे कार्य यह लिया जाता था कि सेनेट के प्रभावशाली सदस्यों से वासनात्मक सम्बन्ध रखकर उन्हें किसी विशेष कानून को पारित कराने के लिए तैयार किया जाता था। उस महिला ने बताया है कि किस प्रकार उसने दूसरों की वासनात्मक वृत्ति द्वारा उन्हें अपने प्रभाव में लाकर उन द्वारा कई कानून पास कराये। ऐसे तथा अन्य कई इस प्रकार के किस्सों का हम यदि उल्लेख करने बैठें तो पाठक यह जानकर अपने दातों-तले अंगुली दबाते रह जायेंगे कि इतिहास में इस 'काम' वासना ने जीवन में तबाही मचा दी है। आज भी राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में इस द्वारा बहुत गंदगी फैलाई जा रही है।

उदाहरण के तौर पर समाचार पत्रों में यह भी प्रकाशित हो चुका है कि मानव की इस चारित्रिक कमजोरी का अनुचित लाभ उठाकर अमेरिका की प्रसिद्ध जासूसी संस्था सी.आई.ए. (C.I.A.) ने विश्व-भर में सुन्दरियों द्वारा उच्चपदासीन व्यक्तियों से वाञ्छित समाचार पाने के लिए जाल फैलाया हुआ है। इस प्रकार हर क्षेत्र में वासना द्वारा मुनष्य को पतन का रास्ता दिखाकर उसे नरक में धकेला जा रहा है।

अंग्रेजी के साप्ताहिक ब्लिट्ज़* में छपे लेख में तो बताया गया था कि

* साप्ताहिक ब्लिट्ज़, दिनांक 5 फरवरी 1977।

अमेरिका के कितने ही प्रधान जाह्नसन, निक्सन, केनेडी इत्यादि — बुरी तरह काम विकार का शिकार थे।

इधर भारत में मन्दिरों में देवदासियों के साथ कुकर्म किये जाते रहे हैं। आज भी यहाँ कई मन्दिरों पर भी अश्लील मूर्तियाँ बनी हुई देखी जा सकती हैं। कई पण्डे और पुजारियों के काले कारनामे भी समय-समय पर प्रकाशित होते रहते हैं। यदि यहाँ के उच्च न्यायालयों द्वारा निर्णय किये गए मुकद्दमों के ब्यौरों को पढ़ा जाये तो उनमें से कितने ही मुकद्दमे काम-वासनाओं से सम्बन्धित मिलेंगे। कितनों ही को काम ने विवेकहीन एवं अज्ञानान्ध बना दिया है। उन मुकद्दमों का हाल पढ़ने से मालूम होगा कि आज तक करोड़ों कुटुम्ब कामाग्नि के कारण तबाह हुये हैं। पिछले दिनों ऑखों के विशेषज्ञ, डा. जैन तथा उनकी प्रेमिका चन्द्रेश शर्मा के तथा लखनऊ के डाक्टर गौतम के जो समाचार प्रकाशित हुये, वे इस स्थिति का एक उदाहरण हैं।

इस प्रकार, विश्व का इतिहास, समाचार और विचार हमें पुकार-पुकार कर कह रहा है कि — 'लोगो, देखो, कितने ही बड़े-बड़े महाराजाओं के राज्य इस काम विकार के कारण छिन गए, कितने ही देश विलासता के कारण छिन्न-भिन्न हो गए और कितने परिवार इसके कारण दुखित हुए। यह विकार मनुष्य के बल, पराक्रम, यश, राज्य-भाग्य इत्यादि को छीनने वाला है। यह उसकी बुद्धि को मलीन बनाने वाला तथा सफलता एवं सिद्धि से वंचित करने वाला है। अतः अब तो इस विकार को छोड़कर महान बनो, वरना इस अन्तिम पुकार को न सुनने से समय तुम्हारे नाम-निशान को भी मिटा डालेगा।'



ब्रह्मचर्य का पालन क्यों? चिकित्सा-विज्ञान और विवेक क्या कहते हैं?

हमारे देश में आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। धन्वन्तरि और सुश्रुताचार्य इसके मूर्धन्य ज्ञाता तथा व्याख्याता थे। उनसे उनके शिष्यों ने कोई ऐसा उपाय जानना चाहा जिस द्वारा मनुष्य में बल का संचय हो और उसका आरोग्य तथा स्वास्थ्य भी बना रहे। उस प्रयोजन से उन प्रतिभाशाली चिकित्सा-विशेषज्ञों ने ब्रह्मचर्य को ही इसका श्रेष्ठ उपाय बताया। उन्होंने कहा – “ब्रह्मचर्य ही ऐसी परम औषधि है जो कि रोग, बुढ़ापे और मृत्यु से मनुष्य को बचाती है और उन्हें शान्ति, कान्ति, स्मृति और आरोग्य देती है। ब्रह्मचर्य की धारणा से सभी अशुभ लक्षण मिट जाते हैं। अतः हम सत्य कहते हैं कि ब्रह्मचर्य बहुत ही अनमोल है, यह तो अमृत ही है।”

उन्होंने ब्रह्मचर्य को यों अकारण ही ‘अमृत’ कह दिया हो – ऐसी बात नहीं है। ब्रह्मचर्य को बुढ़ापे, रोग तथा मृत्यु को रोकने वाली औषधि बताने का विशेष कारण उनके पास था।

धन्वन्तरि और सुश्रुताचार्य तो वैज्ञानिक थे; वे रसायन विज्ञान को जानते थे और वे वस्तुओं के गुण, लक्षण इत्यादि से भी परिचित थे, तभी तो वे बड़ी-बड़ी गुणकारी औषधियाँ बनाते थे। किस वस्तु या वनस्पति का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है, यदि वे यह बात ठीक रीति से न जानते होते तो रोगियों की चिकित्सा कैसे कर सकते? वे शरीर-रचना को भली-भाँति जानते थे और उन्हें इस बात का भी ज्ञान था कि रोग, बुढ़ापा तथा मृत्यु जीवन-शक्ति अथवा जीवन-क्रिया पर कैसे आच्छादित हो जाते हैं। अतः इन सभी बातों को वैज्ञानिक

-
1. मृत्युव्याधिज्वरानाशी पीयूषं परमौषधम्।
 ब्रह्मचर्यं महद् रत्नं सत्यमेव वदाम्यहम्॥
 शान्तिं कान्तिं स्मृतिं ज्ञानं आरोग्यं चापि सन्ततिम।
 या इच्छति महद्गमं ब्रह्मचर्यं चरेद्ब्रिह॥
 ब्रह्मचर्यं परं ज्ञानं ब्रह्मचर्यं परं बलम्।
 सर्वलक्षणहीनत्वं हन्यते ब्रह्मचर्यया॥

ढंग से जानते हुए ही उन्होंने ब्रह्मचर्य की उपरोक्त महिमा की थी।

चिकित्सा-विज्ञान-वेत्ताओं ने ब्रह्मचर्य को परम औषधि क्यों कहा?

प्राचीन चिकित्सा विशेषज्ञ अथवा जीव रसायन-वेत्ता वैज्ञानिक सूझ के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि मनुष्य जो भोजन करता है, वह शरीर के भीतर पहुँच कर सात अवस्थाओं में परिवर्तित होता है। उसका परिपाक होने पर वह सबसे पहले रस बनता है। रस से क्रमानुसार वह रक्त, माँस, मेद, अस्थि और मज्जा का रूप लेता है और तत्पश्चात् वीर्य अर्थात् जीवनी-शक्ति के रूप में परिवर्तित होता है। उन्होंने देखा कि यह सात ही पदार्थ हैं जो देह को धारण करते हैं और स्वयं स्थित रहते हुए देह को भी स्थित किये रखते हैं। अतः उन्होंने इन सात पदार्थों को 'धातु' कहा। वे अपनी वैज्ञानिक दृष्टि के आधार पर इस परिणाम पर पहुँचे कि एक धातु पाँच दिन-रात और डेढ़ घड़ी के बाद दूसरी धातु के रूप में परिवर्तित होता है। इस प्रकार लगभग 40 दिन और 9 घड़ी के बाद वह 'जीवन-सार' (वीर्य) के रूप में परिवर्तित होता है। फिर, उन्होंने यह भी तथ्य जान लिया कि मनुष्य जो एक मन भोजन करता है, उससे एक सेर रूधिर बनता है और उसका चालीसवाँ भाग अर्थात् दो तोले, जीवन-सार बनता है। इसका अर्थ यह होता है कि मनुष्य यदि एक बार काम विकार द्वारा पतित होता है तो मानो कि वह अपने एक महीने-भर की कमाई गंवा देता है। गोया आयुर्वेद विज्ञान के अनुसार यह ऐसा ही हुआ कि जैसे कोई माली अपने बगीचे में फूल बोने, उन्हें सींचने, उनका संरक्षण करने इत्यादि पर इतना परिश्रम करे और अन्त में एक मन फूल तोड़ कर उनका सार — इत्तर — निकालकर, उस इत्तर को गंदे नाले (Gutter or sewer) में डाल दे!

2. रसाद्रव्यं ततो मांसां, मांसाभेदः प्रजायते।
मेदादस्थि ततो मज्जा, मज्जायाः शुक्र सम्भवः॥
3. एते सप्त स्वयं स्थित्वा देहं दधति यन्मृणाम्।
रसासृन्मांसमेदोऽस्थि मज्जा शुक्राणि धातवः॥
4. धातौ रसादौ मज्जान्ते प्रत्येकं क्रामतो रसः।
अहोरात्रात्स्वयं पंच सार्द्धं दंडं च तिष्ठति॥

पतित होना – शरीर को निचोड़ने अथवा मृत्यु को आमन्त्रित करने के समान है

इस सारी क्रिया को जान कर ही उन्होंने कहा कि – “जब तक कि शरीर में यह जीवन-सार रहता है, तब तक ही मनुष्य का जीवन रहता है, वरना मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। उन्होंने इस रहस्य को भी जान लिया था कि मनुष्य का यह जो जीवन-सार अर्थात् सातवाँ धातु है, यही तेज और ओज का रूप लेता है। यह मनुष्य के सारे शरीर में समाया रहता है। इस द्वारा मनुष्य को तुष्टि, पुष्टि और बल की प्राप्ति होती रहती है। इससे ही उसके जीवन में उत्साह, धैर्य, लावण्य, सुकुमारता और प्रतिभा इत्यादि बने रहते हैं। तभी उन्होंने कहा कि यदि इसका नाश कर दिया जाए तो मनुष्य का अपना भी नाश हो जाता है और यदि इसे बनाये रखा जाए तो मनुष्य का जीवन बना रहता है। उन्होंने बार-बार कहा है कि यह जो शरीर में ओज है, इसकी रक्षा करो क्योंकि इसके नाश से जीवन ही नष्ट अथवा असार हो जाता है और रोग मनुष्य के तन में डेरा डालने लगते हैं तथा मृत्यु उसके चारों ओर मण्डराने लगती है।

जैसे कि हम पहले कह आए हैं, प्राचीन चिकित्सा पद्धति के विशेषज्ञ मानते हैं कि ओज अथवा जीवन-सार सारे शरीर में रमा हुआ है,⁷ अतः जब कोई मनुष्य वासना-भोग करता है तो मैथुन के द्वारा उसके सारे शरीर को धक्का-सा लगता है। मानो उसका सारा शारीरिक ढांचा बुरी तरह प्रभावित होता है। जैसे गन्ने में का रस निकाल देने से गन्ने की दशा होती है, वैसी ही

5. यावद् बिन्दु स्थितो देहे तावद् बिन्दुर्न गच्छति। (यो.चू.उ.)

6. ओजश्च तेजो धातूनां शुक्रान्तानां वरं स्मृतम्।

हृदयस्यमपि व्यापि देहस्थिति निबन्धनम्॥

यस्य प्रवृद्धौ देहस्य तुष्टिपुष्टि बलोदयाः।

यन्नाशो नियतो नाशो यस्मिन्तिष्ठति जीवनम्॥

निष्पाद्यन्ते यतो भावा विविधा देह संश्रयाः।

उत्साह प्रतिभा धैर्य लावण्य सुकुमारताः॥ – वाग्भट्ट

7. ओजः सर्वशरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम्।

सोमात्मकं शरीरस्थ बलपुष्टिकरं मतम्॥ – शार्ङ्गधर

दशा काम-भोग करने वाले मनुष्य की होती है।

बादाम से तेल निकालने पर अथवा फूलों का इत्तर निकालने पर बादाम तथा फूलों का जो परिणाम होता है, वैसा ही वासना भोगने से मनुष्य का होता है। यों भी कह सकते हैं कि जैसे शिकंजे में दबाकर नींबू को निचोड़ने से नींबू के भीतर के सभी तन्तुओं पर प्रभाव पड़ता है, वैसे ही कामी मनुष्य भी मैथुन के शिकंजे में निचोड़ा जाता है। अतः जब उन्होंने यह जान लिया कि ब्रह्मचर्य ही मनुष्य के जीवन का आधार-स्तम्भ है⁸ और कि जीवन-सार अर्थात् सातवें धातु को नष्ट करने से मनुष्य रोगी, दुर्बल, बूढ़ा और मृत्यु-परायण हो जाता है, तभी उन्होंने कहा कि इसके नाश से मनुष्य नष्ट हो जाता है।

रोगियों का निरीक्षण

फिर, चिकित्सा के लिए आने वाले रोगियों का हाल जानने से उनको यह पक्का ही निश्चय हो गया कि 'पतित' होने से ही पक्षाघात, हिस्टिरिया, मृगी, राजयक्ष्मा, मूच्छा, उन्माद, भूख में कमी, वायु पैदा होना, रक्त-पित्त, जी में घबराहट, सिर में चक्कर आना, स्मरण शक्ति का कम होना, आमवात, सन्धिवात इत्यादि कई रोग होते हैं। निरीक्षण से उन्हें मालूम हुआ कि वासना-भोग करने वाले मनुष्य का चेहरा पीला पड़ जाता है, उसका मन और शरीर दुर्बल हो जाता है, उसकी आँखों में जलन महसूस होती है, उसे छोटे-छोटे काम भी पर्वत की तरह भारी



मनुष्य के मन में छिपा हुआ काम
आस्तीन के साँप की तरह है।

महसूस होते हैं, उसका उत्साह कम हो जाता है, वह जल्दी ही थकावट अनुभव करता है, उसे सदा आलस्य की-सी अवस्था महसूस होती है और ऐसे कितने ही

8. यथा पयसि सर्पिस्तु गुडहेषुरसे यथा।
एवाहि सकले काये शुके तिष्ठति देहिनाम्॥
9. गर्भबीज वपुः सारो जीवनाश्रय उत्तमः।

और भी अशुभ लक्षण उसके जीवन में प्रकट हो जाते हैं। आप किसी भी भोगी व्यक्ति से पूछें तो आपको बतायेगा कि वासना-भोग के बाद वह थकावट, कमी या कमजोरी महसूस करता है। तो जब ऐसी दुर्दशा कामी व्यक्ति की होती है तब क्या इसे नाश का कारण न माना जाय; इसे 'नरक का द्वार' न समझा जाये? जिस क्रिया से मनुष्य का उत्साह भंग हो, उसकी कार्य-क्षमता (Efficiency) में कमी हो, उसमें आलस्य का प्राकट्य हो, उसके शरीर में तेज और बल की कमी हो, उसका मनोबल क्षीण हो और रोग तथा बुढ़ापा उसे दबोचने लगें, क्या उसे मनुष्य का 'महा शत्रु' नहीं कहा जायेगा? स्पष्ट है कि वैज्ञानिक आधार पर ही यदि इस विषय को सोचा जाय तो निस्सन्देह 'काम' मनुष्य का महाशत्रु है क्योंकि यह उसके तन और मन को दुर्बल बनाकर, उसे जरा, व्याधि तथा मृत्यु की ओर घसीट ले जाता है। यह उसे ऐसा अविवेकी बना देता है कि वह अपने एक मास की कमाई एक क्षण में नष्ट करके अपना दीवाला निकालने को तैयार हो जाता है। वह जानते हुए भी मृत्यु को निमन्त्रण देता है और समझाने पर भी अपने को कुकृत्य से रोक नहीं सकता। गोया वह एक विचित्र प्रकार के मानसिक रोग किंवा दौर्बल्य का शिकार हो जाता है। वह बात-बात पर क्रोधित होता है क्योंकि तेज का क्षय होने से उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। उसका मन 'क्षणे तुष्टा क्षणे रूष्टा' की अवस्था वाला हो जाता है। उसके चित्त में दुर्बलता और चंचलता आ जाती है। वह किसी कार्य को शुरू कर बैठता है पर उसे बीच में ही छोड़ देता है। कामी मनुष्य की धार्मिक कार्यों में रुचि मन्द पड़ जाती है या अरुचि में बदल जाती है। उसे अपने कार्यों में सन्तुष्टता एवं शान्ति देने वाली सफलता नहीं मिलती तथा वह अपने से अधिक अनुभवी लोगों की बात की भी उपेक्षा करने लगता है। यहाँ तक भी देखा गया है कि वासना का अत्यधिक भोग करने वाले तो अपनी हत्या तक भी करने को तैयार हो जाते हैं क्योंकि उन्हें अनुभव होने लगता है कि वह अपने सारे जीवन-धन को धूली में मिला चुके हैं। तो आप ही बताइये कि क्या 'काम' 'आस्तीन का साँप' नहीं है? क्या यह मनुष्य के मन में बैठा हुआ शत्रु नहीं है?

ब्रह्मचर्य का पालन करने वालों में सदगुण और उनका सर्वांगीण विकास

इसके विपरीत देखा गया है कि जो ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और अपने विचारों को मलीन नहीं होने देते, उनमें कष्ट-सहिष्णुता, धैर्य, बुद्धि की स्थिरता, साहस, उत्साह, श्रद्धा, शील, कार्यपरायणता और मनोबल होता है। उनसे वाक्शक्ति का स्फूर्ण होता है, उनकी वाणी में ओज और माधुर्य होता है, उनके लिए मानसिक एकाग्रता सहज होती है तथा वे अधिक कार्य करने में सक्षम होते हैं। यदि देखा जाय तो यही गुण तो मनुष्य को उन्नति के मार्ग पर ले जाने वाले तथा उसका कल्याण करने वाले होते हैं। यही तो मनुष्य के जीवन में सच्चा सुख तथा सच्ची शान्ति के अग्रदूत होते हैं। ये ही तो मनुष्य को देवता बनाने वाले हैं। इसीलिए ही कहा गया है कि पवित्रता ही सुख और शान्ति की जननी है। शास्त्रों को मानने वाले लोग भी कहते हैं कि भगवान् शिव ने कहा है कि - “हे मनुष्यो, बिन्दु-पात ही मरण है और बिन्दु को धारण किये रहना ही जीवन है। अतः उत्तम पुरुषार्थ करके ब्रह्मचर्य का पालन करो।”¹⁰ वे कहते हैं कि भगवान् शिव ने तो यहाँ तक भी कहा है कि ‘ब्रह्मचर्य के पालन से तो सर्व सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं: भला बताओं तो सही कि उससे क्या प्राप्त नहीं होता?’¹¹ जब ऐसी बात है तो फिर ब्रह्मचर्य का पालन क्यों न किया जाय?

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

फिर, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी देखा गया है कि जो छात्र इन वासनाओं में प्रवृत्त होते हैं, वे विद्या-अध्ययन में इतनी सफलता प्राप्त नहीं कर पाते जितनी कि ब्रह्मचर्य में रहने वाले कर पाते हैं। इसका कारण यह है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने वालों का मन व्यर्थ संकल्पों में नहीं उलझा होता बल्कि वे काम के संवेगों से आक्रान्त न होने के कारण शान्तचित्त होते हैं। उनका ध्यान नाम-रूप

10. मरणं बिन्दुपातेन जीवने बिन्दुधारणात्।

तस्मादतिप्रयत्नेन कुरुते बिन्दुधारणम्॥ - शिव संहिता

11. सिद्धे बिन्दौ महारत्ने किं न सिद्धिर्यात् भूतले:

यस्य प्रसादान्मिहमा ममाप्येतादृशोऽभवत्।

के आकर्षण में न फँसा होने के कारण बाह्यमुखी नहीं होता। वे वासना के ज्वर से पीड़ित न होने के कारण उत्तेजनाशील भी नहीं होते। उनका ध्यान अनेक बातों में बँटा हुआ नहीं होता बल्कि एक पढ़ाई ही की ओर होता है। अतः स्वाभाविक है कि उनका परीक्षा-फल अच्छा होता है।

आध्यात्मिक विकास में सहायक

ऊपर ब्रह्मचर्य पालन के जो लाभ हम बता आये हैं, वे मनुष्य को आध्यात्मिक विकास में भी काफी सहायक होते हैं। उदाहरण के तौर पर ब्रह्मचर्य के कारण मनुष्य की दृष्टि और वृत्ति स्थिर होना, उसकी मानसिक एकाग्रता के अभ्यास में सहायक होता है। उसके मन में मलीन विचारों के न उठने से वह पवित्रता की ओर आगे बढ़ सकता है। जीवनी-शक्ति का क्षय न होने से वह इतना उत्तेजनाशील नहीं होता बल्कि उसमें सहन शक्ति का विकास होता है। रोग, बुढ़ापा, शारीरिक दुर्बलता इत्यादि से बचे रहने से वह आध्यात्मिक साधना अधिक क्षमता से कर सकता है और जन-सेवा कर दूसरी आत्माओं का भी आशीर्वाद प्राप्त कर सकता है। उसमें ऐन्द्रिय संयम तथा मानसिक नियंत्रण का गुण आ जाने से वह अन्य प्रतिज्ञाओं अथवा व्रतों का भी पालन करने में सफल होता है अर्थात् अन्य इन्द्रियों तथा विकारों पर भी विजय प्राप्त कर सकता है। सब से बड़ी बात यह है कि ब्रह्मचर्य द्वारा बल-संचय, उत्साह-वर्द्धन, मनोबल के विकास और बौद्धिक स्थिरता प्राप्त करने से उसके लिए कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता। मृत्यु उसे डरा नहीं सकती। वह कठिन परिस्थितियों के आगे घबरा नहीं जाता बल्कि सत्यता, ईश्वर-निष्ठा और योग-स्थिति के मार्ग पर आने वाली कठिनाइयों का साहस एवं धैर्य से सामना करता है और उन्हें खुशी-खुशी सहन भी कर लेता है। इस प्रकार, यद्यपि ब्रह्मचर्य का पालन सभी के लिए ज़रूरी है तथापि आध्यात्मिक मार्ग के यात्री के लिए तो यह परम आवश्यक है क्योंकि इसके बिना आज तक किसी को भी सहनशील, सुशील, दृढ़, श्रद्धावान, व्रती, निद्राजीत, शीतल एवं शान्त-चित्त, साहसी, एकाग्र तथा धर्म-निष्ठ स्थिति में देखा नहीं गया और इन गुणों के अभाव में तो योग-युक्त होने

का प्रश्न ही नहीं उठता।

क्षण-भर के मिथ्या सुख के लिए विष-पान

उपरोक्त सभी बातों को समझाने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचना स्वाभाविक है कि वासना द्वारा अपनी जीवनी-शक्ति को नष्ट करना गोया अपने ही हाथों अपनी चिता के लिए लकड़ियाँ इकट्ठा करना है। विवेकहीन व्यक्ति को इसमें सुख तो भासित होता है परन्तु यह क्षणिक सुख भी अन्ते दुःख के गर्त में ही गिराने वाला है। जैसे चूहा गर्मी के मौसम में साँप के फन के नीचे बैठ जाय तो उसे तत्क्षण तो यही महसूस होगा कि वह सुख में है यद्यपि यह निश्चित है कि अगले क्षण में साँप उसे खा जायेगा ठीक वैसी ही दशा वासना भोगने वाले मनुष्य की भी है। उसे भी तत्क्षण तो हर्ष का अनुभव होता है परन्तु बाद में उसके शरीर की जो अवस्था होती है, उसके चित्त में जो ग्लानि होती है, उसके स्वभाव में जो परिवर्तन होता है, उसके मन पर जो प्रभाव पड़ता है, उसकी आयु पर जो आघात पहुँचता है, उन सभी से यह स्पष्ट है कि वह अपना ही वध अपने हाथों करने के तुल्य है। वासना से उद्वेलित मस्तिष्क वाले मनुष्य के नेत्रों पर, जोड़ों पर, पट्टों पर, कमर इत्यादि पर जो प्रभाव पड़ता है, हाथ उससे मनुष्य को कितनी हानि होती है! परन्तु जैसे कोई पतंगा अन्धा हुआ-हुआ-सा प्रकाश पर आकर्षित हुआ जाता है और जाकर अपने जीवन को नष्ट कर देता है, वैसे ही वासना से अन्धा हुआ मनुष्य भी अच्छे जीवन को कामाग्नि में जला डालता है! वह निस्तेज हो जाता है और अपने आध्यात्मिक विकास की जड़ पर ही चोट करके अपना सर्वनाश करने की मूर्खता करता है। काश, मनुष्य सद्विवेक और सदबुद्धि से काम लेकर अपने इस शत्रु पर विजय प्राप्त करे और आनन्द के अपार भण्डार की चाबी अपने हाथ कर ले!



जीवन रूपी भवन का आधार-स्तम्भ

मान लो कोई व्यक्ति किसी अच्छे शिल्पी से अपना नया मकान बनाने के लिए कोई अच्छा नक्शा बनवाता है। शिल्प विशेषज्ञ (Architect) उसमें सब प्रकार की आवश्यकताओं तथा सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए भवन के लिए बहुत सुन्दर डिज़ाइन बना देता है। मालिक मकान बहुत पैसा खर्च करके बड़ी रुचि से उस मकान को बनवाता है। मकान के फर्श बड़े साफ-सुथरे और अच्छी तरह बने हुये हैं। कमरों की छतों पर नक्काशी हुई-हुई है और उन से फानूस लटक रहे हैं। गलीचे बिछे हुए हैं और खिड़कियाँ तथा दरवाज़े बहुत आलीशान हैं।



मकान के दर-दीवार, उस का फर्नीचर और अन्दर की सजावट सभी अपनी-अपनी जगह अद्भुत हैं। परन्तु उसका आधार-स्तम्भ मज़बूत नहीं है। वह भीतर से खोखला है। परिणाम-स्वरूप एक दिन वह गिर जाता है और सारी इमारत ही धराशायी हो जाती है और सारा पैसा डूब जाता है तथा स्वप्न मिट्टी में मिल जाते हैं। देखिये तो एक आधार-स्तम्भ के कारण से यह दुःख होता है, अन्दर रहने वाले कष्ट पाते हैं। ठीक वैसा ही हाल उन लोगों का होता

है जिनके सभी अंग सुन्दर हों, जिन्हें सभी धन-धान्य और फैशन की सब चीज़ें भी प्राप्त हों परन्तु ब्रह्मचर्य रूपी आधार स्तम्भ को खोखला बनाते हैं। वे भी दुःख ही उठाते हैं।



मेरा बाप सुल्तान था, परन्तु मैं.....?

भारत के लोगों को अपनी प्राचीन संस्कृति पर तथा अपने पूर्वजों पर गर्व है। वे चिरातीत काल में हुए ऋषियों और मुनियों की महिमा करते नहीं अघाते। वे कहते हैं कि हमारे देश में पुराकाल में बड़े-बड़े तत्त्वचिंतक, दार्शनिक, ब्रह्मर्षि और मनीषी हो गये हैं। विशेष बात यह कि वे कहते हैं कि हमारे पूर्वज बहुत ही बड़े यती-सती थे; वे नैष्ठिक या आदित्य ब्रह्मचर्य का पालन किया करते थे और उन्होंने इस ब्रह्मचर्य के प्रताप से बड़े-बड़े अद्भुत काम किये थे। प्राचीन साहित्य में से वे कितने ही ऐसे जनों के नाम गिना देते हैं जिनमें ब्रह्मचर्य के कारण प्रतिभा थी। संस्कृति के गगन में चमकने वाले ऐसे तारों की ओर इंगित करके वे कहते हैं – ‘‘देखो तो हमारे यहाँ ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने की जैसी प्रथा थी, वैसी और कहाँ थी?’’ इस विषय में वे लक्ष्मण, हनुमान, भीष्म, शुकदेव, नचिकेता, ध्रुव इत्यादि का नाम लेते हैं।

लक्ष्मण की विशेषता

रामायण में बताया गया है कि रावण के पुत्र मेघनाथ को कोई भी नहीं मार सकता था क्योंकि उसकी पत्नी – सुलोचना – के पतिव्रत के बल से मेघनाथ अजय हो गया था। रामायण में लिखा है कि मेघनाथ ‘इन्द्रजीत’ था। तब फिर उसकी मृत्यु कैसे हुई? राम-रावण युद्ध में मेघनाथ को किसने मारा? रामायण कहती है कि उसे लक्ष्मण ने मारा। केवल लक्ष्मण ही इसके योग्य था। रामायण में लिखा है कि जब सुलोचना को यह सूचना मिली कि मेघनाथ मारा गया है तो उसको इस समाचार पर रंचमात्र भी विश्वास नहीं हुआ। वह बोली कि मेरे पति को केवल वही मार सकता है जिसने बारह वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया हो। अन्य तो उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता। उसकी इस निश्चय-भरी वाणी को सुनकर सभी चुप रह गये। अखिर एक दासी ने हिम्मत करके कहा – ‘पवित्रे, यह सच है कि मेघनाथ मारा गया है। उसे लक्ष्मण ने आज मार डाला है।’ लक्ष्मण का नाम सुनकर उसे विश्वास हुआ कि मेघनाथ का वध हो गया है क्योंकि लक्ष्मण के अखण्ड ब्रह्मचर्य पर किसी को भी सन्देह नहीं था।

रामायण में लिखा है कि जब रावण सीता को चुरा ले गया और दोनों भाई उसकी खोज में निकले तो कुछ ज़ेवर उपलब्ध होने पर राम ने लक्ष्मण को कहा कि वह पहचान कर बताये कि क्या वे ज़ेवर सीता के हैं। तब लक्ष्मण ने कहा 'महाराज, मैं सीता जी के केयूर, कुण्डल इत्यादि तो नहीं पहचान सकता, मैं तो केवल उनके नूपुर ही पहचान सकता हूँ क्योंकि मैं नित्य उनके चरणों पर झुका करता था।' इस प्रकार लक्ष्मण जी किसी को कभी कुदृष्टि से देखते ही नहीं थे। यदि मेघनाथ 'इन्द्रजीत' था तो लक्ष्मण जी 'इन्द्रियजीत' थे।

इन प्रसंगों का उदाहरण देकर भारत के नर-नारी अपनी प्राचीन संस्कृति की उत्कृष्टता का तथा अपने पूर्वजों का राग अलापा करते हैं। परन्तु देखा जाय तो आज हमारे देश की स्थिति क्या है? लक्ष्मण सीता जी के मुखारविन्द की ओर नहीं देखता होगा परन्तु आज तो इस देश के वयोवृद्ध लोग भी राह जाती हर कन्या अथवा नारी को ताकते हैं। साइकिल पर या मोटर में जाने वाले भी पीछे मुड़कर अपलक देखते रहते हैं। वे भूले हुए हैं कि इस प्रकार के आचार से वे अपनी संस्कृति पर कलंक बने हुए हैं।

वास्तव में 'लक्ष्मण' शब्द हमें यह सन्देश देता है कि हम भी अपने 'लक्ष्य' में 'मन' को लगा कर 'लक्ष्मण' बनें। लक्ष्य में मन को लगाने से मनुष्य की दृष्टि और वृत्ति पवित्र हो जाती है और वह 'इन्द्रियजीत' बनकर 'इन्द्रजीत' भी बन जाता है। वह रावण अर्थात् 'माया' के पुत्र-कलत्र का अन्त कर देता है। जो राम अर्थात् परमपिता परमात्मा का सहयोगी, सहगामी अथवा अनुगामी बनता है, वह अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन के उच्च लक्ष्य को सिद्ध कर लेता है। 'सीता' शब्द का अर्थ पवित्रता है। 'सुलोचना' शब्द का अर्थ 'पवित्र दृष्टि वाली नारी' है। जिस नारी की दृष्टि भटकती नहीं, जो देह-अभिमान या वासना दृष्टि से किसी को देखती नहीं, वह ही 'सुलोचना' है। यदि किसी ऐसी स्त्री का किसी असुर अथवा राक्षस के पास रहना हो भी जाय तो लक्ष्य में मन लगाने से ही वह उसके बन्धन से मुक्त हो सकती है। इस प्रकार, हमें इस आख्यान से प्रेरणा

1. नाहमं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।

नूपरत्वाभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

तो यह लेनी चाहिए कि हम भी लक्ष्मण में मन लगाने वाले 'लक्ष्मण' बनें, हम जंगल के काँटों का कष्ट सहन करके भी राम के अनुरागी और सहयोगी बनें तथा अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करें। परन्तु आज तो लोग केवल नामलेवा ही बने हुए हैं।

'हनुमान' की विशेषता

भारत वर्ष में हनुमान के तो जगह-जगह मन्दिर भी बने हुए हैं। लोग इन्हें 'महावीर' कहते हैं। वे इन्हें अञ्जनि-पुत्र मानते हैं और 'पवन-सुत' भी कहते हैं। कहते हैं कि उन्होंने पहाड़ उठा लिया था और वे अमर बूटी अथवा संजीवनी ले आये थे जिससे लक्ष्मण जी फिर सचेत हो गये थे; उनकी मूर्च्छा जाती रही थी। रामायण में यह भी लिखा है कि वे सीता की खबर लेने गये थे और उसे राम का सन्देश भी दे आये थे। कहा जाता है कि उन्होंने 'काल' के मुँह पर शप्पड़ मारा था और रावण को भी नीचा दिखाया था। चित्रों में सदा उन्हें पर्वत उठाये हुए दिखाया जाता है और उनका एक पाँव पृथ्वी पर और दूसरा उससे उठा-हुआ-सा दिखाया जाता है। भाव यह है कि वह सदा चलते रहते थे, सक्रिय थे। भारतवासी भक्त लोग कहते हैं कि वे ब्रह्मचारी थे और राम-सेवक थे; उनके रोम-रोम में राम की स्मृति बसी हुई थी। चित्रकार ऐसा एक चित्र भी बनाया करते हैं कि हनुमान जी अपना हृदय चीर कर दिखा रहे होते हैं कि राम ही की याद उनके हृदय में बसती है। भारतवासी उनकी जय बोलते हैं और उन्हें ब्रह्मचर्य-पालन के लिए आदर्श मानते हैं।

यदि हम उपरोक्त पर विचार करें तो उससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि मन में परमपिता परमात्मा की याद को बसाने से हम 'महावीर' बन सकते हैं, हम पर्वत को भी उठा सकते हैं अर्थात् कठिन-से-कठिन कार्य भी कर सकते हैं। जहाँ परमात्मा की स्मृति है और ब्रह्मचर्य है, वहाँ ही मनुष्य में महावीर अर्थात् (माया) रावण से युद्ध करने की सामर्थ्य हो सकती है। इसके बिना तो मनुष्य वानर (बन्दर) जैसा ही है। नर वानर से महावीर अथवा हनुमान (मन जिसके वश में है) जैसा बन सकता है। बन्दर में तो काम, क्रोध, लोभ, मोह

और अहंकार, पाँचों ही विकार भरे होते हैं। यदि मनुष्य में भी ये हों तो वह भी गोया बन्दर अथवा वानर ही ठहरा। परन्तु जो परमात्मा का सहयोगी, सेवक, सन्देशवाहक और उसकी स्मृति में रहने वाला बनता है, वह वानर से हनुमान बन जाता है। रावण की अर्थात् विकारों की कैद में पड़ी हुई आत्माओं को परमपिता परमात्मा का सन्देश देने का कर्त्तव्य वे ही कर सकते हैं जोकि ब्रह्मचर्य का पालन करते हों; अन्य यह महान कार्य ठीक रीति से नहीं कर सकते। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले ही बड़ी आयु भी प्राप्त कर सकते हैं, जिसको ही दूसरे शब्दों में कहा गया है कि 'महावीर जी ने काल के मुँह पर थप्पड़ मारा।' हनुमान जी के पाँव का सदा चलने की मुद्रा में होना भी यही प्रदर्शित करता है कि जो सदा ईश्वरीय याद रूपी यात्रा में रहता है अर्थात् जिसका मन परमधाम और वहाँ के वासी परमात्मा ही की ओर जाता है, वही महावीर है। वह ही पर्वताकार समस्याओं को भी ब्रह्मचर्य के बल से सहज ही उठा कर, माया के वार से मूर्च्छित आत्माओं को पुनः सचेत करने का निमित्त बनता है। वह उन्हें अविनाशी ज्ञान रूपी संजीवनी बूटी के द्वारा पुनः सचेत करने की सेवा करता है। इस प्रकार, यह प्रसंग इस बात को तो रूपक अलंकार से भली भाँति स्पष्ट करता है कि ब्रह्मचर्य के पालन से मनुष्य कितना ऊँचा उठ जाता है, वह कितनी सामर्थ्य का स्वामी हो जाता है तथा कितनी उच्च सेवा करने का निमित्त बनता है परन्तु आज लोग इस प्रसंग से प्रेरणा कहाँ लेते हैं? वे तो हनुमान जी की मूर्ति पर प्रसाद ही चढ़ा डालते हैं, स्वयं तो उनसे दूर ही रहते हैं। वे स्वयं तो वानर बने रहने की ठाने हुए हैं, महावीर बनने का तो वे संकल्प ही नहीं करते। वे अपना पाँव तो धरती से उठाना ही नहीं चाहते, न ही 'काम' की जगह 'राम' को मन में बसाने को तैयार होते हैं। वे काम ही का सेवन करते हैं, राम का सेवक तो वे हनुमान जी को ही बने रहने देना चाहते हैं। पर्वत उठाने की तो बात छोड़ो वे अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए तिनका भी नहीं हिलाना चाहते। वे केवल गायन ही कर डालते हैं कि हनुमान जी ऐसे थे, वैसे थे!

शुकदेव जी की विशेषता

श्रीमद्भागवद् में शुकदेव के बारे में लिखा है कि बाल्यावस्था में ही उन्हें वैराग्य हो गया था। विरक्त होने पर वे एक दिन अपने पिता के आश्रम से निकल कर वन की ओर चल पड़े। मार्ग में ही गंगा पार करनी थी। गंगा में अनेकानेक स्त्रियाँ वस्त्र उतार कर नहा रही थीं। उन्होंने शुकदेव को उधर से गुजरते देखा तो भी उन्होंने वस्त्र धारण नहीं किये, कोई पर्दा नहीं किया। जब उनसे इसका कारण पूछा गया तो उन्होंने कहा कि - “शुकदेव जी युवा हैं तो क्या हुआ। शुकदेव जी को तो यह ज्ञान ही नहीं है कि हम ‘स्त्रियाँ’ हैं और वे यह भी नहीं जानते कि हम किस काम में लाई जाती हैं।” भागवत् की इस कथा को लेकर भक्त लोग कहते हैं - “देखो, यह भारत भूमि ही की विशेषता है कि यहाँ ऐसे भी सन्त हुए हैं।”

परन्तु ऐसा कहते हुए भी शुकदेव के जीवन से प्रेरणा लेकर पवित्र बनने वाले कितने लोग हैं? जिस देश में शुकदेव हुए, आज तो यदि कोई युवक अथवा युवती आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने का संकल्प ले तो लोग उसे खूब भली-बुरी सुनाते हैं। आज तो सभी स्त्रीत्व और पुरुषत्व के भान में हैं। अतः यदि कोई इस देह-अभिमान से निकलकर आत्म-स्थिति में टिकना चाहता है और उसके लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने की प्रतिज्ञा करता है तो लोग उसके मार्ग में खूब रोड़े अटकाते हैं। उनकी अपनी दृष्टि तो देह-दृष्टि ही है। यों तो हम सभी वास्तव में ज्ञान-कथा सुनाने वाले परमपिता परमात्मा की सन्तान - सुखदेव - ही हैं परन्तु आज बने हुए सभी दुःखदेव हैं क्योंकि काम कटारी चला कर एक-दूसरे के हृदय को घायल करने वाले हैं।

भीष्म की विशेषता

महाभारत में भीष्म के व्रत का प्रसंग है। उसमें बताया गया है कि उसने कैसे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा की। बाद में जब उसके सौतेले भाइयों की कोई सन्तति नहीं हुई जिससे कि उनका राजवंश आगे चल सके तब वहाँ के मन्त्रियों, नगरजनों इत्यादि ने भीष्म से अपना व्रत तोड़ने के लिए अनुरोध किया। परन्तु

यद्यपि भीष्म युवा अवस्था में थे तथापि वे रूप-लावण्य या विषय-भोग की ओर आकर्षित नहीं हुए और वे अपने व्रत पर दृढ़ रहे। इसी कारण उनका नाम 'देवव्रत' या 'भीष्म' हुआ। महाभारत में उनके पराक्रम का और उनकी वीरता का विषद वर्णन किया गया है और इस सबको उनके ब्रह्मचर्य ही का प्रताप बताया गया है। इसका वर्णन करके भारत के लोग गर्व से कहते हैं कि हमारे यहाँ ऐसे भी वीर हुए हैं जिन्होंने राज के उत्तराधिकार को भी त्यागकर ब्रह्मचर्य का पालन किया और आग्रह करने पर भी ब्रह्मचर्य को छोड़ने के लिये किसी भी कीमत पर तैयार नहीं हुये। परन्तु आज तो हम देखते हैं कि लोग ब्रह्मचर्य न पालन करने का ही व्रत लिए हुये हैं। 25 वर्ष या 48 वर्ष तक शास्त्र ने ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने के लिये कहा है, इतने समय तक भी कोई इस नियम का यथावत् पालन नहीं करता, तब सारी आयु इसका पालन करने की तो बात ही अलग रही। आज तो यदि कोई युवक 'भीष्म प्रतिज्ञा' लेता भी है तो लोग उसे स्वयं ही कहते हैं कि — “वह ज़माना गुज़र गया। हम तो अवश्य ही तुम्हारी शादी करेंगे।”

नचिकेता की विशेषता

कठोपनिषद् में नचिकेता का उल्लेख है। नचिकेता के पिता ने एक यज्ञ किया और उसके अन्त में बहुत-सी गौएँ दान में दीं तो नचिकेता ने बार-बार अपने पिता से कहा कि आप मुझे किसको दोगे? शास्त्र में लिखा है कि उसके पिता ने कहा कि “मैं तुझे यम को दूँगा।” उसी नचिकेता के बारे में भारतवासी कहते हैं कि — यद्यपि नचिकेता को सब प्रकार के सुखों का प्रलोभन दिया गया, सुन्दर-सुन्दर नारियों अथवा अप्सराओं का प्रलोभन भी दिया गया परन्तु फिर भी उसने सभी को अस्वीकार करते हुए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का ही निर्णय किया और आध्यात्मिक रहस्यों के ज्ञान को ही सर्वश्रेष्ठ प्राप्ति मानते हुये अन्य प्रलोभनों को ठुकरा दिया। वे कहते हैं कि भारत देश आध्यात्मवाद में सबसे आगे रहा है और यहाँ के वासी बड़े-से-बड़े प्रलोभनों को ब्रह्मचर्य तथा आध्यात्मिक ज्ञान की तुलना में हेय मानते रहे हैं।

परन्तु यदि हम ऐसा कहने वालों के अपने जीवन को देखें तो प्रायः वे सभी

धन-दारा में अटके हुये हैं। उनमें न केवल आध्यात्मिक रहस्यों को जानने की उत्कट प्यास नहीं बल्कि वे उन्हें पाने के लिये ब्रह्मचर्य जैसे आवश्यक नियम पालन करने को भी तैयार नहीं। तो भी वे अपने देश तथा अपनी संस्कृति की महिमा करते हुये नचिकेता का नाम तो लेते ही हैं।

सरस्वती तथा अन्य नारियों में विशेषता

इसी प्रकार यहाँ लोग कहते हैं कि भारत सीता, सावित्री, और सरस्वती का देश है। यहाँ नारियाँ भी आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती थीं। वेद के कई मन्त्रों की द्रष्टा अथवा ऋषि ब्रह्मचर्य व्रत धरिणी नारियाँ हुई हैं। यह वह देश है जहाँ मीरा ने ज़हर का प्याला पीना स्वीकार किया। यहाँ सरस्वती, जो विद्या की देवी मानी गई है, भी ब्रह्मचर्य व्रत धरिणी थीं। इस प्रकार गत काल में हुई महान नारियों की महानता के गीत गाये जाते हैं परन्तु आज यदि कोई कन्या उन महान स्त्रियों के पद-चिन्हों पर चलने लगे तो उनके घर वाले कहते हैं कि “विवाह तो हर हालत में करना ही है। काम विकार के बिना तो कोई रह ही नहीं सकता। यह तो संसार में शुरू से चला ही आया है” इत्यादि। गोया वे दूसरों की पवित्र कन्या की तो प्रशंसा करते हैं परन्तु अपनी कन्या या पत्नी को ब्रह्मचर्य व्रत लेने की स्वीकृति देने को तैयार नहीं होते।

अन्य धर्मों तथा देशों में संयमी व्यक्ति

इसी प्रकार, बाईबल में सेम्सन का नाम आता है। उसके बहुत से अद्भुत कर्मों और पराक्रम का उल्लेख है। पाश्चात्य दार्शनिक, कान्त (Kant) और स्पेन्सर (Spencer) के बारे में कहा जाता है कि वे संयमी थे। बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, हरेक धर्म के आचार्य अथवा बहुत-से अनुयायी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले हुये हैं। अतः उनके नाम-लेवा, उनका गुण-गान करते हुए कहते हैं कि हमारे धर्म में अथवा हमारे देश में अमुक महान व्यक्ति ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले हुए हैं। परन्तु प्रश्न तो फिर भी वही आता है कि वे सब तो महान थे, उनके वंशज अथवा उनके देश के रहने वाले हम स्वयं आज किस स्थिति में हैं?

बाप मेरा नवाब था, परन्तु मैं....

इस विषय में एक बात याद हो आती है। कुछ वर्ष पहले तक जब लखनऊ में हम जाते थे और किसी बग्गी या ताँगे में बैठते थे तो उसका कोचवान बड़ी-बड़ी बातें सुनाया करता था। वह कहता था - “बाबू जी, क्या पूछते हो! एक ज़माना था यहाँ अमुक नवाब उल्दौला की सवारी निकला करती थी। वह हमारे अब्बाजान के नाना जान थे। बस, तब अशर्फियाँ लुटा करती थीं। ख़ूब ठाठ होते थे। बाबूजी, मेरे पूर्वज नवाब थे.....।” गोया वह कहता है कि मेरा बाप सुलतान था परन्तु....मैं आज क्या हूँ? एक कोचवान ही!

“यह तो ठीक है, हम मान लेते हैं कि तुम्हारे दादा, परदादा नवाब थे...परन्तु तुम कौन हो? तुम तो ताँगा चलाते हो! यह स्थिति क्यों कर हो गयी? यह राज्य-भाग्य क्यों चला गया, तुम्हारी ऐसी हालत क्यों हो गई?”

इसी प्रकार, प्रश्न यह उठता है कि - “ठीक है यह देश सरस्वती का देश है, इसी देश में बड़े-बड़े ब्रह्मचारी हुए हैं। मान लिया हमारे पूर्वज बहुत ही महान थे और हमारी प्राचीन संस्कृति बहुत ही उच्च थी, परन्तु आज हमारे चेहरों पर हवाइयाँ क्यों उड़ती हैं? अब यह ब्रह्मचर्य केवल पुस्तकों में लिखी हुई कहानी ही क्यों हो गयी? क्या यह अच्छा लगता है कि हमारे पूर्वजों में ब्रह्मचर्य के कारण ये सब गुण थे और हम उनके वंशज गुणहीन हो गये हैं? क्या यह अच्छा लगता है कि उस पवित्र देश में आज विषय-विलास का वातावरण बना हुआ है? आध्यात्मिक उत्कर्ष की आकांक्षी आत्माओ, उठो! अपने महान पूर्वजों के माथे का कलंक मत बनो। देखो तुम्हारी संस्कृति, तुम्हारे ग्रन्थ, तुम्हारे पूर्वज, तुम्हारे आचार्य तुम्हारा आह्वान कर रहे हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन करो और सर्व सुखों की कुंजी अपने हाथ कर लो!”

जब व्यास, जिसे तुम सभी मुख्य शास्त्रों का संकलनकर्ता अथवा रचयिता मानते हो, ने अपने पुत्र शुकदेव को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने दिया तो तुम आज शास्त्रों की दुहाई देकर अपने किसी युवक मित्र या सम्बन्धी को काम-गर्त में पड़ने के लिए क्यों मजबूर करते हो! जब सरस्वती की महिमा तुम करते हो तो

अपनी किसी कन्या को माँ सरस्वती के पदचिह्नों पर चलने से क्यों रोकते हो? जब ध्रुव के ब्रह्मचर्य व्रत की तुम सराहना करते हो और लक्ष्मण के विवाहित होने के बाद भी 14 वर्ष तक उसके ब्रह्मचर्य पालन करने की बात तुम श्लाघनीय मानते हो तो अपने किसी स्वजन के ब्रह्मचर्य व्रत लेने पर अट्टहास क्यों करते हो; उसका उत्साह भंग करने का कुप्रयत्न करने की बात तुम्हें क्यों सूझती है? अतः 'बाप मेरा सुलतान था'— यह रट लगाने की बजाय स्वयं कामजीत बनकर जगतजीत बनने का श्रेष्ठ पुरुषार्थ करो! देखो तो तुम्हारे देश की यह दशा इसी कारण ही तो हुई है! अब तो सावधान हो जाओ!



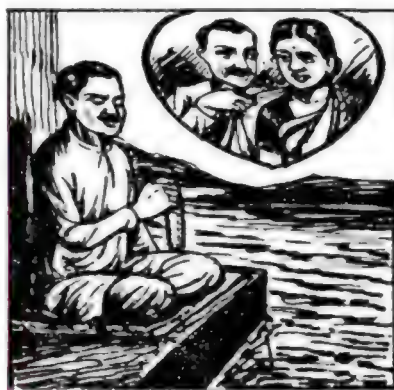
जहाँ राम है वहाँ काम नहीं

भक्त लोग 'राम' और 'काम' में विरोध बताने के लिए सन्त तुलसीदास जी का यह पद बोला करते हैं -

जहाँ राम हैं, वहाँ काम नहीं, जहाँ काम नहीं राम।

तुलसी दोनों न मिलें, रवि रजनी एक ठाम॥

भाव यह है कि जैसे सूर्य और रात्रि एक जगह इकट्ठे नहीं होते हैं वैसे ही परमात्मा की स्मृति और 'काम' भी एक जगह नहीं टिकते। इससे स्पष्ट है कि जब मनुष्य भोग-विलास में होता है, उस समय उसे प्रभु की स्मृति नहीं होती। तब निश्चय ही उसका वह कर्म विस्मृति में और देह अभिमान में होने के कारण 'विकर्म' ही हुआ। तब योगी बनना चाहने वाला व्यक्ति तो काम भोग में प्रवृत्त हो ही नहीं सकता क्योंकि उसे प्रभु ही की स्मृति में रहना है।



परन्तु, आज भक्त लोगों का हाल यह है कि वे प्रतिदिन प्रातः को तो "राम-राम, राम-राम" की माला जपते हैं और रात्रि को "काम-काम, काम-काम" की माला जपते हैं। इस प्रकार वे 'माया' और राम' दोनों के भक्त हैं बल्कि सच तो यह है कि कई बार वे कर का मनका फेरते-फेरते भी राम के

बाद काम और काम के बाद राम को याद कर लेते हैं। अब जो व्यक्ति योगी बनने का लक्ष्य धारण किए हुए हैं, उन्हें समझ लेना चाहिये कि यदि 'राम' का बनना है तो 'काम' का त्याग करना ही होगा।



शास्त्रों की बात सिर-माथे पर परन्तु विकारों का परनाला यहीं रहेगा

ब्रह्मचर्य के महत्त्व को जानने के लिए हमें इस ओर भी ध्यान देना चाहिये कि सभी धर्म और सभी शास्त्र मुक्ति और जीवन्मुक्ति की प्राप्ति ही को मनुष्य-जीवन का लक्ष्य मानते हैं और उस लक्ष्य की सिद्धि के लिये वे निरपवाद रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करने की शिक्षा देते हैं। उदाहरण के तौर पर कठोपनिषद् के एक श्लोक में कहा गया है कि - “सभी वेद जिस परमपद को प्राप्त करने के लिये तप करने का उपदेश देते हैं, उस परमपद की इच्छा वाले लोग ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं।” यही बात इनसे मिलते-जुलते शब्दों में श्रीमद्भगवद् गीता में भी कही गई है।

ब्रह्मचर्य ही ईश्वरानुभूति के लिए सच्चा ‘तप’ व ‘यज्ञ’ है

निस्सन्देह शास्त्रों में ईश्वरानुभूति अथवा प्रभु-प्राप्ति के लिये यज्ञ और तप आदि साधन भी बताये गये हैं। परन्तु ब्रह्मचर्य की महिमा करते हुए उसे ही सबसे बड़ा ‘तप’ और सबसे बड़ा ‘यज्ञ’ कहा गया है। उदाहरण के तौर पर तन्त्र शास्त्र में लिखा है कि - “जिसे लोग ‘तप’ कहते हैं, वह तो साधारण ही बात है। वास्तविक अथवा उत्तम तप तो ब्रह्मचर्य ही है। जो ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए ‘ऊर्ध्वरता’ हो गया है, उसे मनुष्य नहीं, देवता ही मानना चाहिये।”³

1. सर्वे सदा यत्पदमामनन्ति
तपोऽसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहे ब्रवीम्योमित्येतत्॥ 2.15 - कठोपनिषद्
2. यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥ 8.11 - गीता
3. न तपस्तप इत्याहु ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्
ऊर्ध्वरता भवेद्यस्तु स देवो न तु मानुषः। - तन्त्रशास्त्र

कहने का भाव यह है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने से ही मनुष्य देवता बन सकता है। प्रश्नोपनिषद् में भी कहा है कि जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वही तपस्वी स्वर्ग में जा सकता है।⁴ इसका भी यही भाव है कि वही देवता बन सकता है जो ब्रह्मचर्य का पालन करता हो।

इसी प्रकार 'आत्म-स्थिति' अथवा ईश्वरानुभूति प्राप्त कराने वाला 'यज्ञ' भी ब्रह्मचर्य ही को माना गया है। उदाहरण के तौर पर छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है कि - "जिसे 'यज्ञ' कहते हैं वह तो वास्तव में 'ब्रह्मचर्य' ही है। उस ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला ज्ञानी ही ईश्वरानुभूति करता है। जिसे 'इष्ट' कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है। उसी से ही मनुष्य अपने इष्ट का अनुभव करता है।"⁵

उपनिषदों में आत्मानुभूति के लिए बार-बार ब्रह्मचर्य का महत्त्व दर्शाया गया है। एक उपनिषद् में कहा गया है कि शरीर के अन्दर जो ज्योतिस्वरूप आत्मा विराजमान है, उसे तपस्या द्वारा पवित्र बनने पर ही देखा जा सकता है और उसके लिए सत्य-ज्ञान तथा नित्य-निरन्तर ब्रह्मचर्य के पालन की आवश्यकता है।⁶ इसी प्रकार वेदों और शास्त्रों में यह भी बारम्बार कहा गया है कि ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने से ही मनुष्य देवता पद तथा मुक्ति को प्राप्त हो सकता है।⁷ अथर्ववेद में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य ही से देवताओं ने मृत्यु को जीत

4. तेषामेवैषः स्वर्ग लोको येशां
तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्। - प्रश्नोपनिषद्
5. अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव।
तद् ब्रह्मचर्येण ह्येव व यो ज्ञाता तं विदन्तेऽयं
यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव।
तद् ब्रह्मचर्येण ह्येव इष्ट्वाऽऽत्मानमनुविन्दन्ते।
6. अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो ही शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतः श्लीणदोषाः।
सत्येन तम्यस्तपसा ह्येषः आत्मा
सम्यक्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्॥
7. ब्रह्मचर्यं प्रतिष्ठाया वीर्यलाभो भवत्यति।
सुरत्वं मानवो याति चान्ते याति परां गतिम्॥

लिया।⁸ कहीं आध्यात्मिक पुरुषार्थ में लोग केवल नियमों का पालन ही काफी न समझ लें बल्कि यमों का भी अनिवार्य रूप से पालन करें अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत में भी रहें, इसके लिए मनु ने स्पष्ट रूप से कहा है कि जो ब्रह्मचर्यादि यमों को छोड़ देता है, वह पतित होता है।⁹

ब्रह्मचर्य परमधर्म है और चारों वेदों के फल के तुल्य है

महाभारत में तो स्पष्ट ही कह दिया गया है कि 'ब्रह्मचर्य ही परम धर्म है'।¹⁰ उसमें कहा गया है कि ब्रह्मचारी जीवन-भर के लिए आरोग्य तो प्राप्त करता ही है।¹¹ परन्तु ऊर्ध्वरता ब्रह्मचारी के तो सभी पापों का भी नाश हो जाता है।¹² सांख्य दर्शन के रचयिता कपिल मुनि ने तो कहा है कि ब्रह्मचर्य ही से सभी प्रकार का बल प्राप्त होता है।¹³ अधिक क्या कहें, छांदोग्य उपनिषद्, जो कि एक मुख्य उपनिषद् है में तो यहाँ तक भी कह दिया है कि चारों वेदों का जो फल है, वही अकेले 'ब्रह्मचर्य' का है अर्थात् चारों वेदों के पठन-पाठन से मनुष्य में जितना इन्द्रिय संयम अथवा मनोबल आता है अथवा जितनी आत्मिक पवित्रता वह प्राप्त करता है, उतनी वह अकेले ब्रह्मचर्य ही से प्राप्त कर लेता है।¹⁴

धर्म-स्थापकों तथा धर्म-प्रचारकों द्वारा ब्रह्मचर्य की महिमा

फिर आप देखेंगे कि संसार में जितने भी महान धर्म-स्थापक अथवा

8. ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाध्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभात। - अथर्ववेद 11/5/19
9. यमान् सेवते सततं न नियमान् केवलान् बुधः।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्॥
10. ब्रह्मचर्य परमो धर्मः (महा. आदि. 169.71)
11. ब्रह्मचर्यस्य सुगुणं शृणु त्वच्च सुधाधिया
आजन्म भ्रगाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह।
12. सत्ये रतानां सततं दातानामूर्ध्वरतसाम्
ब्रह्मचर्यं देहद्राज्जन सर्वपापान्युपासितम्।
13. ब्रह्मचर्यं प्रतिष्ठायां वीर्यं लाभः।
14. एकतस्तुरो वेदाः ब्रह्मचर्यं तथैकतः।

धर्म-प्रचारक हुए हैं, उन्होंने भी ब्रह्मचर्य का पालन किया है तथा दूसरों को भी इस व्रत को पालन करने का आदेश-उपदेश दिया है। गीता के आदि प्रवक्ता, जिनका उद्देश्य ही धर्म की पुनः स्थापना और अधर्म का संहार था, ने तो काम विकार को 'नरक का द्वार' बताया ही है और ब्रह्मचर्य की महिमा की है परन्तु दूसरे धर्म-स्थापकों ने भी ब्रह्मचर्य की सराहना की है। उदाहरण के तौर पर ईसाई धर्म के स्थापक ईसा मसीह ने स्वयं भी ब्रह्मचर्य का पालन किया था तथा दूसरों को भी इसका उपदेश दिया था। एक स्थान पर उन्होंने कहा है कि – "अविवाहित तथा पवित्र जीवन से परमात्मा प्यार करता है। संयम और पवित्रता से रहना ईश्वरीय आदेश है।" इसी प्रकार महात्मा बुद्ध और वर्द्धमान महावीर जी ने भी ब्रह्मचर्य पर बल दिया है।

स्वामी शंकराचार्य जी ने भी विवेक चूड़ामणि में ब्रह्मचर्य का पालन करने तथा कामरूपी विष को छोड़ने के लिए बार-बार कहा है। उन्होंने कहा है कि ब्रह्मचर्य की अखण्डता से सहज ही परमात्मदर्शन हो जाता है। उन्होंने काम-विकार को सर्प के विष से भी अधिक भयानक कहा है। उनका कथन है कि विष तो पी लेने पर मनुष्य मरता है परन्तु 'काम' रूपी विष तो ऐसा उग्र है कि इसकी ओर तो देखने से ही मनुष्य मर जाता है।¹

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ब्रह्मचर्य-पालन पर ज़ोर देने के साथ-साथ उसे सहज और स्वाभाविक भी मानते हैं। वे कहते हैं – "यह विश्व मातृमय है। फिर वासना अथवा कुभावना के लिए स्थान कहाँ? तब ब्रह्मचर्य-पालन में परेशानी अथवा कठिनाई क्या है?"

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है – "हमें ऐसे ब्रह्मचारी मनुष्य चाहियें जिनके शरीर की नसें लोहे की तरह और स्नायु-तंतु इस्पात की तरह सुदृढ़ हों और जिनके तन में ऐसा मन हो कि जैसे वह वज्र से बना हुआ हो।"

टालस्टाय (Tolstoy) ने कहा है – "मनुष्य जाति में सुख-शान्ति स्थापित करने के लिए नर और नारी दोनों को सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने का पुरुषार्थ

15. दोषेण तीव्रो विषयः कृष्ण सर्प विषादपि।

विषं निहन्ति भोक्तारं चक्षु पाप्यहम्॥ – विवेक चूड़ामणि

करना चाहिए।'

पाण्डीचेरी के प्रसिद्ध योगी अरविन्द जी ने भी कहा है - "ब्रह्मचर्य और योग ही सुख का मार्ग है।'

स्वामी रामतीर्थ ने भी जोरदार शब्दों में ब्रह्मचर्य-पालन के लिये पुकारा है। वह कहते हैं - "पवित्रता! पवित्रता! संगीनों के ज़ोर से आपको पवित्रता की रक्षा करनी होगी। नहीं तो विकास के संघर्ष का निर्दय चक्र आपको कुचल देगा। आज आपकी आशा का आधार एकमात्र पवित्रता ही है। जिस प्रकार विकास की प्रक्रिया ने आप पर निकट सम्बन्धियों में विवाह न करने का आदेश ठोसा है, इसी प्रकार आपके जीवित रहने की पहली शर्त यह है कि आपके मन पवित्र हों और उनमें काम-विकार न हो।'

आर्य समाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द ने भी ब्रह्मचर्य की महिमा करते हुए कहा है कि इससे 'आरोग्य, बुद्धि, बल के बहुत सुख की प्राप्ति होती है।'¹⁶

इस प्रकार स्पष्ट है कि संसार में जितने भी महान धर्म-शिक्षक, मत-प्रवर्तक या आचार्य हुए हैं, उन सभी ने ब्रह्मचर्य पालन के लिए समाज को बार-बार कहा है। शास्त्रों में तो चरित्र का मूल ही ब्रह्मचर्य को बताया गया है।¹⁷ इतनी बात तो इस कलिकाल में हम भी देखते हैं कि यदि आज भी कोई व्यक्ति अतिशय स्त्री-भोगी होता है या अन्य नारियों पर कुदृष्टि फेंकता है तो कहा जाता है कि 'वह व्यक्ति चरित्रहीन है।' गोया 'ब्रह्मचर्य' और 'चरित्र' अभी तक भी पर्यायवाची शब्द हैं। शास्त्रों में इसे पतित से पावन अथवा पुजारी से पूज्य बनने का उपाय माना गया है। उस काल में तो 'ब्रह्मचर्य' को आत्मा का स्वरूप ही माना जाता था¹⁸ और आचार्य तो अनिवार्य रूप से ब्रह्मचारी

16. सत्यार्थ प्रकाश, चौथा समुल्लास

17. प्राणभूतं चरित्रस्य, परब्रह्मैकारणम्
समाचरन् ब्रह्मचर्यं, पूजितैरपि पूज्यते॥

18. ब्रह्मचर्यं परम ज्ञानं, ब्रह्मचर्यं परं बलम् ।
ब्रह्मचर्यमयो ह्यात्मा, ब्रह्मचर्येण तिष्ठति॥

अर्थात् ब्रह्मचर्य ही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है। ब्रह्मचर्य ही सर्वश्रेष्ठ बल है। यह आत्मा ब्रह्मचर्यमय ही है क्योंकि ब्रह्मचर्य का पालन करने से ही आत्मा की स्वयं में स्थिति होती है और शरीर भी दीर्घ काल तक स्थित रहता है।

होता था। अथर्ववेद में यह बात स्पष्ट कही गयी है।¹⁹ ऐसा होना स्वाभाविक था क्योंकि तब इस संसार सागर से तर कर पार उतरने की नौका ब्रह्मचर्य ही को माना जाता था।²⁰

हमने ऊपर जिन धर्माचार्यों अथवा धर्म-प्रवर्तकों के नाम लिये हैं, उन सभी ने स्वयं भी ब्रह्मचर्य का पालन किया। ईसा मसीह अविवाहित रहे। उन्होंने नारी को काम वासना की दृष्टि से देखना भी भोगने की तरह वर्जित बताया। महात्मा बुद्ध और महावीर की जीवन-कथाएँ तो प्रसिद्ध ही हैं। आत्मानुभूति के लिए गौतम अथवा सिद्धार्थ ने अपनी अतीव सुन्दर पत्नी को त्याग दिया और वर्द्धमान महावीर भी कामादि रिपुओं से युद्ध करने के कारण ही 'महावीर' कहलाये।

आद्य शंकराचार्य ने तो विवाह किया ही नहीं। उन्होंने तो बड़ी विचित्र रीति से घर गृहस्थ से पलड़ा छुड़ाया। स्वामी दयानन्द जी का भी अपने घर वालों के साथ काफी संघर्ष हुआ, तो भी वे डटे रहे और उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया।

स्वामी रामकृष्ण विवाहित थे परन्तु आध्यात्मिकता के मार्ग पर उन्होंने अपनी पत्नी को 'माँ' के रूप में ही देखा और ब्रह्मचर्य का पालन किया। स्वामी विवेकानन्द जी ने तो रामकृष्ण जी के देहावसान के पश्चात् ब्रह्मचर्य का व्रत लिया ही था।

शास्त्रों और धर्माचार्यों की बात सिर-माथे पर परन्तु विकारों का परनाला यहीं रहेगा

अब देखने की बात यह है कि यद्यपि सभी शास्त्रों में ब्रह्मचर्य की महिमा की गयी है और सभी धर्म-स्थापकों अथवा आचार्यों ने भी उसका पालन किया है, परन्तु उनके अनुयायी इस व्रत का पालन नहीं करते। आज करोड़ों लोग, जो स्वयं को किसी-न-किसी धर्म का अनुयायी (follower) बताते हैं,

19. आचार्यों ब्रह्मचारी। - अथर्व 11/5/16

20. समुद्रतरणे यद्वत् उपायो नौः प्रकीर्तिता।

संसार-तरणे तद्वत् ब्रह्मचर्यं प्रकीर्तितम्॥

वासना के गुलाम हैं। वे प्रातः को सत्संग करते हैं तो रात्रि को लातों का संग। उन्हें उपदेश तो यही मिलता है कि सत्संग और हरिकथा करो परन्तु करते हैं वे स्त्री-संग और काम कथा। उसी को सिनेमा के माध्यम से देखते हैं, उसी की कथा को नावलों में पढ़ते हैं। उन्होंने विवाह को स्त्री-सम्भोग के लिये समाज की ओर से एक लाइसेन्स मान रखा है। हालांकि शास्त्रों में स्पष्ट लिखा है कि विवाह भोग-विलास के लिये नहीं है।²¹ उनमें सावधान करते हुए बताया गया है कि इसमें निश्चय ही मनुष्य के तेज, बल और बुद्धि का घ्वंस होता है।²² तो भी वे चमड़ी पर आकर्षित होते हैं। वे सदा स्त्री-पुरुष के भान में रहते हैं और उनकी दृष्टि वासना के अधिन होकर भटकती है। गोया उनका मन, उनकी बुद्धि भोगी हैं। कैसी विडम्बना है कि कहने को तो वे इन शास्त्रों के और अमुक-अमुक धर्माचार्य के 'अनुयायी' हैं परन्तु आचरण में वे इन की शिक्षाओं के विपरीत कार्य करते हैं। 'अनुयायी' (follower) शब्द का अर्थ तो अपने मार्ग प्रदर्शक (Guide) के पदचिन्हों पर चलना है वरना तो स्वयं को इनका 'अनुयायी' मानना बिल्कुल ग़लत है।

आज इन धर्माचार्यों का आचरणात्मक रीति से अनुगामी होने की बात तो छोड़ दीजिये, स्थिति यहाँ तक पहुँची है कि यदि किसी परिवार में कोई एक व्यक्ति भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहता है तो दूसरे उसकी कड़ी आलोचना करते हैं, उसके मार्ग में बाधा डालते हैं। वे उससे शत्रुता ठान लेते हैं। यह व्यवहार बिल्कुल ग़लत है।

जब शास्त्रों में ब्रह्मचर्य को ही परम-धर्म, परम-तप, वास्तविक यज्ञ, चारों वेदों के तुल्य फलदायक, आत्मा का निजी स्वरूप, चरित्र का मूल आधार, आरोग्य और सुख-शान्ति का साधन और आत्मा तथा परमात्मा के अनुभव का उपाय माना गया है तो किसी को ब्रह्मचर्य पालन से रोकना कितना बड़ा पाप है! हरेक व्यक्ति का जीवन अनमोल है। यदि कोई व्यक्ति जीवन के परम लक्ष्य की सिद्धि पाना चाहता है, अर्थात् वह ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके सच्चा सुख, आत्मिक शान्ति, ईश्वरीय

21. विवाहो न विलासार्थः

22. तेजो बुद्धि बल घ्वंसो विलासात् प्रमवेत्खलु।

आनन्द पाना चाहता है, तो उसे रोकना प्रभु की दृष्टि में अक्षम्य अपराध करना ही तो है। जैसे किसी प्यासे को पानी पीने से रोकना बहुत बड़ी निर्दयता है, वैसे ही ब्रह्मचर्य पालन करते हुए अमृत के प्यासे को अमृत पीने से रोकना भी एक बहुत ही बड़े पाप का भागी बनना है।

जो नर या नारी यह मानते हैं कि वासना-भोग तो स्वाभाविक है अथवा वह हमारा अधिकार है, वास्तव में वे भूल में हैं। यदि ऐसा होता तो शास्त्र इसे 'सर्प के विष से भी अधिक भयंकर' न बताते और इसे 'नरक का द्वार' न मानते। आश्चर्य की बात है कि लोग शास्त्रों को सम्मान देते हुए भी उनमें कही हुई बात प्रैक्टिकल रूप में नहीं मानते!

इस विषय में एक प्रसिद्ध आख्यान भी है। पुराने ज़माने की बात है। कहते हैं कि किसी मुहल्ले में एक व्यक्ति के घर के परनाले से गन्दा पानी आता था। वह परनाला किसी पाइप से होकर नहीं गिरता था, न ही उसके ऊपर कोई लोहे की चादर थी। अतः आने-जाने वालों पर उस गन्दे पानी की छींटे पड़ते थे। उनके वस्त्र खराब हो जाते थे और उन्हें फिर से नहाना-धोना पड़ता था। आखिर

एक दिन उस गाँव-मुहल्ले के पंच इकट्ठे होकर उस व्यक्ति के पास गये। उस व्यक्ति ने उनके प्रति आदर प्रकट किया; उन्हें बिठाया। फिर उसने पंचों से पूछा कि उन का वहाँ आना कैसे हुआ? पंचों ने उसे कहा कि "भाई यह परनाला यहाँ से हटाओ क्योंकि इससे



जो पानी गिरता है, उससे सभी को कष्ट होता है।' परन्तु सारा किस्सा सुनने के बाद वह व्यक्ति बोला - "महाराज पंचों की बात सिर-माथे पर परन्तु परनाला यहीं रहेगा।' सोचने की बात यह है कि अगर परनाला यहीं रहेगा तो फिर बात सिर-



माथे तो हुई नहीं? ऐसे ही वे लोग हैं जो कहते हैं कि हम तो फलां शास्त्र को मानते हैं अथवा अमुक धर्माचार्य के अनुयायी या शिष्य हैं। परन्तु जब अनुकरण या शिक्षा को आचरण में लाने की बात आती है तो कहते हैं कि 'हाँ, यह बात तो सिर-माथे पर कि काम विकार विष है, परन्तु काम विकार का परनाला तो यहीं चलता ही रहेगा।'

इसी आदत के अनुसार कुछ लोग जब पहले प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय में आते हैं तो कहते हैं कि काम विकार को छोड़ना बहुत मुश्किल है परन्तु जब उन्हें इसे छोड़ने के लिए युक्ति-युक्त ईश्वरीय ज्ञान दिया जाता है और सहज राजयोग की शिक्षा दी जाती है तो यह विकार ऐसे ही सहज छूट जाता है जैसे कि मक्खन से सहज ही बाल निकल जाता है। केवल दृष्टि को बदलने की बात है। जब मनुष्य देह-दृष्टि के बजाय आत्मिक दृष्टि अपना लेता है तो यह विकार उससे सहज ही छूट जाता है।

‘काम’ – एक विकार अथवा मद

ज्ञान और विज्ञान दोनों हमें इस बात की चेतावनी देते हैं कि वासना से मनुष्य को सरासर हानि होती है। वे हमें बताते हैं कि काम से मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास को सख्त धक्का लगता है। यह मनुष्य के तन को रोगी, मन को चंचल, अश्लील एवं दुर्बल, बुद्धि को अस्थिर एवं सद्बिवेक-विहीन तथा आत्मा को पतित बनाने वाला है। इसे विकार कहा गया है क्योंकि यह प्रेम का विकृत रूप है, सौन्दर्य के प्रति विकृत वृत्ति है, सम्बन्ध का विकृत मान है और रंग-रूप तथा स्पर्श की विकृत अनुभूति है।

अज्ञान-जनित

‘काम’ अज्ञान जनित है, तभी तो इसमें प्रवृत्त होने वाला व्यक्ति स्वयं के सत्य-स्वरूप से विमुख होकर प्रकृति का दास बन जाता है, वह पवित्र आनन्द के स्रोत से भटक गया होता है; वह वास्तविक नाते को भूल चुका होता है और विवशता की ही दशा में होता है। कामी मनुष्य महसूस करता है कि वह किसी ऐसे आवेग (Emotion) के आधीन है जिस पर उसका कोई काबू नहीं। वह भीतर की आवाज़ को सुनते हुए भी नहीं सुनता, महात्माओं के वचनों को मानते हुए भी नहीं मानता, प्रभु की आज्ञा को जानते हुए भी उसकी उपेक्षा करने पर अपने को मज़बूर पाता है और विवेकहीन हुआ-सा एक क्षण के हर्ष के लिए अपना सर्वस्व लुटाने को तैयार होता है।

काम का नशा

अतः काम एक ऐसी तेज़ शराब की तरह है जिसका नशा मनुष्य को मतवाला बना देता है। यह नशा उसे शराब की बोतल से नहीं बल्कि किसी के रंग-रूप के निखार से, किसी की वाणी के झंकार से, किसी के नाज़-व-नखरों से, किसी के स्पर्श के हर्ष से मिलता है और उसके परिणामस्वरूप दीवाना हुआ-हुआ-सा वह उन्हीं आँखों के द्वारा अब कुछ और ही देखता है; उन्हीं कानों से सुनते हुए अर्थ और अनुभव कुछ और ही लेता है; इस संसार का कुछ और ही पाता है तथा जीवन को कुछ और ही समझता है। मानो उसे कोई

ऐसा मादक पदार्थ पिला दिया गया हो जिससे कि उसकी सारी अवचेतना अपने को खोकर अब कहीं और अवस्थित हो गयी हो और सुधि होते हुए भी बेसुध-सी हो, जागते हुए भी सोई हुई-सी हो अर्थात् जाग्रत अवस्था में स्वप्न देख रही हो। मूल में मानवी होने के बावजूद भी मानवता को बन्धन और पाशविकता को स्वतंत्र मानने लगी हो और समस्त ज्ञान और विज्ञान को एक ओर रखकर अथवा उन दोनों का भी विकृत प्रयोग करके अपना सर्वस्व लुटाकर ही दम लेना चाहती हो।

इस प्रकार कामी और शराबी दोनों की एक ही अवस्था होती है। दोनों मानसिक संतुलन की अवस्था में नहीं होते। दोनों का प्रभाव एक जैसा ही है। दोनों ही अपने कर्म के परिणाम की परवाह नहीं करते। दोनों ही स्वयं को किसी के प्रति आकर्षित अनुभव करते हैं और जब उसे पा लेते हैं तो स्वयं को विवश पाते हैं। उस स्थिति में उन्हें लोक-त्लाज या पाप-पुण्य का विचार नहीं रहता। दोनों ही उस स्थिति के बाद उदासी (Depression) महसूस करते हैं। अतः काम को भी एक प्रकार की शराब मानकर छोड़ देना चाहिए।

अन्धे को आइना

जैसे अन्धे को आइना दिखाना बेकार है, वैसे ही 'कामान्ध' हुए मनुष्य को भी स्थिति-दर्पण दिखाना व्यर्थ है। चाहे करोड़ों लोग जन-संख्या में तीव्र वृद्धि के कारण भूखे-नंगे मर रहे हों परन्तु 'कामी' मनुष्य को तो 'काम' ही की लत पड़ी होती है, वह तो नशई व्यक्ति की तरह उसके बिना रहने को तैयार नहीं होता 'काम...काम...काम', वह तो ऐसे ही चिल्लाता है। ठीक यही हालत आज के संसार की है। एक ओर लाखों-करोड़ों व्यक्ति दुःखी हैं परन्तु कामान्ध व्यक्ति को इस स्थिति का ज़रा भी साक्षात्कार नहीं होता क्योंकि वह अज्ञानान्ध है।



आज की संकटमय स्थिति और ब्रह्मचर्य

यदि हम सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से देखें तो नर-नारी के वासनात्मक सम्बन्ध के परिणामस्वरूप आज समाज के लिए एक भयावह स्थिति पैदा हो गयी है। आप भारत देश की ही स्थिति पर विचार कीजिए; यहाँ पति-पत्नी के वासनात्मक संसर्ग का यह परिणाम हमारे सामने है कि जनसंख्या में जो अत्यन्त तीव्र वृद्धि होती आयी है, उसके कारण करोड़ों नर-नारी निर्धनता के स्तर (poverty line) से भी नीचे की श्रेणी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। 01 नवम्बर, 1975 को बम्बई से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक ब्लिट्ज में लिखा था कि भारत के 50 प्रतिशत लोग अर्थात् लगभग 27.5 करोड़ लोग, ऐसे हैं जिन्हें पेट-भर भोजन नहीं मिलता क्योंकि वे अत्यन्त गरीब हैं। इस पर भी, जिन्हें रहने के लिए मकान या पहनने के लिए कपड़े नहीं मिलते और जिन्हें औषधि-उपचार तथा शिक्षा के लिए भी पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं होते, वे 40 प्रतिशत इनके अलावा हैं। इसी पत्र के एक अन्य स्थायी स्तम्भ के अन्तर्गत बम्बई के लोगों की दशा का उल्लेख करते हुए लिखा गया था कि बम्बई महानगर में लगभग 90 हजार लोग फुटपाथ पर सोते हैं और इनके अलावा कितने ऐसे हैं जो चाल (Chawls) में या सड़कों के किनारे पर पड़े खाली सीवर-पाइप (sewer pipes) इत्यादि में रहते हैं? कलकत्ते

1. 'Can poverty be solved? Facts you should know': **Blitz**, dated the 1st. Nov., 1975. ".....In India, we can say, all those who are below the poverty line, that is those who do not get enough to eat, are the desperately poor and these constitute nearly 50 per cent or 275 million of a total population of 550 million.

Further, those who do not have adequate shelter, clothing, medical aid and education may be another 40 per cent of the total population. In other words, nearly 90 per cent of our people are poor. This is also confirmed by the fact that organised industry in India caters to only about 10 per cent of the people."

2. 'Believe it or not,': **Blitz**, dt. 1-11-75.

First City's third class citizens: Over 90,000 people live on footpaths and

में तो लोगों के आवास-निवास की हालत इससे बहुत ही ज़्यादा खराब है।

जैसी हालत यहाँ रहने के स्थान की है, वैसी ही पहनने के कपड़ों तथा भोजन के लिए अन्न की है। निर्धनता के कारण लोग तन ढांपने के लिए कपड़ा नहीं खरीद सकते, न ही रोटी के लिए आटे-दाल की व्यवस्था कर पाते हैं। नवम्बर, 1975 में एक दुःखद समाचार में जिसमें बताया गया था कि दीपावली के अवसर पर जब कुछ लोगों को मुफ्त कपड़ा बांटा जा रहा था तो सौराष्ट्री लोगों के 3,000 जनों का झमघट उमड़ पड़ा और उसमें से 19 व्यक्ति मारे गये तथा लगभग 40 घायल हुए।³ या वह समाचार कितना करुणोत्पादक है जिसमें बताया गया था कि एक व्यक्ति के पास इतने भी पैसे नहीं थे कि वह ज़हर खरीद करके अपनी तथा परिवार के अन्य सदस्यों की हत्या ही कर सके।⁴ या वह समाचार कितना हृदयविदारक है जिसमें बताया गया था कि अनेकानेक माता-पिता ने अन्न-संकट के दिनों में गरीबी के कारण अपने बच्चों को भी बेच दिया या वे उन्हें छोड़कर कहीं चले गये थे।⁵

pavements in Bombay as many out of every 100 people in Bombay as 17 live in zopadpatties, 61 in chawls -- making a total of 78. They are denied the elementary facilities of hygiene, water and sanitation. 20 live in flats, one in bungalows and the other one in different types of dwellings. These figures were given recently in Bombay by Dr. Rashmi Mayur, an expert in Urban Planning."

3. "Nineteen people were killed, including a baby, and 10 others injured when stampede occurred in a crowd of about 3,000 people belonging to a Saurashtra community, seeking free clothes for Diwali. The organisers tried to close the gate and the people tried to gate-crash. Many fell on the ground and the onrushing crowd ran over them."

-- Times of India

4. 'Sad end of honest family of seven.' **Indian Express**. dt. 19-9-74, **Vijayawada**. "To serve milk with poison was the last loving gesture of Veeraju to his family after a suicide pact following three days of starvation. The milk was not theirs; it was meant to be passed to vendors for a paltry commission. The police found a tumbler smelling of endrine near each body. There was neither rice nor any food-stuff in the house. The kitchen utensils were clean and appeared unused for several days. The deputy superintendent of police said he did not suspect any foul play..."
5. "They sell their children to buy food in Orissa: **Sunday Standard**, dated the 1-6-75.

केवल इतना ही नहीं कि निर्धनता रेखा के नीचे की श्रेणी के लोगों की दशा अत्यन्त शोचनीय है, मध्यम-वर्ग (middle class) के लोगों की हालत भी कोई अच्छी नहीं है। इस विषय में दैनिक हिन्दुस्तान टाइम्स में पहले जो एक समाचार छपा था वह पठनीय है। उसमें बताया गया था कि मध्यम-वर्ग के लगभग 46 प्रतिशत लोगों ने ऋण लिया हुआ है। यदि औसत ली जाय तो मध्यम-वर्ग के हर घराने ने 1,585 रुपये ऋण ले रखा है...।

जन-संख्या में भयावह वृद्धि

जैसे कि हम पहले कह आये हैं, इस दर्दनाक निर्धनता का एक मुख्य कारण हमारे देश की तीव्रता से बढ़ती हुई आबादी है। भारत सरकार द्वारा प्रकाशित किए गए आंकड़ों से पता चलता है कि सन् 1951 से 1961 तक के दस वर्षों में यहाँ की आबादी 36 करोड़ 10 लाख से बढ़कर 43 करोड़ 90 लाख हो गयी। गोया एक ही दशक में 7 करोड़ 80 लाख आबादी बढ़ गयी, फिर अगले 10 वर्षों में अर्थात् 1970 तक, यह 10 करोड़ 90 लाख और बढ़ गई। इस प्रकार विज्ञ लोगों ने हिसाब लगाकर बताया है कि हमारे देश में हर सेकण्ड में दो बच्चे पैदा

“Bhubaneshwar, May 31. Man has become a savage in the remote Nawapada sub-division of Kalahandi district.”

Fathers are selling their teen-age daughters for a song. Already sold one, among others, Prem Lata Nayak, Sapira Guada, Mini Bichi and Jayamani. Mangu Guada, father of 10 year old Sapira Guada was lucky. She fetched him Rs. 51/- the highest price offered so far during the current drought... A naked woman faints on the door-steps of the relief kitchen of Kalyanpuri and breathes her last. A long, serpentine queue of famished men, women and children are waiting outside for a tumbler of gruel each.

...When this is the situation, one naturally wonders on what these unfortunate people live...”

6. Indebtedness on the rise in middle class families: **The Hindustan Times**, dt. the 4-2-75. **Bombay**, Feb.3. More than 46 per cent of the non-manual employee house-holds in urban areas reported indebtedness, totalling Rs. 249 crores or an average of Rs. 1,585 per household. ..This is disclosed in a Reserve Bank bulletin on a survey of indebtedness of non-manual employee house-holds...”
7. Population Policy, by A. Chandrashekhar, Ministry of Health and Family Planning — **Indian Express**, dt. 26th. April, 1976.

होने की रफ्तार से आबादी बढ़ रही है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि यहाँ प्रतिवर्ष लगभग 1 करोड़ 30 लाख नये व्यक्ति जन्म लेते हैं। स्पष्ट है कि इस गति से जिस देश की आबादी बढ़ रही हो, उसका आर्थिक स्तर अधिक ऊँचा उठा सकना अत्यन्त दुरूह है।

सभी जानते हैं कि देश के आर्थिक स्रोत और माल का उत्पादन इत्यादि तो उस गति से बढ़ नहीं सकते जिस गति से आबादी बढ़ती है क्योंकि आबादी तो गुणा के अनुपात से (in geometrical progression) बढ़ती है जबकि वस्तुओं का उत्पादन जोड़ की विधि से (in arithmetical progression) वृद्धि को प्राप्त होता है। अतः लोगों के लिए आबादी के अनुपात से मकान, दुकान, रोजगार या शिक्षा-संस्थानों की व्यवस्था नहीं की जा सकती। इसके परिणामस्वरूप स्वाभाविक है कि निर्धन वर्ग के लोगों के जीवन को ऊँचा उठाने के सभी प्रयत्न असफल से हो जाते हैं।

उदाहरण के तौर पर रोजगार की समस्या को लीजिए। मई, 1975 में रोजगार के दफ्तरों (Employment Exchanges) के चालू रजिस्ट्रों में लगभग 87 लाख लोगों के नाम दर्ज थे। इनमें से लगभग 41 लाख उच्च शिक्षा प्राप्त थे। यह तो शहरों की स्थिति है; गाँव के जो करोड़ों लोग, किसी रोजगार दफ्तर में गये ही नहीं, उनकी तो कहानी ही अलग है। परन्तु जिन लोगों ने अपने नाम रोजगार दफ्तर में एक बार दर्ज कराने के बाद उनका नवीनीकरण (renewal) नहीं कराया, उनकी भी इसमें गिनती नहीं है। अब स्वाभाविक है कि आबादी बढ़ने के साथ-साथ बे-रोजगारी भी बढ़ेगी ही क्योंकि धन्ये तो इतनी तीव्र गति से बढ़ते नहीं जितनी तेजी से जन-संख्या बढ़ती है।

यहाँ जन-संख्या जिस तीव्र गति से बढ़ रही है, उसका अन्दाजा आपको इस बात से भी हो सकता है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद अब तक भारत की जन-संख्या तीन गुणा को प्राप्त हो गई है। इस स्थिति को यों भी समझा जा

8. The Population Problem: reality and response, by Sumer Kaul, **Indian Express**, dt. the 24th. April, 1976.
9. Facing the Facts, Editorial, **Sunday Standard**, dt. the 29th. February, 1976.

सकता है कि हमारे देश में हर वर्ष जन-संख्या में जो वृद्धि होती है, वह आस्ट्रेलिया की कुल आबादी के बराबर होती है। फिर, आपको मालूम रहे कि आस्ट्रेलिया का क्षेत्रफल हमारे देश के क्षेत्रफल से दुगना है।

दूसरे शब्दों में यों भी कहा जा सकता है कि हमारे देश की आबादी सारे विश्व की जन-संख्या का 15% है यद्यपि हमारे देश का क्षेत्रफल विश्व भू-क्षेत्र का लगभग 2.4% मात्र ही है। गोया हमारे देश की आबादी पहले ही बहुत गुंजान है और इस पर भी उसमें हर वर्ष अत्यन्त तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। फिर, इसमें भी विशेष शोचनीय बात यह है कि हमारे देश के क्षेत्रफल का 50% प्रतिशत बेकार है।¹⁰

इस प्रकार, स्पष्ट है कि अब भारत भूमि अधिक नर-नारियों का भार वाहन नहीं कर सकती। अब जन-संख्या में इस गति से वृद्धि होने की स्वीकृति देना गोया सारे देश को एक अभूतपूर्व दुरावस्था में ले जाने के समान होगा। आपको मालूम होना चाहिए कि 11 मई, 2000 को देश की जन-संख्या एक अरब के निशाने को पार कर गयी है।

यही कारण है कि भारत सरकार ने जन-संख्या वृद्धि की समस्या की ओर कड़ा दृष्टिकोण अपनाया है। जब देश में आपात स्थिति घोषित हुई-हुई थी, तब सरकार ने बहुत कड़े कदम लिये थे। समस्या की गम्भीरता को समझते हुए वर्तमान सरकार ने हर प्रकार से जनसंख्या तीव्र वृद्धि की दर को नियन्त्रित करने की बात ठान ली हुई है।

पहले कांग्रेस सरकार ने अपने कर्मचारियों को विशेष निर्देश दिया था कि

10. 50 per cent of India's Land 'total waste': **Indian Express**, dt. the 9th Oct., 1975.

"Varanasi, Oct. 8 (UNI). Nearly 50 per cent of India's land is a 'total waste' on account of soil erosion. Water-logging, salinity, floods and canal irrigation, according to India's ecologists.

In a statement presented to the UNESCO-sponsored ecology conference here, the Indian delegation, headed by Prof. R. Misra, eminent ecologist, has estimated that 187 million hectares of the country's land has been rendered a total waste because of these factors.

The total geographical area of India is 363 million hectares.

वे स्वयं इस सरकारी नीति का पालन करें। सरकार ने सन्तति-निरोध के साधन अपनाने वालों के लिए आर्थिक प्रोत्साहन भी निश्चित किए थे। प्रसार साधनों के द्वारा अब भी सरकार सन्तति-निरोध को एक राष्ट्रीय अभियान का रूप दे रही है। यह सब इसलिए हो रहा है कि सरकार अब इसे भली-भाँति समझती है कि वर्तमान स्थिति संकटमय स्थिति है।

वास्तव में यदि गम्भीरता से सोचा जाय तो आज केवल भारत ही संकट-कालीन स्थिति में नहीं है बल्कि सारा विश्व ही इस स्थिति में से गुजर रहा है। इसमें भी एशिया महाद्वीप की स्थिति अधिक चिन्ताजनक है। उदाहरण के तौर पर सन् 1974 में छपे एक समाचार पत्र के समाचार में बताया गया था कि एशिया में प्रतिदिन लगभग 80,000 भूखे व्यक्ति वहाँ के भूखों की जन-संख्या में और जुड़ जाते हैं जबकि पहले से ही इस महाद्वीप में तथा अन्य निर्धन महाद्वीपों में 80 करोड़ अधभूखे व्यक्ति हैं जो कि अपौष्टिक एवं अपर्याप्त भोजन पर जैसे-कैसे जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यदि एक-दो बार और दुर्भिक्ष पड़ जाय तो प्रति सेकेण्ड 25 व्यक्तियों की दर से यहाँ लोग मरने लगेंगे।¹¹

इसी प्रकार, एक दूसरे समाचार में कहा गया था कि विश्व के 1 अरब गरीब लोगों का भविष्य बहुत निराशाजनक है।¹² एक समाचार में तो यह भी कहा गया था कि विश्व बैंक के आँकड़ों के अनुसार इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि इस भूमण्डल पर हर चार व्यक्तियों में से एक की तो यह दशा है कि उसे अपनी आय 50 डालर से बढ़ा कर 100 डालर करने के लिए 72 वर्ष

11. Feeding the world's hungry millions, by Razia Ismail: Sunday Standard, dt. the 10th. Nov., 1974.

"Every day, Asia adds 80,000 hungry mouths to its burdens. It is estimated that in this and other impoverished continents, there are 800 million acutely malnourished people, struggling to survive on hideously inadequate diets. Another bad harvest or two and they can begin dying at the rate of 25 people every second."

12. Gloomy future for world's 1000 million poor, Sunday Standard, dt. the 24th. Aug. 1975.

"The World Bank has warned grimly in its annual report that average real incomes did not rise at all for the 1000 million people living in lower-income countries owing to the economic events of the past year."

लगेगे यद्यपि 100 डालर भी एक निराशाजनक ही राशी है।¹³ समाचार में कहा गया था कि स्थिति इतनी चिन्ताजनक है कि इसके लिए तुरन्त ही विश्व-भर के राष्ट्रों को कोई ठोस कदम लेना चाहिए। और, वह ठोस कदम यह भी तो हो कि जन-संख्या में आ रही बाढ़ को रोका जाय और इसके लिए मनुष्य को कुछ मानसिक नियन्त्रण सिखाया जाता। हम देखते हैं कि यदा-कदा किसी-किसी देश में खाद्यान्न की उत्पत्ति कुछ अधिक हो जाती है तो उससे जन-साधारण यह अर्थ लेने लग जाते हैं कि हमारे देश में अन्न की कमी नहीं है और यहाँ आबादी की रोक-थाम के लिए कोई चिन्ता की ज़रूरत नहीं है। वे भूल जाते हैं कि विश्व में कृषि में अधिकाधिक विकास के बावजूद भी विश्व की कुल दशा अभी तक भी चिन्ताजनक ही है। इस विषय में विश्व खाद्य और कृषि संस्था के महानिर्देशक द्वारा सन् 1976 में दी गई सावधानी में उन्होंने बताया था कि “विश्व के दो-तिहाई भाग की दशा अत्यन्त दयनीय है”¹⁴ और इसके सुधार के लिए जन-संख्या को कम करना होगा।’ इस प्रकार, आप

13. An economic time bomb, by T.V. Parsuram, **Indian Express**, dt. the 25th Aug. 1975.

“Washington D.C. Any statesman from a poor developing country who does not break into a cold sweat when he reads the annual reports of the World Bank and International Monetary Fund this year is either rant or callous. If present trends continue, the reports warn, the incomes of the one thousand million people living in lower income countries may grow by less than one percent yearly for the rest of the decade.

These cold statistics mean that for one person out of four on this planet earth, it will take 72 years to double his 50 dollars per capita income to the miserable level of 100 dollars. Obviously, this is unacceptable. It is a presecrption for revolution, anarchy and chaos. The international community has to wake up to reality.

The reports of the Bank aid Fund are the composite product of the highly trained staff of these institutions and the executive directors representing 126 countries. The reports indicate that there is at least intellectual appreciation of the seriousness of the situation...However, intellectual appreciation has to be followed up by emotional awareness and concrete action by the nations of the world...”

14. The lengthening shadow, **Indian Express**, dt. 7-1-76. “The warning of the new Director General of the Food and Agriculture Organisation, Mr. Edouard Saouma. about an “era of chronic food crisis” is unlikely to stir

व्यक्ति को ज्ञान तथा प्रेरणा (Education and persuasion) है। यदि मनुष्यात्मा को स्वरूप की पहचान दी जाय तथा ब्रह्मचर्य के लिए प्रेरणा दी जाय तो इस समस्या का भी स्थायी हल हो सकता है और इससे ब्रह्मचर्य का पालन करने वालों को अपने जीवन में ओज, शक्ति, आरोग्य, चारित्र्य, मनोबल इत्यादि का भी अपूर्व लाभ हो सकता है।

समाज और व्यक्ति का सम्बन्ध

यह सभी जानते हैं कि व्यक्ति चूँकि समाज की इकाई है, इसलिए उसके कर्मों का समाज पर भी प्रभाव पड़ता है, चाहे वह प्रभाव अत्यन्त न्यून क्यों न हो। इसी प्रकार, समाज की रीति-नीति का प्रभाव भी व्यक्ति पर पड़ता है। अब देखने की बात यह है कि समाज ने व्यक्ति के लिये जो विवाह व्यवस्था बनाई थी, उसमें चलते-चलते वासना इतनी बढ़ गयी है कि आज समस्त समाज के सामने कमी, कमजोरी और कठिनाई की परिस्थितियाँ हैं। व्यक्ति की वासनात्मक स्वच्छन्दता का परिणाम आज समूचे समाज को भोगना पड़ रहा है।

तो हम देखते हैं कि व्यक्ति के आचार-व्यवहार के कारण समाज के लिए कई समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। फिर, समाज उन समस्याओं को सुलझाने के लिये यत्न करता है, वह आगे के लिए नियम अथवा विधि-विधान बनाता है और व्यक्ति को मार्ग प्रदर्शना तथा साधन-सुविधाएँ भी उपलब्ध कराता है। व्यक्ति भी समाज के लाभ के लिए कई कुर्बानियाँ करता है। वह सब की सुविधा तथा भलाई के लिए सरकार द्वारा बनाये गये नियमों का पालन करता है तथा उसके जिस कार्य-कलाप से समाज को हानि हो, उसे वह त्याग भी देता है।

इस विधि के अनुसार, अब व्यक्ति को चाहिए कि प्रचलित विवाहित जीवन में वासना-भोग की स्वच्छन्दता के बारे में वह अपने दृष्टिकोण को बदले। वह अपने देश, अपने मानव-परिवार अथवा विश्व के लिए अपने इस शेष रहे हुए थोड़े समय के लिए 'काम' विकार को त्याग दे। जबकि हमारे

पूर्वजों ने अपने तन-मन-धन की कुर्बानियाँ देकर देश को राजनीतिक स्वतन्त्रता दिलाई तब क्या हम उनके वंशज कुछ वर्षों के लिए भी वासना-भोग छोड़ कर अपने देश को आर्थिक स्वतन्त्रता, नैतिक श्रेष्ठता, स्वास्थ्य तथा समृद्धि दिलाने की सेवा नहीं कर सकते? क्या यह देखते हुए कि यहाँ अन्न, धन, रोज़गार इत्यादि के अभाव के कारण करोड़ों लोग मृत्यु की प्रतिक्षा कर रहे हैं, हमें इतनी भी करुणा नहीं आती कि हम उनकी खातिर सहवास और स्त्री गमन को कुछ वर्षों के लिए छोड़ दें? क्या गरीबों के बच्चों को चम्मच-भर दूध के लिए, सूखी रोटी के टुकड़े के लिए, सर्दों से तन को बचाने के उद्देश्य से फटे-पुराने चीथड़े के लिए पुकार करते तथा बिलबिलाते देखकर भी हम में करुणा का उदय नहीं होता; हम अपने कर्तव्य के लिए जाग्रत नहीं होते? क्या हमारा आत्मन् पत्थर की भाँति शिथिल हो गया है कि उसे करोड़ों भूखों, नंगों, बेरोज़गारों और बीमारों की क्रन्दन ध्वनि सुनाई नहीं देती और उनके हृदय-विदारक दृश्य से प्लावित नहीं होता? क्या हमें समय की पुकार, समाज की माँग, देश की आवश्यकता, किसी का भी ख्याल नहीं? हमने वासना की इतनी मोटी पट्टी बाँध ली है कि हमें कुछ दिखाई नहीं देता?

आखिर, रोग, शोक, ग़रीबी और दुःखों से भरी दुनिया में और बच्चों को पैदा करने की ज़रूरत ही क्या है? क्या हम उन्हें दुःख की इस काल-कोठरी में बन्द करना चाहते हैं? यहाँ पहले ही ऐसे करोड़ों लोग हैं जो हृदय रोग, कैंसर, तनाव, अन्धापन इत्यादि के शिकार हैं।¹⁶ कितने ही ऐसे लोग हैं जो

16. (क) "भारत में प्रतिदिन 110 आत्म-हत्याएँ," नवभारत टाइम्स, 14 सितम्बर, 1975

(ख) 'हम बीमार हैं' - 'शायद ही कोई भारतीय हो जो पूर्ण स्वस्थ हो और रोगाणुओं से मुक्त हो' - यह बात डा. न.प. गुप्त ने कही है जो वायरस रिसर्च-सेन्टर के निर्देशक हैं। - नवभारत टाइम्स 16 अक्टूबर, 1975

(ग) "अकेले बम्बई में 60,000 रजिस्टर्ड कोढ़ी हैं।" यह बात बम्बई स्थित एक्वर्थ कोढ़ चिकित्सालय (Ackworth Leprosy Hospital, Bombay) के अधीक्षक डा. के.के. कोटेचा ने कही। जो रजिस्टर्ड नहीं हैं, उनकी संख्या तो बहुत ही अधिक है।

- Blitz, dt. 1-11-75

(घ) 5 million people die of cancer every year, according to the monthly World Health Organisation (WHO) bulletin, published in Geneva:

अपने हाथों अपनी हत्या कर लेते हैं। तब भी क्या हमें इसमें खुशी है कि ऐसे रौरव नरक में सन्तान पैदा करके सभी को और अधिक दुःखी किया जाय?

Indian Express; dt. the 3rd Nov., '75.

(ड) V.D. now a major health problem. There are 200 million V.D. Leprosy-affected people in the world -- **Indian Express**, dt. the 30th Dec., '75.

(च) 400 die unnatural death everyday in India, **Sunday Standard**, dt. the 14th Sept., '75

(छ) Neurosis cases detected in Delhi University. According to Lt. Col D.G. Chakravorty, 98 per cent of about 400 persons of Delhi University whom he has treated during the last two years, suffered from neurosis: **Indian Express**, dt. the 27th Dec., '74.

(ज) 25 percent of world may be under-nourished, **Indian Express**, dt. the 3rd June, 1974. "As many as 800 million people, almost a quarter of the world's population, may be suffering from malnutrition, a U.N. report said today..."

‘काम’ एक विष अथवा एक बड़ी हिंसा

यदि गम्भीरता से सोचा जाये तो ‘काम’ एक तेज़ विष है। हमारे पूर्वजों ने उसे सांप के विष से भी अधिक ज़हरीला माना है। इस बात को समझाने के लिये वे कहते हैं कि देखो तो! काम तो ऐसा विष है कि गर्भवती नारी की परछाई पड़ने पर विष-भरा साँप भी अन्धा हो जाता है! सन्त कबीर का तो इस विषय में एक दोहा भी है —

नारी की छाई पड़त, अन्धा होत भुजंग।

कबीरा तिन की क्या गति, जो नित नारी के संग॥

‘काम’ को विष तो सभी ने कहा है क्योंकि जैसे विष से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, वैसे ही वासना के कारण मनुष्यों की किन्हीं शारीरिक ग्रंथियों के जो स्त्राव होते हैं वे भी उसे मृत्यु की ओर खींच ले जाते हैं। अतः किसी ने इसे ‘विष की बेलरी’ कहा है तो किसी ने ‘कालकूट’। एक कवि ने इसे ‘तिय विष’ नाम देते हुए कहा है —

विष अनेक संसार में, तिय विष होय विशेष।

विष सेवे बच जाय पै, तिय सेवे नहीं शेष॥

गोया कवि कहता है कि अन्य प्रकार का विष सेवन करने वाला तो बच भी जाता है परन्तु ‘काम’ रूपी विष का सेवन करने वाला नहीं बच सकता। दूसरे कवि ने कहा है कि साँप का विष तो उस द्वारा काटे जाने से ही मनुष्य पर चढ़ता है परन्तु यह विष तो देखने से ही चढ़ जाता है और उसकी विशेषता यह कि यह ज्ञान-ध्यानादि को भी नष्ट कर देता है।

अहि विष तो काटे चढ़े, यह दृगवत चढ़ि जाय।

ज्ञान, ध्यान, बल, धर्म को प्राण सहित खा जाय॥

आद्य शंकराचार्य जी ने भी यही कहा है कि अन्य प्रकार के विष को तो पीने से ही मनुष्य मरता है परन्तु काम रूपी विष तो ऐसा है कि देखने से ही

मनुष्य नष्ट हो जाता है।

अतः काम विकार के अधीन होकर विकर्म करना ऐसे ही है जैसे विष खाकर आत्म-हत्या (suicide) करना अर्थात् अपने अनमोल जीवन को मिट्टी में मिलाना। ऐसा कर्म वही कर सकता है जो अपने बारे में होश खो बैठे। यह तो गोया बिना आई मौत मरना है।

‘काम’ तो विष है ही क्योंकि इससे मनुष्य की शारीरिक शक्तियों का क्षय होता है, यह मानसिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी ‘विष’ है क्योंकि इससे मनुष्य का मन मलीन होता है और उसकी आत्मा का विकास न होकर हास होता है। अतः गीता में इसे स्पष्ट शब्दों में ‘ज्ञान विज्ञान नाशमात्मनः’ कहा है।

फिर जो स्थूल विष है वह तो मनुष्य की एक ही बार मृत्यु का कारण बनता है, परन्तु यह ‘काम’ रूपी विष तो ऐसा है कि जो आत्मा (की पवित्रता) का नाश करने के बाद भी संस्कार रूप में ही उसमें बैठ जाता है और जन्म-जन्मान्तर उसके लिये अशान्ति एवं दुःख का तथा बारम्बार मृत्यु का कारण बनता है।

विष कोई भी हो वह यही तो हानि पहुँचाता है कि वह सुख से जीने नहीं देता और मनुष्य को जल्दी मौत के घाट उतार देता है। ठीक ऐसे ही कार्य तो ‘काम’ करता है। कामी मनुष्य अपने वासनात्मक विचारों के कारण कल्पना का जो ताना-बाना बुनता रहता है वह उसे कहाँ चैन लेने देता है; गोया वह उसके ‘जीवन’ का कितना समय उसकी सुख-शान्ति के लिए शेष छोड़ता है? ‘काम’ भी मन एवं तन को एक प्रकार की मीठी या असह्य पीड़ा ही पहुँचाता है और यदि काम के संकल्पों में बीते समय को निकाल दिया जाय तो बाकी समय ही कितना बचता है? इस प्रकार, यह समय को बर्बाद करके शारीरिक आयु के भी कम ही भाग को जीवन-उपयोगी रहने देता है।

1. दोषेण तीव्रो विषयः कृष्ण सर्प विषादपि।

विषं निहन्ति भोक्तारं चक्षु पाण्यम्॥

2. गीता - 3/ 37,39,40,41 तथा 16/21

‘काम’ एक बहुत बड़ी हिंसा

अध्यात्मवाद में तो अहिंसा को धर्म का परम लक्षण, योग के यम-नियमों का एक आवश्यक अंग और दैवी गुणों में से एक आवश्यक गुण माना जाता है। अब यदि गहराई से विचार किया जाय तो अहिंसा केवल दूसरों की हिंसा न करने की वृत्ति ही का नाम नहीं है बल्कि अपनी हत्या करना भी तो एक प्रकार की हिंसा ही है। यदि इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो ‘काम’ विकार भी एक बहुत बड़ी हिंसा है क्योंकि इससे मनुष्य स्वयं को मृत्यु की ओर ले जाता है। इतना ही नहीं, वह करोड़ों शुक्र-कीटों की मृत्यु के निकृष्ट कार्य में भी निमित्त बनता है। पुनश्च, वह अपनी धर्म-पत्नी के जीवन को भी देह-अभिमान रूपी विष से हताहत करता है। फिर, संस्कार बन जाने से तो यह जन्म-जन्मान्तर के लिये मनुष्य के दुःख का कारण बन जाता है। अतः इस हिंसा को छोड़ना ही धर्म का सही रूप में पालन करना है।



क्या शास्त्रोक्त गृहस्थ में भी 'काम' वर्जित है?

कुछ लोगों को जब काम रूपी विष का पीना और पिलाना बन्द करने के लिए कहा जाता है तो वे कहते हैं कि - 'अच्छा' हम काम को 'विष' ही मान लेते हैं; परन्तु यदि विष भी डाक्टर के परामर्श से लिया जाता है और उचित मात्रा में लिया जाता है तो वह भी हानिकारक नहीं होता बल्कि गुणकर ही होता है। अतः यदि मनुष्य अपनी इन्द्रियों को संयम में रखे और शास्त्रोक्त नियम के अनुसार ही काम-प्रवृत्त हो तो इसमें क्या हानि अथवा आपत्ति है? शास्त्रों ने ऋतुकाल में तो समागम के लिए स्वीकृति दी ही हुई है। शास्त्र और स्मृतियाँ कहती हैं कि यदि कोई गृहस्थ केवल ऋतुकाल में स्त्री के पास जाता है तो वह गृहस्थाश्रम में होते हुए भी ब्रह्मचारी है। हाँ, शास्त्रों ने अतिचार की अर्थात् अधिक वासना-भोग की निन्दा की है। तो जबकि ऋतुचर्या शास्त्र-सम्मत है तब स्त्री-समागम के लिए बिल्कुल ही रोक लगाने का क्या कारण है?

क्या पहले ब्रह्मचर्य का यथा-नियम पालन किया है?

इसके उत्तर में हमें पहले तो यह जानना चाहिये कि जिस युग में और जिन परिस्थितियों में यह बात कही गई थी, उस युग में और उन परिस्थितियों में पहले हरेक व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करता था। पूर्ण रूप से पालन करने का अर्थ है - मन, वचन और कर्म तीनों रूपों से इसका पालन करना। स्वयं मनु ने भी कहा है कि हरेक बालक गुरुकुल में रहकर 48 वर्ष,

1. विषस्य विषौषधम्।
2. ऋतावृतौ स्वदारेषु सगतिर्या विधानतः।
ब्रह्मचर्यं तदैवोक्तं गृहस्थाश्रमवासिनाम्॥ —याज्ञवल्क्य
(ii) ऋतुकालाभिगमनं ब्रह्मचर्यमिवोच्यते।
(iii) ऋतौ भार्यामुपेदात् ब्रह्मचर्यं भवति यत्र तत्राश्रमेवसन्।
3. कार्येन मनसा वाचा, सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैषुन-त्यागो, ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥

36 वर्ष, 24 वर्ष या कम-से-कम 12 वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्या-अध्ययन करे। इस प्रकार, कम-से-कम 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य-पालन का तो कड़ा विधान था परन्तु इस पर भी अच्छा यह माना जाता था कि 48 वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालन किया जाय।

फिर, ध्यान देने के योग्य बात यह भी है कि जो बालक गुरुकुल में विद्या पढ़ने जाता था, वह विद्या द्वारा 'नया जन्म' लेता था। यों हरेक का शारीरिक जन्म तो उसके माता-पिता के द्वारा होता ही है परन्तु वह विद्यार्थी बालक गुरुकुल में जाने पर अपने पुराने संस्कार से मर कर नये शुद्ध संस्कार धारण करने का पुरुषार्थ करता था और विद्या-अध्ययन के समय तक माता-पिता से उसका सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता था; वह उनसे किंचितपि मोह नहीं करता था। विद्या द्वारा उसके नये जन्म को 'श्रेष्ठ जन्म' माना जाता था और इस जन्म के कारण ही उसे 'द्विज' कहा जाता था। उसके माता-पिता जब उसे आचार्य के प्रति समर्पित करते थे तो वे भी यह समझते थे कि वे अपने बालक को 'मृत्यु' अथवा 'यम' के प्रति दे रहे हैं। गोया अब बालक के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता था और वे आचार्य को 'मृत्यु' मानते थे। आचार्य भी स्वयं को 'मृत्यु' मानकर ही ब्रह्मचारी बालक को विद्या पढ़ाने के लिये स्वीकार करता था। गोया किसी एक का भी दूसरे के प्रति मोह नहीं होता था और विद्यार्थी भी सभी से अनासक्त होकर अपने संस्कारों को बदलने रूप दूसरा जन्म लेता था। अब इन बातों को ध्यान में रखते हुए आप देखिये कि आज

4. वेदानधोत्य वेदौ वेदं वापि यथा क्रमम्।

अविलुप्तं ब्रह्मचर्यं गृहस्थाग्रमविशेत्॥

(i) द्वादश वर्षाणि प्रति वेदं ब्रह्मचर्यं गृहाण व ब्रह्मचर्यं चर।

5. स हि विद्यातस्त जनयति। तच्छ्रेष्ठं जन्म।

शरीरमेव मातापितरौ जन्यतः॥

(आप. घ.सू. 1/1 75-117)

6. आचार्यो मृत्युः— अथर्व वेद।

7. मृत्योरह ब्रह्मचारी यदास्मि निर्याचन् भूतात्पूरुष यमाय।

तमाब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैन मेखलया सिनामि॥

(अथर्व. 6/133 B)

कौन ऐसा करता है? कोई भी नहीं।

तो जबकि आज बालक भी 48,36,24 या 12 वर्ष तक कर्मणा के अतिरिक्त वाचा और मनसा तथा सदा, सर्वदा, सर्वत्र, सर्व अवस्थाओं में ब्रह्मचर्य पालन करने का नियम पालन नहीं करता, वह अपने संस्कार बदलने का भी पुरुषार्थ नहीं करता, गोया वह आध्यात्मिक विद्या द्वारा नया जन्म भी नहीं लेता और माता-पिता तथा नगर से बाहर शुद्ध वातावरण में दत्तचित्त होकर आत्मा, परमात्मा इत्यादि का बोध कराने वाली विद्या का भी नियमपूर्वक अध्ययन नहीं करता, तब भला उसका गृहस्थ में प्रवेश कैसे हो सकता है? गृहस्थ में प्रवेश का तो ब्रह्मचर्याश्रम का ठीक-ठाक पालन करने के बाद ही के लिये विधान है। और तब भी धर्म की विधि से ही सुशील प्रजा रचने के लिए कहा है।

पशु और मनुष्य में अन्तर

दूसरी बात यह है कि ऋतुचर्या तो पशु भी करते हैं। पशु कभी भी सन्तानोत्पत्ति के उद्देश्य के बिना तो ऋतु से अन्य किसी भी काल में समागम नहीं करते। यदि कोई विरला पशु ऋतु के नियम की परवाह न करके अपनी मादा के पास चला भी जाय तो मादा उसे अपने निकट फटकने भी नहीं देती ; वह उसे लात, सींग या पूंछ आदि मार कर भगा देती है। तो देखिये, ऐसे पशु, जो कि मनुष्य से कई गुणा अधिक शारीरिक बल वाले हैं, भी केवल ऋतु ही में समागम करते हैं (अन्य किसी भी काल में नहीं) और वे केवल सन्तानोत्पत्ति ही के लिए समागम करते हैं, यों ही नहीं। अतः यदि मनुष्य भी ऋतु में ही स्त्री-गमन करता है तो कौनसी श्रेष्ठ बात है? वह तो 'पशु धर्म' ही के अनुरूप आचरण हुआ। मनुष्य तो पशु से कई गुणा अधिक निर्बल अथवा दुर्बल है और वह तो समस्त प्राणियों से श्रेष्ठ माना जाता है; तब वह भी यदि ऋतु में मैथुन करता है तो वास्तव में यह कोई मानवोचित एवं श्रेष्ठ कर्म तो नहीं है। फिर शास्त्रों में वह कर्म भी

24,36 अथवा 48 वर्ष विद्योपार्जन के बाद केवल सन्तति प्राप्त्यार्थ ही करने की स्वीकृति दी गयी थी। आज इन सभी शर्तों का पालन न करके केवल 'पशु धर्म' के लिए अपना 'अधिकार' जतलाना कहाँ तक विवेक-सम्मत अथवा न्यायोचित है? आज तो मनुष्य हर आये दिन सहवास करता है, जब चाहे समागम करता है, 24,36, या 48 वर्ष अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन भी नहीं करता है, आत्मा परमात्मा इत्यादि के बारे में ज्ञान भी प्राप्त नहीं करता है, मोह-ममता के त्याग से भी कोसों दूर है, तब क्यों वह गृहस्थ में प्रवेश प्राप्त करने तथा सन्तति पैदा करने का अधिकार जतलाने के लिये शास्त्रों की आड़ लेता है? ऐसे ही व्यक्ति पर तो शेक्सपियर के ये शब्द चरितार्थ होते हैं कि 'पापाचारी व्यक्ति शास्त्रों से अपने ही पक्ष को पुष्ट करने के लिए उद्धरण देता है।'⁹

अतः मनुष्य को चाहिए कि पहले तो वह आज से लेकर 24,36 या 48 वर्षों तक मनसा, वाचा, कर्मणा, अखण्ड ब्रह्मचर्य को सदा, सर्वत्र तथा सर्व अवस्थाओं में पालन करे और आध्यात्मिक-विद्या द्वारा अपना श्रेष्ठ जन्म लेकर 'द्विज' भी बने, तब उसके बाद में वह सन्तानोत्पत्ति के लिए गृहस्थ में प्रवेश करने की बात करे...। - शास्त्र ऐसा कहता है।

पावन्दियाँ

हम यह पृष्ठ 62 पर बता आये हैं कि शास्त्रों में केवल ऋतु के नियम का पालन ही आदेश नहीं है बल्कि एकादशी, अमावस्या, शिवरात्री, जन्माष्टमी, यज्ञ-कर्म इत्यादि अनेकानेक अवसरों पर समागम के लिये निषेध है। यदि उन सभी का उल्लेख किया जाय तो वर्ष-भर में शायद ही किसी दिन इस निकृष्ट कर्म को करने के लिये छूट है। इससे स्पष्ट है कि शास्त्रों का भी अभिप्राय तो यही है कि मनुष्य किसी-न-किसी नियम में स्वयं को बाँध कर इस पतनकारी कर्म से बचे।

विवाह के लिये आज वह शील कहाँ है?

9. The devil quotes scriptures on his side.

फिर, शास्त्र में तो यह भी कहा गया है कि कन्या की किसी भी नीच, कुरूप या कुशील पुरुष से शादी न की जाय। जो व्यक्ति अपनी कन्या का विवाह किसी आचार-रहित व्यक्ति से करेगा, उसके बारे में तो शास्त्र में कहा गया है कि वह प्रेत बनेगा।¹⁰ इसका कारण स्पष्ट ही है क्योंकि ऐसों की शादी करने से दोनों ही अधिकाधिक पतन की ओर जायेंगे। रथ का एक पहिया भी यदि धूरी से उतर जाता है अथवा टेढ़ा-मेढ़ा चलता है अथवा मार्ग से गिरने लगता है तो सारे रथ को ही तो हानि पहुँचती है। आज वंश को सुधारने के लक्ष्य से वंश-विज्ञान (Genetics) के विशेषज्ञ भी जीवों के अच्छे जोड़ों ही को मिलाते हैं। तो आप ही बताइए कि आज जो विवाह होते हैं, वे तो प्रायः धन के लेन-देन को ही विचार में रख कर ही किये जाते हैं तथा आज किसी का भी चरित्र शास्त्र में बताये गुण-कर्म-स्वभाव के अनुरूप कहाँ है? तो जब तक कोई आध्यात्मिक विद्या लेकर अपने आचरण को श्रेष्ठ न बना ले तब तक विवाह कैसे? उससे पहले किसी कुशील को तो केवल वही व्यक्ति अपनी कन्या दे जो शास्त्र का उल्लंघन कर प्रेत बनने को तैयार हो।

हम पहले भी बता आये हैं कि कन्या के लिये भी यही कहा गया है कि वह ब्रह्मचर्य का पूर्ण रीति से पालन करके ही विवाह करे।¹¹

फिर हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि संसार के सभी विधि-निषेध, देश, काल, परिस्थिति, आयु इत्यादि को विचार में रख कर ही निश्चित किये गये होते हैं। एक ज़माना था जब मनुष्य को दस बच्चे पैदा करने के लिए भी सरकार रोक-टोक नहीं लगाती थी।¹² बल्कि शायद कहीं-कहीं तो बहुत पुत्र पैदा करने वाले को कुछ पुरस्कार भी दिया जाता था। परन्तु आज तो स्थिति ऐसी

10. कन्यां यच्छति वृद्धाय नीचाय धनलिप्सया।

कुरूपाय कुशीलाय स प्रेत जायते नरः॥ - स्कन्ध

11. ब्रह्मचर्येण कन्या युवान विन्दते पतिम्।

अनडवानं ब्रह्मचर्येण अन्नो घासं जिगीर्षति।

12. सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थं समुल्लास

इमां त्वमिन्द्र मीढवः सुपुत्रा सुभगां कणु

दशास्यां पुत्रानार्थेहि पतिमेकादशं कृधि॥ - ऋ. मं 10। सू 85 । मं 45

ही है कि नसबन्दी के लिये सरकार कदम उठा रही है और केवल दो सन्तानों के लिये इजाजत देती है। परन्तु यदि शास्त्र को देखा जाय तो आज मनुष्य को एक सन्तान के लिए भी आज्ञा नहीं हो सकती क्योंकि वह 'कुशील' है, उसने गृहस्थ से पहले के ब्रह्मचर्य के नियमों का ठीक रीति से पालन ही नहीं किया है। ऐसे विवाहों तथा ऐसी सन्तानोत्पत्ति से तो संसार में भ्रष्टाचार फैल रहा है क्योंकि इसकी बुनियाद ही मानसिक चंचलता पर, कुदृष्टि पर, कुवृत्ति पर तथा अज्ञानता पर है।

आजीवन ब्रह्मचर्य

जीवन का चार आश्रमों में जो विभाजन किया गया है उस विभाजन से जो लोग प्रायः यह भाव लेते हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन ब्रह्मचर्याश्रम ही में अर्थात् 25 वर्ष तक ही करना होता है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। स्वयं शास्त्रों में भी चार प्रकार का ब्रह्मचर्य बताया गया है, जिसमें 25 वर्ष की आयु तक का ब्रह्मचर्य तो कनिष्ठ अथवा निकृष्ट प्रकार का ब्रह्मचर्य माना गया है। उदाहरण के तौर पर छान्दोग्य उपनिषद् में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 25 वर्ष की आयु तक³ का ब्रह्मचर्य तो न्यूनतम है। इसकी बजाय 44 वर्ष की आयु तक⁴ के ब्रह्मचर्य को 'मध्यम' और 48 वर्ष की आयु तक⁵ के ब्रह्मचर्य को 'उत्तम' कहा गया है।

अतः शास्त्रों के अध्ययन से तो ऐसा पता चलता है कि उनका कथन यह है कि यदि कोई आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करे तो सर्वश्रेष्ठ है⁶ परन्तु यदि कोई ऐसा नहीं कर सकता तो मजबूरी की हालत में वह 48 वर्ष या 44 वर्ष की

13. पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशति वर्षाणि तस्मात् सवनं चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातः सवनं तदस्य वसवोऽवायताः प्राणा वाव वसव एते होदं सर्वं वासयन्ति।

14. अथयानि चतुश्चत्वारि शद्वर्षाणि तन्माभ्यान्दि सवनं चतुश्चत्वारि शदक्षरा विष्टुप् त्रैष्टुभं माघ्यंदिन सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायताः प्राणा वाव रुद्रो एते होदं सर्वं रोदर्यान्ति।

15. अथ यान्यष्टाचत्वारि शद्वर्षाणि तत् तृतीयसवनमष्टाचत्वारि यदक्षरा जगती जागतं तृतीय सवनं तद स्यादित्या अन्वायताः प्राण वावादित्या एते होदं सर्वमाद्यते। - छान्दोग्य उपनिषद् 3/16

16. और जो विवाह न करना चाहें, वे मरणपर्यन्त ब्रह्मचारी रहते हों तो भले ही रहें। परन्तु यह काम पूर्ण विद्या वाले जितेंद्रिय और निर्दोष योगी स्त्री और पुरुष का है। यह बड़ा कठिन काम है कि जो काम

आयु होने पर ही प्रजोत्पत्ति करे। शास्त्रों के अनुसार वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम में भी तो ब्रह्मचर्य का पालन करना होता ही है; अतः इससे भी स्पष्ट है कि शास्त्र ब्रह्मचर्य ही के पालन पर बल देते हैं। उनमें तो यहाँ तक भी कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति चाहे तो ब्रह्मचर्याश्रम से गृहस्थ में प्रवेश हुए बिना, सीधे ही संन्यास ले लेवे।¹⁷ कन्याओं के लिए भी आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने की स्वीकृति दी गयी है। ऋग्वेद के कई मंत्रों की ऋषि भी ब्रह्मचारी महिलाएं हुई हैं। अतः आजकल जो लोग यह माने बैठे हैं कि 25 वर्ष के बाद तो विवाह अनिवार्य है अथवा कि महिलाओं को आजीवन ब्रह्मचर्य-पालन की स्वीकृति नहीं है, वे घोर अज्ञान में हैं।

देश, काल और परिस्थिति का ध्यान

इस पर भी विशेष बात यह है कि जैसे सरकार ने अब देश की स्थिति गम्भीर मानकर के सन्तति-निरोध के लिये बड़े कदम उठाये हैं ताकि देशवासियों की आर्थिक स्थिति सुधरे, वैसे ही त्रिकालदर्शी, ज्ञान-सागर, कल्याणकारी परमपिता परमात्मा ने तो कई वर्ष पहले ही से सारे विश्व में संकटकालीन स्थिति (Emergency) घोषित की हुई है ताकि देश अथवा दुनिया को नरक से स्वर्ग, वेश्यालय से शिवालय अथवा दुःखधाम से सुखधाम बनाया जा सके। आज जबकि मनुष्य ऋतुगामी पशु से भी बदतर बन गया है और उसने स्वच्छन्द समाज (Permissive Society) की रचना कर डाली है और हर कोई ताक-झाँक कर नाम-रूप को ही देखने वाला पक्का देह-अभिमानी बना हुआ है तो आवश्यकता इस बात की है कि अब स्थिति को ठीक करने के लिये इस पर पूर्णतया प्रतिबन्ध लगाया जाय। आज जबकि कोई ऊर्ध्वरिता नहीं रहा और जबकि संयम-नियम टूट चुके हैं तो नैतिकता के वातावरण के इस प्रदूषण (Moral Pollution) को सुधारने की आवश्यकता है। उसके लिए ही परमपिता

के वेग को धाम के इन्द्रियों को अपने वश में रखना। — सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास

17. यदहरेव विरजेतदहरेव प्रव्रजेद् वनाहा गृहाद् वा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्॥ (जाबालोपनिषद्, खं.4)
अर्थात्, जिस दिन वैराग्य स्थिति प्राप्त हो जाय, उसी दिन वह सीधे ही ब्रह्मचर्य के बाद संन्यास ग्रहण कर ले।

परमात्मा शिव का सारे विश्व के लिये यह निर्देश है कि – जब तक नैतिक दृष्टिकोण से विश्व में यह आपात स्थिति है तब तक के लिये यह सूत्र अपनाया जाय कि – “अगला बच्चा अभी नहीं, काम विकार से कभी नहीं।” इस सूत्र का व्यवहार में कार्यान्वयन भारत की सरकार को, भारत देश को, नहीं नहीं स्वयं को और विश्व-पिता परमात्मा को भी सहयोग देना है।



‘एक नारी सदा ब्रह्मचारी’

जब गृहस्थ लोगों से ब्रह्मचर्य और योग के बारे में चर्चा होती है तो वे कहते हैं कि – “गृहस्थ में यदि एक नारी के नियम का पालन किया जाय तो वह भी ब्रह्मचर्य पालन ही है।” प्रश्न उठता है कि – “क्या उनका यह मन्तव्य ठीक है?”

इसका ठीक उत्तर जानने के लिए हमें पहले यह मन में स्पष्ट रूप से समझना चाहिये कि “ब्रह्मचर्य की परिभाषा” क्या है और ब्रह्मचर्य पालन का उद्देश्य क्या है और एक ब्रह्मचारी की स्थिति कैसी होनी चाहिए?

ब्रह्मचर्य का अर्थ है – ‘ब्रह्म में विचरण’। इस संसार में स्वयं को ‘ज्योतिस्वरूप आत्मा’ निश्चय करते हुए ऐसे कर्मों में प्रवृत्त होना कि जिससे मन ब्रह्म में विचरण करे और ‘ब्राह्मी स्थिति’ बनी रहे, उसे ‘ब्रह्मचर्य’ कहते हैं। “मैं ब्रह्मलोक से आया हूँ और इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखते हुए ही मुझे ऐसे कर्म करने हैं कि मैं वापिस पवित्र ब्रह्मधाम जा सकूँ” – इस स्मृति में स्थित होते हुए अपनी दैनिक चर्या को निभाना ही ‘ब्रह्मचर्य’ है। इसका उद्देश्य ईश्वरीय विद्या को प्राप्त करना, योग-युक्त होना तथा अपना सम्पूर्ण विकास करते हुए अन्ततोगत्वा मुक्ति को प्राप्त होना है। वास्तविक अर्थ में ब्रह्मचारी वह है जो केवल इन्द्रियों से नहीं बल्कि मन, वचन और कर्म तीनों रूपों से, सर्वदा तथा सभी स्थितियों में, हर प्रकार के मैथुन को त्याग देता है। स्वयं शास्त्रों ने स्पष्ट शब्दों में यही कहा है कि तन, मन, वचन तथा कर्म से सदा और सर्वावस्थाओं में मैथुन को त्यागना ही ब्रह्मचर्य है।

अब यदि इस दृष्टिकोण से देखा जाये तो गृहस्थ में काम विकार द्वारा पतित होने वाले को तो ‘ब्रह्मचारी’ कहा नहीं जा सकता क्योंकि वह सदा, सर्वत्र, सर्व अवस्थाओं में तथा मनसा, वाचा कर्मणा मैथुन को त्यागे हुए नहीं होता।

1. ‘कायेन, मनसा, वाचा, सर्वावस्थासु, सर्वदा।

सर्वत्र मैथुन-त्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥

उक्ति का अर्थ

तब प्रश्न उठता है कि आखिर इस उक्ति का अर्थ क्या है? इसका उत्तर यह है कि एक जमाना था जब भारत के पुरुष एक नारी का नियम पालन करते हुए सदा ब्रह्मचारी रहते थे। वे 'देवता' कहलाते थे। श्री नारायण का श्री लक्ष्मी के साथ ऐसा ही सम्बन्ध था। श्री नारायण ऊर्ध्वरेता थे, अधोरेता नहीं थे। वे काम विकार द्वारा पतित होने वाले नहीं थे बल्कि मानसी सृष्टि करते थे। तभी आज भी कहा जाता है - 'हे नर, तू ऐसी करनी कर कि नर से श्री नारायण पद को पा ले।' तभी तो उनके जीवन को कमल-पुष्प के समान अलिप्त माना जाता है। तभी तो उनका गृहस्थ पवित्र एवं पूजनीय है। अतः 'एक नारी सदा ब्रह्मचारी' की उक्ति उन देवताओं पर चरितार्थ होती है जो भोग-बल से नहीं बल्कि 'योगबल' से, काम विकार द्वारा नहीं बल्कि ऊर्ध्वरेता होकर सन्तति पैदा करते थे।

आज की विषम स्थिति में इसका अर्थ

फिर आज की विषम स्थिति में इस उक्ति का अर्थ यह होता है कि भले ही सपत्नीक जीवन हो तो भी सदा ब्रह्मचारी रहो। जबकि यह सत्यता स्पष्ट है कि आज सन्तान पैदा करना दुःखी समाज के दुःख में वृद्धि करना है तथा स्वयं भी पतित होकर अपने को दुर्बलता, रोग एवं बुढ़ापे की खाई में डालना है तो 'नारी होते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन करना' - यह अर्थ लेने से समाज का कल्याण है।

पुनश्च, जब हम परमपिता परमात्मा द्वारा विश्व-भर में घोषित की गई संकट-कालीन स्थिति (Emergency) पर विचार करते हैं तो उस पृष्ठ-भूमिका में इसका मथितार्थ यह है कि 'मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी पत्नी के प्रति भी देह-दृष्टि अथवा वासना वृत्ति न रखकर ब्राह्मी स्थिति में स्थित हो क्योंकि यह संकट की वेला है।' यह अर्थ लेते हुए मनुष्य परमात्मा की आज्ञा का भी उल्लंघन न करे और दण्ड का भागी न बने।

अतः इस उक्ति का श्रेष्ठ अर्थ लेते हुए अब इस जन्म के शेष समय में तो ब्रह्मचर्य-पालन ही श्रेयस्कर है। मनुष्य जन्म-जन्मान्तर प्रभु से जो प्रार्थना करते आये

हैं कि - “हे प्रभु, सभी सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी एक-दूसरे को भ्रातृत्वभाव से देखें और किसी को अंश मात्र भी दुःख न हो।”² इस प्रार्थना का कार्यान्वयन अब भी ब्रह्मचर्य-पालन के द्वारा हो सकता है क्योंकि काम विकार द्वारा तो नर-नारी को आदि-मध्य-अन्त दुख होता है। इसके कारण ही तो नर और नारी दोनों ही अपनी सुकुमारता को तथा अपने तेज, ओज और वर्चस्व को गँवा बैठते हैं। जीवन शक्ति के क्षय से न केवल नर ही वासना के भोग के बाद निस्तेज, साँवला अथवा पीला प्रतीत होता है और थका-माँदा-सा दिखाई देता है बल्कि नारी भी प्रसव तथा उसके पहले तथा बाद के सभी कष्ट झेलती है। सिन्धी भाषा में भी एक वाक्य प्रसिद्ध है जिसका अर्थ यह होता है कि जब नारी एक बच्चे को जन्म देने की पीड़ा (labour pains) भोग रही होती है, तब वह अनायास ही कहती है - ‘अम्मा मेरी, मैं फिर कभी ऐसा काम नहीं करूँगी’³ परन्तु वह बाद में उस पीड़ा को भूल कर फिर क्षणिक हर्ष की पट्टी आँख पर बाँध कर काम-कटारी से घायल होने को तैयार हो जाती है! पुरुष भी पुनः यह विषैला पकवान खाने को तैयार हो जाता है! अतः यह याद रखना चाहिए कि कोई ब्रह्मचर्याश्रम में हो या गृहस्थाश्रम में, काम तो विष ही है। ‘काम’ को गीता में ‘नरक का द्वार’ - यह जो संज्ञा दी गयी है वह केवल ब्रह्मचर्याश्रम वालों के लिए नहीं बल्कि विशेष तौर पर गृहस्थाश्रम वालों के लिए ही है क्योंकि साधारणतः ब्रह्मचर्याश्रम वालों से तो यह आशा की ही नहीं जाती कि वे इस ‘नरक के द्वार’ में प्रवेश करेंगे।

भारत में काम के आदि, मध्य और अन्त की सारी क्रियाओं को नारकीय माना जाता है। जिस स्थान पर नारी बच्चे को जन्म देती है, उस स्थान को भी अपवित्र माना जाता है। प्रथा के अनुसार एक निश्चित दिन पर सारे घर अथवा स्थान को धोया तथा साफ़ किया जाता है। नहाने, धोने, वस्त्र बदलने आदि के बाद ही कहीं स्वच्छता आती है। स्पष्टतः यह अपवित्र कर्म तो है ही।

2. सर्वे सुखिना सन्तु सर्वे सन्तु निरामायः,

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित दुःखमाप्नुयात्।

3. अम्मां मोजी! वरी काना कन्दस।

परन्तु यह एक विडम्बना है कि एक ओर तो लोग मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं अथवा स्वर्ग जाना चाहते हैं और दूसरी ओर वे बन्धन बढ़ाने वाले तथा जीवन को नरक बनाने वाले कर्म करते हैं!



क्या काम विकार के बिना पति-पत्नी सम्बन्ध निरर्थक है?

आज लोग यह माने बैठे हैं कि पति-पत्नी के नाते की आधारशिला ही 'काम' है। अतः जब उन्हें पवित्र एवं योग-युक्त होने के लिए कहा जाता है तो कई लोग पूछते हैं कि – “यदि गृहस्थ में स्त्री-संसर्ग के लिए निषेध मान लिया जाए तो फिर गृहस्थ में स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध ही क्या रहा?” वे कहते हैं – “वासना भोग तो स्वाभाविक है और उसके लिए ही तो विवाह किया जाता है। स्त्री-संसर्ग तो एक प्रकार से गृहस्थ धर्म ही है। यह तो शास्त्र-सम्मत है। शास्त्र में स्पष्ट कहा गया है कि सन्तानोत्पत्ति के लिए मैथुन करें।”

नाता दोनों के कल्याण का

इस विषय में पहले तो यह ग़लत धारणाएं अपने मन से निकाल देनी चाहिए कि विवाह सम्भोग के लिए किया जाता है या स्त्री के साथ पति का नाता 'काम' विकार का ही है और उसके बिना गृहस्थ बेकार है। शास्त्र तो कहते हैं कि स्त्री – एकांत में मित्र, धर्म-कार्य में पिता, दुःख में माता है। उसे तो मनुष्य की मुक्ति का, संसार सागर से तरने का भी मूल अथवा निमित्त माना गया है। शास्त्रों में पवित्र नारी की तो बहुत महिमा की गई है; सभी तीर्थों को पवित्र नारी के चरणों में माना गया है। अतः यह कहना कि पति-पत्नी का नाता तो है ही केवल काम-क्रिया के लिए, यह तो अत्यन्त तुच्छ और मलीन विचार है। नारी यदि घर का कार्य करती है तो नर घर के बाहर का अर्थात् आजीविकोपार्जन

1. सन्तानार्थैव मैथुनम्।
2. सखाय प्रविवक्तेषु भवन्त्येतः प्रियंवदाः
पितरो धर्मकार्येषु भवन्त्येताः मातरः।
3. अर्थ भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा;
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः।
4. पृथिव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि;
तेजस्य सर्वदेवानां मुनीनाञ्च सतीषु च।

इत्यादि का काम करता है। दोनों ही एक रथ के पहिये हैं। दोनों मुक्ति तथा जीवनमुक्ति रूपी लक्ष्य की सिद्धि के लिए एक-दूसरे के सहयोगी हैं। दोनों का आत्मिक नाता क्या कम महत्त्व का है? हमें तो यह समझना चाहिए कि दोनों एक-दूसरे का पतन कराने वाले नाते से बंधे हुए नहीं हैं बल्कि एक-दूसरे के कल्याण के निमित्त सम्बन्धी हैं।

अतः यह कहना कि सम्भोग तो गृहस्थ का धर्म है – यह तो बहुत ही पतनकारी विचार है। 'धर्म' तो पवित्रता का ही दूसरा नाम है। स्वयं शास्त्र में भी कहा गया है कि जो धर्म को त्याग करके इन्द्रिय वशात् विषय-भोगी बनता है वह महति दुर्गति को प्राप्त होता है। अतः शास्त्र में तो यह कहा है कि हर प्रकार का प्रयत्न करके धर्म और जीवन-शक्ति (ब्रह्मचर्य) की रक्षा करो। यह तो नहीं कहा गया कि खूब विषय-भोग करो?

आधार-स्तम्भ ही ठीक नहीं?

पुनश्च, अब मान लीजिए कि किसी ने गृहस्थ करने से पहले ब्रह्मचर्याश्रम का तो विधिवत् पालन किया ही नहीं, आध्यात्मिक-विद्या की भी प्राप्ति तथा अनुभूति भी की नहीं और अपने जीवन को भी श्रेष्ठ संस्कारों से युक्त तथा सत्कर्मों वाला बनाया नहीं तो कम-से-कम अब तो वह आध्यात्मिक विद्या प्राप्त करे और उसके लिए ब्रह्मचर्य का पालन करे। मनुष्य को यह याद रखना चाहिए कि दुःखों से बचने के लिए बुरे कर्मों से बचना ज़रूरी है और बुरे कर्मों से बचने के लिए आध्यात्मिक-विद्या एवं राजयोग की शिक्षा आवश्यक है और उस शिक्षा को जीवन में ठीक तरह से धारण करने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। अतः यदि कोई गृहस्थ है तो क्या हुआ, अब अपने कल्याण के लिए और जीवन के लक्ष्य की सिद्धि के लिए ईश्वरीय-विद्या तो ले। और, विद्या-प्राप्ति के लिए शास्त्रों में स्पष्ट कहा है कि ब्रह्मचर्य का पालन परम आवश्यक है। तो अब गृहस्थ को चाहिए कि

5 धर्मार्थो यः परित्यज्य स्यादिन्द्रिय वशानुगः।

श्रीप्राणधनदारेभ्योः क्षिप्रं स परिहोयते।

6. तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन धर्मशुक्लं च रक्षयेत्।

7. पूर्वोक्तो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी धर्मं वासनस्तपसोदतिष्ठत् तस्माज्जातं ब्राह्मं ब्राह्म ज्येष्ठ देवाद्य सर्वे अमृतं

ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्त्यार्थ ब्रह्मचर्य का पालन करे और उसके लिए स्वयं को ही अभी 'कुमार' या 'कुमारी' समझे⁸ और आत्म-निष्ठ हो, तब हम आगे की बात आगे करेंगे। शास्त्रों में स्पष्ट कहा है कि - "ब्रह्मचर्य से ही ज्ञान की धारणा होती है। चलो उस ज्ञान नगरी में मैं तुम्हें ले चलता हूँ, उसमें प्रवेश करो, उससे आपको सुख और संरक्षण मिलेगा।"⁹

तो जो लोग ज्ञान की नगरी में घुसे ही नहीं, ब्रह्मचारी और पूर्णतः 'कुमार' बने ही नहीं, वे विषय-विकार की नगरी में घुसना चाह रहे हैं - यह भी कोई बात है? आधार-स्तम्भ ही ठीक नहीं और उस पर तीन मंजिलें (शेष तीन आश्रम) खड़ी करने चले हैं।

एक आख्यान

स्वयं शास्त्रों में आध्यात्मिक ज्ञान के अध्ययन के लिए ब्रह्मचर्य के पालन की अनिवार्यता को स्पष्ट करने के लिए एक आख्यान है। आख्यान इस प्रकार है कि - "एक बार शेष जी बीमार पड़े। काफी औषधि-उपचार करने पर भी वे स्वस्थ नहीं हुए। अन्त में वैद्यों में शिरोमणि वैद्य धन्वन्तरि जी ने शेष जी की आंखों पर पट्टी बाँधी और तब दवा दी। उससे शेष जी अच्छे हो गए। जब धन्वन्तरि जी से पट्टी बाँधने का कारण पूछा गया तो बोले कि शेष जी के नेत्रों से विष की तरंगें निकलती थीं और उसके प्रभाव से सारी औषधि भी विषमय हो जाती थी। मैं शेष जी को यदि अमृत-वल्ली भी देता तो वह भी विष वल्ली ही बन जाती। अतः शेष जी के नेत्र बाँधने पड़े; तब कहीं दवा ने उनको आरोग्य दिया।"

साकम् अर्थात् ज्ञान के पूर्व ब्रह्मचारी बनना पड़ता है। तभी श्रेष्ठ ज्ञान सिद्ध होता है और सभी दैवी गुणों का तथा अमृत का लाभ होता है।

8. 'कुमार' शब्द 'कु' और 'मार' से बना है। मार का अर्थ 'काम' है। जो 'काम' को कुत्सित या बुरा मानता है, वह कुमार है।

9. ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत्। तं पुरं प्रणयामि वः।

तामाविशत, तां प्रविशत। सा वः शर्म च यच्च्युत॥ (अथर्व 19/19/8)

कड़े संस्कारों को मिटाने के लिए मेहनत की ज़रूरत

अब इस प्रसंग से यह निष्कर्ष निकलता है कि आज का मनुष्य भी आध्यात्मिक एवं मानसिक रोगों से पीड़ित है। उसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, आलस्य इत्यादि रोग हैं। उनका इलाज तो ईश्वरीय ज्ञान रूपी औषधि ही है। उससे ही मनुष्यात्मा को 'स्वास्थ्य' (स्वरूप में स्थायित्व) प्राप्त हो सकता है। परन्तु वह भी तभी लाभ देगी जब मनुष्य की दृष्टि और वृत्ति ठीक होगी वरना मनुष्य की कुदृष्टि का विष उसका भी लाभ लेने नहीं देगा। मनुष्य की यह जो दृष्टि पक्की हो चुकी है कि वह हरेक को स्त्री-पुरुष के भान से देखता है और ताक-झांक करता है, उसको बंद करना पड़ेगा। उसके लिए तो उसे 'क्वारेन्टाइन' (Quarantine) में रखना पड़ेगा अर्थात् उसे कुछ दिन के लिए आध्यात्मिक वातावरण में संसार के दूषित वातावरण से अलग रखना पड़ेगा ताकि उसकी दृष्टि पवित्र हो और वह ईश्वरीय ज्ञान को धारण करे और तब ही उसमें ईश्वरीय ज्ञान की धारणा होगी। परन्तु आज की व्यस्तता में, जबकि मनुष्य के लिए ऐसा सम्भव न हो तो उसकी दृष्टि को पवित्र एवं गुण-ग्राहक बनाने के लिए भी हम पुरुषार्थ करेंगे, किन्तु वह ईश्वरीय ज्ञान रूप औषधि तो ले और ब्रह्मचर्य तो धारण करे।



क्या पुत्र के बिना मनुष्यात्मा स्वर्ग को नहीं जा सकती?

कुछ लकीर के फ़कीर लोग मानते हैं कि कम-से-कम पुत्र का होना जरूरी है ताकि वह मनुष्य के बुढ़ापे में काम आवे और उसका वंश भी चलता रहे और अन्त में वह उसका दाह संस्कार करे तथा उसे तर्पण दे ताकि वह स्वर्गवासी हो सके।

कर्म नरक के लिए, आशा स्वर्ग के लिए!

परन्तु सोचने की बात यह है कि भगवान ने तो यह कहा है कि काम, क्रोध और लोभ — ये तीन नरक के द्वार हैं, अतः इन तीनों ही से दूर रहो। तो जब 'काम' विकार द्वारा मनुष्य नरक के द्वार में जाने का कर्म करता है, तब वह अन्त में पुत्र द्वारा दाह कर्म होने पर या उस द्वारा तर्पण मिलने पर स्वर्ग में कैसे चला जायेगा?

हाड-मांस की जेल का कैदी

फिर इस संसार में तो दुःख और अशान्ति, जरा और मृत्यु तथा रोग और शोक है। इसे तो 'मर्त्य-लोक' अथवा 'दुःखधाम' कहा जाता है। यहाँ के क्षणिक सुख भी दुःखान्त ही हैं। यह कलियुगी सृष्टि तो सारहीन ही है। यहाँ तो हरेक मनुष्य कर्म-बन्धन ही में है। तब इस बन्धन वाली, नारकी सृष्टि में विकारों के बीच सन्तान-उत्पत्ति करना क्या श्रेयस्कर हो सकता है? क्या मनुष्य का यह काम पहले ही दुःखों से भरी हुई इस सृष्टि के दुःखों में वृद्धि करना है या स्वर्ग का साधन जुटाना है? अभी 'काम' विकार में प्रवृत्त होकर उस द्वारा क्रोध, क्रोध से सम्मोह, उस द्वारा बुद्धि-भ्रष्टता और फिर सर्वनाश को प्राप्त होने वाला कार्य करके फिर स्वर्ग की आशा रखना¹ क्या यह मृगतृष्णा

1. त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्माद् एतत्त्रयं त्यजेत्। — गीता 16-21

2. कामात् क्रोधोऽभिजायते, क्रोधात् भवति सम्मोहः

सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः। बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥ — गीता 2/62

नहीं है? काम विकार द्वारा हाड-माँस के जेलखाने को बनाने में निमित्त बनना ताकि कोई आत्मा उसमें बन्दी बनकर हमारी सन्तान कहलाये और फिर वह हमें तर्पण देकर मुक्त कराये – यह तो कैदियों द्वारा मुक्त होने की मिथ्या इच्छा करना है! यह तो घर को एक कैदखाना अथवा कारावास बनाकर अपने पुत्र-पौत्र आदि के साथ कर्म-बन्धन की जंजीरों में शेष आयु में बन्दी बनकर रहने की योजना को क्रियान्वित करना है।

पुनश्च, मनुष्य अपना वंश भी इसीलिए ही तो चलाता है कि उसका नाम कायम रहे अथवा उसकी सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी हो, अथवा बुढ़ापे में कोई सेवा करे। परन्तु देखिए तो आज कितने लोग हैं जिनके पुत्र अपने परिवार को कलंकित करने वाले होते हैं। वे पिता की खून-पसीने की कमाई को कुछ दिनों में ही व्यसनों के गन्दे नाले में बहा देते हैं अथवा पहले माता-पिता पर अपने पालन-पोषण तथा प्रशिक्षण का भार बनकर उनसे खूब सेवा लेकर, फिर बड़े होकर अपने ही बीबी-बच्चों के स्नेह-पाश में बन्धकर तथा अपनी ही निबेड़ना में लग जाते हैं और अपने वृद्ध पिता की जायदाद की आशा लगाये रखते हैं तथा उससे कई प्रकार की सेवा लेते रहते हैं।

बूढ़ी सृष्टि

इस पर भी सोचने की एक बात यह है कि ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, हिंसा, मानसिक तनाव और विकारों वाली यह सृष्टि चलेगी कब तक? अब तो यह सृष्टि स्वयं ही बूढ़ी हो चुकी है और लँगड़ा रही है। अब इसके अपने ही दाह कर्म के विशाल कार्य के लिए एटम बम और हाइड्रोजन बम के रूप में तीलियों तथा घृणा और द्वेष के रूप में माचिस बन चुके हैं और, बस, इस बारूद को भड़काने के निमित्त किसी घटना ही की देर है। अब तो इस सृष्टि का हर छोटा बच्चा मानो बूढ़ा है क्योंकि अब यह कलियुगी सृष्टि ही अपने पाँव कबर में लटकाये हुए है। अतः कल्याणकारी परमपिता परमात्मा शिव कहते हैं कि – “हे वत्सो – कामाग्नि से ही सब अग्नियाँ प्रज्वलित हुई हैं जो मनुष्य के मन के भीतर दाह बनकर उसे अशान्त कर रही हैं। अब इस विकार पर विजय प्राप्त करो ताकि इस सृष्टि में

शान्ति व शीतलता उत्पन्न हो और पवित्रता की लता फूले-फले। अब पवित्र बने ताकि यह सृष्टि स्वर्ग बन जाये; यही तो वास्तव में उपाय है स्वर्ग जाने का। आपको स्वर्ग के द्वार स्वयं अपनी ही पवित्रता की चाबी से खोलने होंगे। आप सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाने की बात सोच रहे हो और मैं कह रहा हूँ कि मुझ परमपिता से मेरी सम्पत्ति राज-भाग्य, पवित्रता, शान्ति और सुख लेकर कल्याण को प्राप्त होवो। आप कर्म-बन्धन में बँधे कैदियों का वंश चलाने की फ़िक्र में हो और नरक में पुत्र पैदा करने की सोचते हो और मैं कहता हूँ कि अब श्रेष्ठाचार, जितेन्द्रियता तथा देवतायी गुणों के द्वारा इस सृष्टि को स्वर्ग बनाने में सहयोग दो।’

“वत्सो – पहले यह तो जानो कि आप ईश्वरीय वंश के एक विशेष आत्मन् हो। मेरे वंशज होने से आपका क्या कर्तव्य होता है? आप ईश्वरीय वंश को चलाने की बात न सोचकर आसुरी वंश को चलाने की कल्पनाएं क्यों बुनते हो? क्या आपके पूर्वज देवी-देवताएँ नहीं थे, यदि थे तो क्या आप देवी-देवता पैदा कर रहे हो? क्या काम विकार से ऐसी देवी या देवता पैदा हो सकते हैं, जिनकी पूजा होती है, जिनकी लोग प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें पवित्रता व शान्ति प्रदान करें? क्या आप काम विकार में प्रवृत्त होकर पितृ-ऋण चुकाने की आशा रखते हो या उस काले कर्म द्वारा पूर्वजों तथा महान आत्माओं की आज्ञा का उल्लंघन करके अपने दामन में दाग लगाने को उद्यत होते हो?”

अब घर वापिस चलना है

उठो, अब पहले जीवन जीना सीखो और अमृत को पीना सीखो। अब अज्ञानता रूपी नींद की गोलियाँ (sleeping pills) खाकर सोने का समय नहीं। विषय-विकारों के मादक पदार्थों (Drugs) के अभ्यासी (Addict) बन चुके हो, परन्तु “अब मैं तुम्हें पवित्रता तथा योग द्वारा सच्चे सुख व सच्ची शान्ति का वरदान देने आया हूँ। चाहो तो वरदान लेकर अपना कल्याण कर लो। चाहो तो दुःखान्त स्वप्नों में समय को समाप्त कर दो। चाहो तो अपने मित्र बन जाओ, चाहो तो अपने साथ शत्रुता का व्यवहार करो। चाहो तो स्वयं को मेरी

पवित्र सन्तान निश्चय करके मेरी सम्पत्ति का ईश्वरीय जन्म-सिद्ध अधिकार लो, चाहो तो काम द्वारा कांटे बोकर कष्ट पाने का कष्ट करो। परन्तु वास्तव में अब तो वापिस 'घर' (ब्रह्मलोक) चलने का समय आया है; अतः अब उसके लिए तैयारी करो।'



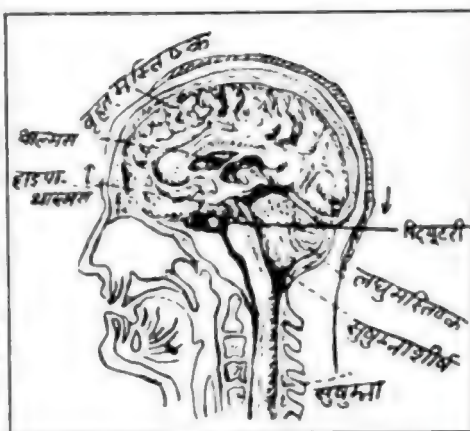
आधुनिक आयुर्विज्ञान के दृष्टिकोण से ब्रह्मचर्य का महत्त्व

प्रायः लोग यह तो जानते ही हैं कि हमारी चेष्टाएं, हमारे सभी मनोभाव और हमारे संवेग मस्तिष्क के द्वारा ही अभिव्यक्त होते हैं और हमारी सभी शारीरिक क्रियाएं भी मस्तिष्क तथा सुषुम्ना शीर्ष (Medulla Oblongata) और नाड़ी-मण्डल द्वारा ही संचालित तथा नियन्त्रित होती हैं। अतः आधुनिक शरीर-विज्ञान के दृष्टिकोण से ब्रह्मचर्य के महत्त्व को समझने के लिए ज़रूरी है कि हम पहले मानव-मस्तिष्क और सुषुम्ना शीर्ष एवं नाड़ी-मण्डल की रचना और कार्य प्रणाली के बारे में कुछ जान लें।

मस्तिष्क के दो भाग - बड़ा और छोटा

मस्तिष्क के मुख्यतः दो भाग हैं

— एक भाग तो वह है जो भौओं के पास से चलकर खोपड़ी के पिछले, उभरे हुए भाग तक फैला हुआ है। इसे 'बड़ा दिमाग', 'बृहत् मस्तिष्क' या सैरिब्रम (cerebrum) कहते हैं। लिखने-पढ़ने, देखने-बोलने, सोच-विचार करने तथा उच्च मानसिक व्यापारों का सम्बन्ध इसी बृहत् मस्तिष्क से है। ध्यान देने के योग्य बात है कि



बृहत् मस्तिष्क के पिछले भागों में ही ऐसे केन्द्र हैं जहाँ ज्ञानवाही सन्देशवाही नाड़ियाँ (Sensory Nerves), प्रभाव, वेग, सन्देश या संचालन पहुँचाती हैं। बृहत् मस्तिष्क के पिछले भाग में स्थित इन केन्द्रों को, जहाँ सब सूचनाएं, सन्देश, संवेग, ऐन्द्रिय ज्ञान या प्रभाव पहुँचते हैं, ज्ञान-केन्द्र, सन्देश-केन्द्र या संज्ञा-केन्द्र (sensory centres) कहते हैं। हम आगे बतायेंगे कि 'काम' का प्रभाव मस्तिष्क

के इस भाग पर विशेष तौर पर पड़ता है। शराब पीने पर भी मनुष्य के बृहत् मस्तिष्क के इस भाग को विशेष उत्तेजना अनुभव होती है।

लघु मस्तिष्क - मनुष्य के बृहत् मस्तिष्क के पिछले भाग के नीचे दोनों कानों के बीच में मस्तिष्क का जो भाग होता है उसे छोटा दिमाग, 'लघु मस्तिष्क' अथवा (cerebellum) 'सेरिबेलम' कहते हैं। यह गर्दन से कुछ ऊपर, जहाँ सुषुम्ना शीर्ष है अर्थात् रीढ़ की हड्डी (back-bone) शुरू होती है, वहाँ उसके दोनों ओर लिपटा हुआ होता है। जैसे कि चित्र में दिखाया गया है, छोटा दिमाग एक ओर तो सुषुम्ना शीर्ष से अनेक नाड़ी-तन्तुओं द्वारा जुड़ा हुआ है और दूसरी ओर बृहत् मस्तिष्क से जुड़ा होता है। लघु मस्तिष्क का मुख्य कार्य मांसपेशियों अथवा पुठों को वश में रखना है। उठना-बैठना, चलना-फिरना इत्यादि हरकतें इसके अधीन होती हैं। मस्तिष्क का यही भाग शरीर को सन्तुलन में रखता है। यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि मनुष्य की सांसारिक प्रवृत्ति, घर-बार बनाकर अन्य लोगों के साथ सम्बन्ध जोड़ने की इच्छा, स्नेह - चाहे पति-पत्नी प्रेम के रूप में हो, सखा-सखा में मैत्री एवं प्रेम के रूप में, माता और पुत्र के बीच वात्सल्य के रूप में हो या समाज-प्रेम के रूप में हो - इससे सम्बन्धित होता है। इसलिए हम मनुष्य पर 'काम' (जोकि प्रेम का एक विकृत रूप है) का प्रभाव देखने के लिए मस्तिष्क के इस भाग पर विशेष ध्यान देंगे।

सुषुम्ना शीर्ष (Medulla Oblongata)

चित्र में इसका जो स्थान दिखाया गया है, उससे भी स्पष्ट है कि यह मस्तिष्क और सुषुम्ना के बीच एक कड़ी (link or bridge) का काम करता है। मस्तिष्क में होने वाली उत्तेजनाएं इसमें से होकर लघु मस्तिष्क (छोटे दिमाग) में तथा नीचे की ओर सुषुम्ना में जाती हैं और सुषुम्ना के नीचे के भाग में होने वाली उत्तेजनाएं इनमें से होकर मस्तिष्क में पहुँचती हैं। आपको मालूम रहे कि श्वास क्रिया, रक्त-प्रवाह तथा पाचन-क्रिया आदि, जो कि जीवन के लिए बहुत ज़रूरी हैं, सुषुम्ना शीर्ष ही के अधीन हैं। हृदय और फेफड़ों की क्रिया

को नियन्त्रित करने वाले नाड़ी कोष्ठों के समूह भी इसी सुषुम्ना-शीर्ष में छोटी-सी जगह पर हैं जिसे जीवन-ग्रन्थि (Vital knot) कहा जाता है। अतः सुषुम्ना शीर्ष को ज्यादा क्षति पहुँचने पर फेफड़ों द्वारा श्वासोच्छ्वास क्रिया और हृदय द्वारा रक्त-संचार क्रिया तत्काल ही बंद हो जाते हैं और मनुष्य की मृत्यु हो जाती है।

काम विकार का मस्तिष्क और नाड़ी मण्डल पर प्रभाव

लघु मस्तिष्क की चर्चा करते समय हम ऊपर बता आए हैं कि यह मनुष्य के पुट्टा, जोड़ों या उठने-बैठने आदि की क्रियाओं का नियन्त्रण करता है तथा सारे शरीर का सन्तुलन (balance) ठीक रखता है। इस प्रसंग में हम आपका ध्यान एक ऐसे व्यक्ति की ओर आकर्षित करना चाहते हैं जिसने बहुत मात्रा में शराब पी रखी है। आपने देखा होगा कि शराबी आदमी मद के प्रभाव के कारण अपने शरीर का सन्तुलन नहीं रख पाता। वह दांये-बांये, गिरता-पड़ता जाता है अथवा लड़खड़ाता है। वह नशे की हालत में झूमता हुआ डगमगाने-सा लगता है। इसका कारण यह है कि शराब अथवा मादक पदार्थों (Drugs) का लघु-मस्तिष्क पर विशेष प्रभाव पड़ता है। साथ ही बृहत् मस्तिष्क की पिछला भाग जोकि रूप, रस आदि के अनुभव से सम्बन्धित है, पर भी पड़ता है। अब ज्ञातव्य यह है कि जब मनुष्य 'काम' के अधीन होता है तब वह भी डगमगाता ही है। वह भी दांये-बांये झुकता-गिरता जाता है। उस पर भी मद के नशे की तरह ही एक नशे का-सा प्रभाव होता है। अतः शरीर विज्ञान-विशेषज्ञों (Physiologists), मनोवैज्ञानिकों (Psychologists), चिकित्सकों (Doctors) इत्यादि का मन्तव्य है कि मनुष्य की वासना वृत्ति का तथा भोग-विलास का प्रभाव उसके लघु-मस्तिष्क पर विशेष तौर पर पड़ता है।

शल्य-चिकित्सकों (Surgeons) के निरीक्षण

काम-विकार से मनुष्य के मस्तिष्क पर जो प्रभाव पड़ता है, उसके बारे में कई चिकित्सकों ने अपने यहाँ आने वाले रोगियों का हाल लिखा है। रानहर्न्स नामक एक चिकित्सक ने लिखा है कि उसके पास एक व्यक्ति इलाज के लिए आया। उसका रोग यह था कि उसे विवाह की प्रथम रात्रि के प्रणय में ही मूर्च्छा

आ गई थी। डॉक्टर के इलाज के फलस्वरूप वह काफी ठीक हो गया। परन्तु डाक्टर के कहने के बावजूद भी वह अपनी वासना-वृत्ति को काबू न रख सका। उसने काम-भोग नहीं छोड़ा। परिणाम यह हुआ कि उसे पुनः मूर्च्छा का दौरा पड़ा और आखिर उसकी मृत्यु ही हो गई।

सिर्स नामक एक दूसरे चिकित्सक ने भी एक व्यक्ति का उल्लेख किया है जिसकी आयु उस समय 32 वर्ष थी। सिर्स लिखता है कि उस व्यक्ति को विषय-भोग की अवस्था में ही मूर्च्छा आ गई थी। मृत्यु होने पर जब उसके शव की शवोच्छेदन (Post-mortem) की गई तो देखा गया कि उसके लघु-मस्तिष्क में सूजन है। उसका मस्तिष्क तत्व (भूरा मादा, सफेद मादा और स्नायु तन्तु) कई स्थानों पर कटा हुआ-सा था और उसके मस्तिष्क के अन्दर की कई शैलियों में रक्त भरा हुआ था।

एक अन्य चिकित्सक, जिसका नाम 'एण्ड्रल' है, ने एक ऐसे व्यक्ति का उल्लेख किया है जिसे एक वेश्या के घर से निकलते ही मूर्च्छा आ गई। अस्पताल में जब मृत्यु होने पर शवोच्छेदन किया गया तो मालूम हुआ कि उसका लघु मस्तिष्क खराब हो गया था और उसका प्रभाव बृहत् मस्तिष्क पर भी पड़ने लग गया था। ऐसे ही कई व्यक्तियों का विवरण हैवलाक इलिस (Havelock Illis), सेरीज, डेलेण्डीज नामक चिकित्सकों ने तथा अन्यान्य चिकित्सकों ने भी दिये हैं। उन्होंने बताया है कि वे ऐसे कई वृद्ध लोगों के बारे में भी बता सकते हैं जिनकी विषय-भोग की अवस्था में ही मृत्यु हो गयी और उसका कारण यही था कि उनके लघु मस्तिष्क को अपरिवर्तनीय हानि पहुँची थी।

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि यदि काम-भाव की अभिव्यक्ति से मनुष्य के मस्तिष्क को इतनी हानि पहुँचती है तो सभी को तथा सदैव ही यह हानि क्यों नहीं पहुँचती?

इसका उत्तर कई चिकित्सकों ने बिल्कुल ठीक ही दिया है। वे कहते हैं कि जब मनुष्य स्त्री संसर्ग में प्रवृत्त होता है तो उस स्त्री की ओर से जो प्रेमाभिव्यक्ति होती है या जो अपनेपन के हावभाव होते हैं, वही उसे कुछ सहारा दे देते हैं

और ठीक न हो सकने वाली क्षति से बचा लेते हैं, वरना काम-क्रिया से हर-एक के मस्तिष्क पर निश्चय ही बुरा प्रभाव तो पड़ता ही है।

दूसरी बात यह है कि जो व्यक्ति हृष्ट पुष्ट हो, युवावस्था के शिखर पर हो, खूब खाता-पिता हो, उस पर इसका तुरन्त और तीक्ष्ण प्रभाव होते हुए भी प्रतीत नहीं होता, परन्तु जो पहले ही से थोड़ा कमजोर हो या ढलती आयु वाला हो उस पर उसका प्रभाव स्पष्ट और अधिक मालूम पड़ता है। इससे यह निष्कर्ष लेना उचित है कि वासना-भोग का प्रभाव तो सभी पर पड़ता ही है। कुछेक को मिरगी का रोग हो जाता है तो बहुत-से लोग ऐसा महसूस करते हैं कि जैसे उनका मस्तिष्क खोखला हो गया है। डॉक्टर कहते हैं कि बहुत-से लोग बताते हैं कि वासना-भोग के पश्चात् वे थकावट और कमजोरी महसूस करते हैं और उन्हें ऐसा लगता है कि जैसे उनके स्नायु तन्तु, उनकी रग-रग, उनके पुट्टे और जोड़, सभी को किसी ने झकझोड़ दिया हो। सर्वेक्षण करने पर चिकित्सकों को मालूम हुआ है कि युवक लोगों ने उन्हें बताया कि अपवित्र स्वप्न के बाद उन्हें आत्म-ग्लानि का अनुभव हुआ, उत्साह की कमी महसूस हुई, जीवन में निराशा की लहर दौड़ गयी, आँखों में जलन महसूस हुई और पुट्टों तथा जोड़ों को ऐसा लगा कि जैसे किसी ने उनमें से कोई शक्ति निकाल ली हो।

इस प्रकार, यह बात तो निर्विवाद ही है कि वासना-भोग से मनुष्य की शक्ति का क्षय होता है और उसके मस्तिष्क पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है यद्यपि यह उस व्यक्ति में कम दिखाई देता है जिसका खजाना अभी ज़्यादा खाली नहीं हुआ।

मस्तिष्क और जीवन-द्रव्य का सम्बन्ध

पाश्चात्य आयुर्विज्ञान के कई ज्ञाताओं का यह दृढ़ मत है कि मस्तिष्क तथा जीवन-द्रव्य (शुक्र) का इतना गहरा सम्बन्ध है कि जीवन द्रव्य का नाश सचमुच मस्तिष्क का नाश है। इस विषय में अमेरिका के प्रसिद्ध डॉ० एण्ड्रु जैक्सन डविस के ये शब्द हैं -

“शरीर विज्ञान के कई पंडितों ने यह भ्रान्ति फैला दी है कि जीवन द्रव्य रक्त से पैदा होता है। उनके इस भ्रान्तिपूर्ण मत से चालाक वासना-विलासी लोग ग़लत

लाभ उठाते हैं, वे कहते हैं कि जब रक्त से जीवन द्रव्य बनकर गोनाड' (Gonad; पुरुष-ग्रन्थियों) द्वारा स्त्रावित होता है, तब कई पौष्टिक पदार्थ खा-पी कर कमी एवं कमजोरी को दूर किया जा सकता है – वास्तव में ऐसा मानने वाले लोग कुछ भी नहीं जानते।.... सच्ची बात तो यह है कि जीवन द्रव्य और उनमें जीवन कीटाणु मस्तिष्क से पैदा



होते हैं और अन्य स्त्रावों के साथ सम्मिलित होकर वे पुरुष ग्रंथियों से बाह्य स्त्राव (External secretion) के रूप में प्रकट होते हैं।.... (अतः) मस्तिष्क से पैदा हुआ हरेक जीवन-किटाणु यदि बाहर निष्कासित होता है तो मानो कि मस्तिष्क का उस अनुपात में पूरा नाश होता है।'

डॉ. एण्डरू जैक्सन डेविस¹ ने चिरकाल तक इस विषय का अध्ययन करने के बाद ही उपरोक्त निष्कर्ष व्यक्त किया है। इस मन्तव्य का एक आधार यह मालूम होता है कि बहुत-से शरीर-शास्त्रियों के मतानुसार मस्तिष्क और जीवन-द्रव्य के रासायनिक द्रव्य एक-से ही हैं। डॉ० ब्लीस, डॉ० कोविन और डॉ० हाल भी मस्तिष्क और जीवन-द्रव्य में गहरा सम्बन्ध मानते हैं। प्रसिद्ध ग्रंथकार डॉ० शैलिंग ने तो मस्तिष्क और जीवन-द्रव्य का ऐसा सम्बन्ध माना है कि उसने मस्तिष्क को पुरुष-ग्रंथियों 'गोनाड (Gonad or testes) के रस से बना हुआ मस्तिष्क' – ऐसा नाम भी दे दिया है।

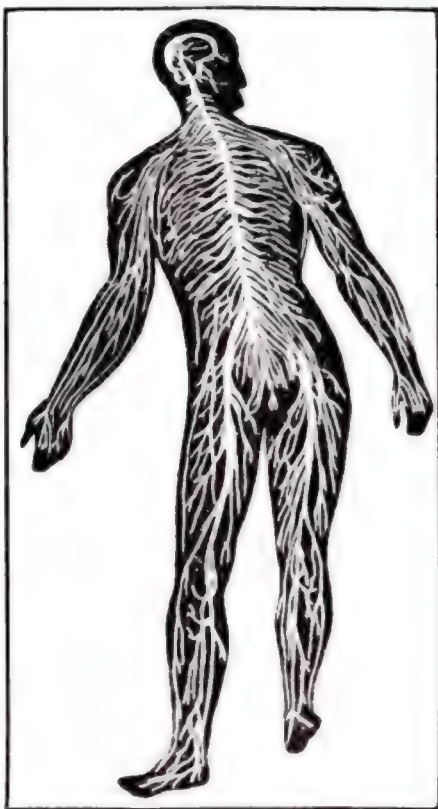
डॉ० एण्डरू जैक्सन ने जीवन-द्रव्य को नष्ट करने से होने वाली हानियों के बारे में लिखा है –

“प्रजनन का कार्य जीवन के सभी कार्यों की तुलना में अधिक भारी और थकाने वाला है। इसमें मानव की हर एक शक्ति, उसकी प्रत्येक इन्द्रिय अभिव्यक्ति तथा उसके तन और मन का प्रत्येक भाग सक्रिय होता है।”

1. गोनाड ग्रन्थियाँ

2. Dr. Andrew Jackson Davis, Answers to Ever-recurring questions from the people,

स्पष्ट है कि काम वासना के भोग से, जीवन-द्रव्य के क्षय से मनुष्यों तथा अन्य सभी जीवों का हास तो होता ही है। हां, यह बात अलग है कि नर-मादा के परस्पर प्रेम के हाव-भाव के कारण अथवा उनके जवानी के जोश के कारण उस समय उन्हें क्षति का पूर्ण आभास नहीं होता; कई बार यह निकृष्ट कर्म कर लेने के बाद ही उन्हें मालूम होता है कि हमने अपनी शक्ति को गँवा दिया है और अब हम बुढ़ापा, कमजोरी तथा मृत्यु की ओर खिंचे जा रहे हैं।



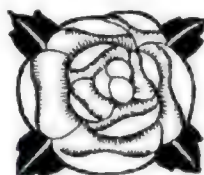
ऊपर हम वासना-भोग द्वारा लघु मस्तिष्क को हानि पहुँचने की बात का थोड़ा विवरण दे आये हैं। लघु-मस्तिष्क के साथ ही साथ बृहद-मस्तिष्क तथा सुषुम्ना-शीर्ष को भी क्षति पहुँचती है।

बृहत्-मस्तिष्क पर इसका बुरा प्रभाव

पड़ने का ही परिणाम है कि कामासक्त मनुष्य को कुछ भी सूझता नहीं। उसकी तर्क शक्ति और कर्म के परिणामों को समझने की शक्ति इस वासना से आच्छादित हो जाती है। वह काम के मद से चूर होकर लोक-मर्यादा को तिलांजलि देने को तैयार हो जाता है। इन्हीं लक्षणों को देखकर ही आध्यात्मिक शब्दावली में यह कहा जाता है कि उसका 'विवेक मारा जाता है'। वह यह समझ ही नहीं पाता कि वह जिस नाम और रूप की ओर आकर्षित हो रहा है, वे तो अस्थिर, क्षणभंगुर और

प्रतीति मात्र है। अतः वह सम्मोह के वश बुद्धि-भ्रष्ट हो जाता है और अपनी अनमोल शक्ति को गँवाकर सर्वनाश को प्राप्त होता है।

मस्तिष्क के नीचे शरीर में जो सुषुम्नाशीर्ष है, उस पर से होकर ही तो ज्ञानवाहिनी और क्रिया-वाहिनी नाड़ियाँ बृहत्-मस्तिष्क में जा मिलती हैं। पुनश्च, वहाँ से समस्त सुषुम्ना नाड़ीमण्डल सारे शरीर के नाड़ी मण्डल से मिला हुआ है। अतः भोगेन्द्रियों में उत्तेजना होने से तथा घर्षण से सुषुम्नाशीर्ष पर भी जो हानिकर प्रभाव पड़ता है, वह न केवल बृहत्-मस्तिष्क के पिछले भाग पर तथा लघु-मस्तिष्क पर आघात करता है बल्कि उससे शरीर के सारे नाड़ी-संस्थान पर बुरा प्रभाव पड़ता है मानो शरीर की नस-नस को किसी ने छेड़ दिया हो या झटका दिया हो। समस्त नाड़ी-मण्डल थकान महसूस करता है। शायद इसी कारण प्राचीन चिकित्सा प्रणाली में इसे 'मैथुन' कहा गया है और वासना-भोग की क्रिया द्वारा सारे शरीर का ऐसा बुरा हाल होता बताया है कि एक गन्ने को पेलने या निचोड़ने से होता है। अतः मनुष्य को चाहिए कि यह समझकर कि ब्रह्मचर्य को भंग करने से मनुष्य के मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है, कामुकता के भाव की प्रचंडता उसके सारे स्नायु-मंडल को क्षति पहुँचाती है, उसकी अन्तड़ियों में खुश्की होती है, उसके जोड़ दुखने लगते तथा अशक्त हो जाते हैं, उसकी नींद बिगड़ जाती है और जीवनी शक्ति के इस प्रकार के क्षय से मिरगी, अर्धांग, मूर्च्छादि रोग भी हो जाते हैं, रुधिर की कमी होती है, बुढ़ापा आना शुरू हो जाता है तथा मनुष्य मृत्यु की ओर घसीटा जाता है, विवेक नष्ट हो जाता है और लघु-मस्तिष्क को हानि भी होती है। समझदार मनुष्य को चाहिए कि 'काम' पर विजय प्राप्त करने का पुरुषार्थ करे। इससे उसे स्वास्थ्य, पवित्रता, शक्ति, उत्साह और विवेक प्राप्त होगा।

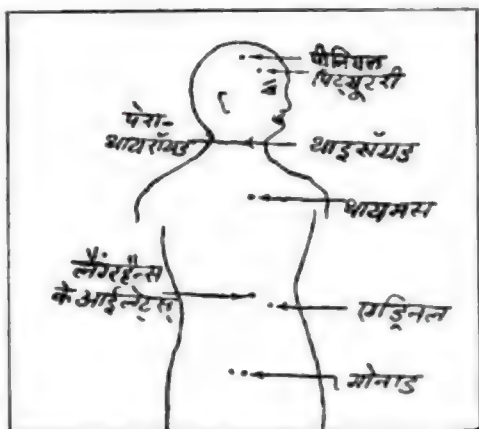


शरीर-विज्ञान और जैविक रसायन के आधार पर ब्रह्मचर्य व्रत का मूल्यांकन

“विज्ञान की भाषा में ‘ब्रह्मचर्य’ का क्या अर्थ है और अपने जीवन-बीज अथवा द्रव्य की रक्षा करना क्यों ज़रूरी है?” – इस बात को शरीर-विज्ञान (Physiology) तथा जैविक रसायन (Bio-Chemistry) के दृष्टिकोण से समझने के लिये हमें मानव शरीर की तत्सम्बन्धी ग्रन्थियों (Glands) और उनकी कार्य-प्रणाली को जानने की ज़रूरत है।

आज शरीर विज्ञान ने यह बात तो अच्छी तरह स्पष्ट कर दी है कि मनुष्य के शरीर में जितनी भी ग्रन्थियाँ हैं, वे सभी मनुष्य के स्वास्थ्य, स्वभाव और व्यक्तित्व के विकास इत्यादि

से बहुत अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं। उदाहरण के तौर पर मनुष्य के मुख में लार टपकाने वाली जो ग्रन्थियाँ (salivary glands) हैं, यदि वे लार या लाला रस न दें तो मनुष्य का मुख भीतर से गोला या आर्द्र नहीं रह सकेगा और भोजन की पाचनक्रिया के लिए



जो लाला रस (saliva) ज़रूरी है, उसके अभाव के कारण मनुष्य के शरीर में पाचन क्रिया को बहुत ही हानि पहुँचेगी और इन दोनों का परिणाम आप समझ ही सकते हैं। इसी प्रकार, थायरायड ग्रन्थियों (Thyroid Glands) से निकलने वाले स्नाव (रस) भी यदि ठीक मात्रा में द्रवित नहीं होते तो मनुष्य का मानसिक और शारीरिक विकास परिपूर्ण नहीं होता।

दो प्रकार की ग्रन्थियाँ

चित्र में हमने कुछेक ग्रन्थियों का स्थान अंकित किया है परन्तु हम इस

लेख में केवल उन्हीं ग्रन्थियों की चर्चा करेंगे जो जीवनी-शक्ति या जीवन-द्रव्य बनाती हैं, इससे पहले कि हम उनका वर्णन करें, यह जान लेना ज़रूरी है कि मानव-देह में मुख्य रूप से दो प्रकार की ग्रन्थियाँ हैं। सभी ग्रन्थियों से कोई स्राव (रस; secretion) तो द्रवित होता ही है; परन्तु कुछ ग्रन्थियाँ ऐसी हैं जिनका स्राव (रस) किसी-न-किसी प्रणालिका (duct) द्वारा शरीर के अन्दर या बाहर जाता है और दूसरी प्रकार की ग्रन्थियाँ वे हैं जिनका स्राव किसी प्रणालिका (नाली) के बिना ही शरीर में जाता है। अतः पहली प्रकार की ग्रन्थियों को 'प्रणालिका युक्त-ग्रन्थियाँ' (Glands with ducts) और दूसरी प्रकार की ग्रन्थियों को प्रणालिका-रहित ग्रन्थियाँ (Ductless glands) कहते हैं। उदाहरण के तौर पर पसीने या आँसुओं को बाहर निकालने के लिए इनकी ग्रन्थियों के साथ स्रावक नलियाँ (duct) लगी हुई हैं। लीवर (liver; यकृत) के स्राव को अपने स्थान पर पहुँचाने के लिए भी प्रणालियाँ बनी हुई हैं। परन्तु मस्तिष्क में जो पीनियल (pineal) ग्रन्थि है या गले में जो थाइरॉयड ग्रन्थि (thyroid glands) है या लीवर (यकृत; liver) के निकट जो 'एड्रिनल' ग्रन्थियाँ (adrenals) हैं, उनके स्राव को ले जाने के लिये कोई नाली नहीं होती। अब ब्रह्मचर्य के प्रसंग में जानने की एक बात तो यह है कि जीवन-द्रव्य को बनाने वाली जो ग्रन्थियाँ हैं, उनके स्राव को ले जाने के लिये प्रायः प्रणालिकाएँ हैं।

ग्रन्थियों के बारे में एक ज्ञातव्य बात यह भी है कि कुछ ग्रन्थियाँ तो ऐसी हैं कि उनके स्राव (रस; secretions) शरीर के बाहर चले जाते हैं। पसीने या आँसुओं की ग्रन्थियाँ इसी प्रकार की हैं। मूत्र की ग्रन्थियाँ भी इसी श्रेणी की हैं। ऐसी ग्रन्थियों को 'बाह्यस्रावी ग्रन्थियाँ' कहते हैं। यदि इनके स्राव शरीर के भीतर रह जायें तो उनसे हानि होगी। दूसरी प्रकार की ग्रन्थियाँ ऐसी हैं कि चाहे उनकी प्रणालिकाएँ हों या न हों, उनका स्राव शरीर के अन्दर ही होता है और अन्दर ही खपता है। उदाहरण के तौर पर थाइरॉयड ग्रन्थियों (Thyroid glands) का स्राव शरीर के भीतर ही रक्त-पातों (blood vessels) द्वारा सोख लिया जाता है। एड्रिनल ग्रन्थि (Adrenal glands) से एड्रिनिन (adrenine) नामक जो स्राव प्रवाहित होता है, वह भी शरीर के भीतर ही जिगर को

उत्तेजित कर के रक्त-चीनी (Blood sugar) पैदा करता है और इससे शरीर में अतिरिक्त शक्ति (extra energy) देता है जिससे मनुष्य किसी विकट परिस्थिति का सामना कर सकता है अथवा तीव्र गति ले सकता है।

अब ब्रह्मचर्य के प्रसंग में ध्यान देने के योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि जीवन द्रव्य को बनाने वाली जो भी ग्रन्थियाँ हैं, वास्तव में उनका स्त्राव शरीर के अन्दर ही खपना चाहिये — ऐसा प्रकृति की ओर से प्रबन्ध है। परन्तु यदि कोई व्यक्ति वासनात्मक प्रवृत्ति वाला तथा अश्लील विचारों वाला है तो उसके लिए प्रकृति की ओर से यह प्रबन्ध है कि प्रजनन ग्रन्थियों का स्त्राव बाहर प्रवाहित हो आता है। वास्तव में यह उसके कामोत्तेजक भावों के कारण प्रकृति की ओर से मिलने वाला दण्ड है किन्तु क्षणिक सुख की तात्कालिक अनुभूति के कारण अज्ञानी मनुष्य इस सत्यता को समझता नहीं है। अब आगे हम इसी बात को ही स्पष्ट करेंगे कि वास्तव में जीवन-द्रव्य शरीर के अन्दर ही ओज, उत्साह एवं शक्ति पैदा करने के लिये है।

इस विषय में विशेष ज्ञातव्य यह है कि जीवन-द्रव्य सम्बन्धी ग्रन्थियों (Gonads) से अन्तःस्त्राव (internal secretion) तो बचपन से ही शुरू हो जाता है। यह अन्तःस्त्राव शरीर में जञ्ब होकर उसे सूडौल और सुदृढ़ बनाता है। यह अन्तःस्त्राव 'लिम्फ' (Lymph) तथा रूधिर द्वारा सारे शरीर में जाकर शक्ति देता है। यह इन्हीं के द्वारा मस्तिष्क में जाकर उसे विकसित करता है। यह मेरुदण्ड और सुषुम्ना में जाकर सभी नस-नाड़ियों को बल प्रदान करता है।

किशोर अवस्था पूरी होने पर व्यक्तित्व में तथा शरीर में जो विशेष परिवर्तन होने लगते हैं, वे इन्हीं ग्रन्थियों (Gonads) के कारण होते हैं। पुरुष में पुरुषत्व के और नारी में स्त्रीत्व के लक्षण इन्हीं के कारण प्रकट होते हैं। यदि किसी पुरुष की ये ग्रन्थियाँ निकाल दी जायें तो न केवल उसमें पहले-जैसा बल, उत्साह, युवा अवस्था, उभार, अदम्य-शक्ति देखने में नहीं आते बल्कि उसकी आवाज़ भी बदल कर नारियों की आवाज़ की तरह पतली हो जाती है।

यह सब कहने का हमारा भाव यह है कि वास्तव में इन ग्रन्थियों का स्त्राव शरीर के भीतर ही खपना चाहिए। प्रकृति की व्यवस्था भी शुरू से ऐसी ही है।

इसी के भीतर जज़्ब होने से मनुष्य के चेहर पर 'ओज' प्रकट होता है। इससे ही जीवन में स्फूर्ति और उत्साह भी होता है।

परन्तु, परन्तु, परन्तु! जब बालक किशोर अवस्था से युवा अवस्था में प्रवेश कर रहा होता है, उसकी ये ग्रन्थियाँ बाह्य स्त्राव भी द्रवित करने लगती हैं। चूँकि बालक समाज के वातावरण से प्रभावित होता है, वह अश्लील गीत सुनता है, कामोत्तेजक दृश्य देखता है, नावल पढ़ता है और कई अन्य कारणों से भी उत्तेजित हो जाता है तो उसकी यह ग्रन्थियाँ जीवन-द्रव्य का बाह्य निष्कासन करने के लिये चंचल हो उठती हैं। तभी उसका बाह्य स्त्राव कार्य-भोग द्वारा नष्ट होने लगता है। यह बाह्य स्त्राव अन्तःस्त्राव में बाधक है। अतः जिसका बाह्य स्त्राव होता है, उसका अन्तःस्त्राव रुक जाता है और इसलिए उसका विकास भी रुक जाता है।

अन्तःस्त्राव ही हारमोन; हारमोन की कमी से रोग

ऊपर हमने जिन्हें 'अन्तःस्त्राव' कहा है, शरीर-विज्ञान-वेत्ता उन्हें ही 'हारमोन' (Hormones) कहते हैं। आपने कई बार चिकित्सकों को यह कहते सुना होगा कि अमुक व्यक्ति इसलिए रोगी है कि उसमें 'हारमोन्स' की कमी है। इसी बात को दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि उस व्यक्ति की ग्रन्थियाँ ठीक तरह से अन्तःस्त्राव नहीं करतीं। आधुनिक आधुर्विज्ञान अथवा पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति का यह मन्तव्य है कि मानव शरीर में सभी रोग हारमोन्स की कमी से होते हैं। इसी बात को आध्यात्मिक लोग यों कहते हैं कि ब्रह्मचर्य व्रत को भंग करने से मनुष्य का तन रोगी होने लगता है। इस बात से बुद्धिमान लोग समझ सकते हैं कि मानसिक विचारों को पवित्र रखना तथा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना कितना ज़रूरी है क्योंकि कामभाव से जीवन-द्रव्य पैदा करने वाली ग्रन्थियों (Gonads) में ऐसी उत्तेजना होती है और वे अन्तःस्त्राव को बाहर द्रवित करना शुरू करते हैं और उसी के फलस्वरूप अन्तःस्त्राव का द्रवित होना रुक जाता है और उसी के परिणाम-स्वरूप बुढ़ापा तथा रोग आने लगते हैं और मनुष्य मृत्यु की ओर दौड़ने लगता है। इसीलिए ही कहा गया है कि ब्रह्मचर्य द्वारा ही मृत्यु को जीता

जा सकता है।

‘जीवन-द्रव्य’ का बाह्य स्त्राव न होने देना और उसके लिये विचारों को पवित्र रखना अर्थात् कामोत्तेजना से निवृत्त रखना ही ‘ब्रह्मचर्य’ है। चूँकि कामोत्तेजना, जो ही इस द्रव्य के बाह्य स्त्राव और बाह्यनिष्कासन का मूल कारण है, से मन को बचाने का सर्वश्रेष्ठ उपाय स्वयं को ‘ब्रह्मलोक से आई हुई एक आत्मा’ मानकर ही संसार के कार्य-व्यापार में विचरना है, इसलिये तेज की रक्षार्थ पालन की गयी दिनचर्या एवं रात्रि-चर्या को ‘ब्रह्मचर्य’ कहते हैं। स्वयं को ‘ब्रह्मधाम’ की एक आत्मा मानने के सिवा अन्य कोई भी ऐसा तरीका नहीं है जिससे कि मनुष्य स्त्री-पुरुष के भान से या काम वासना से पूर्णतः मुक्त रह सके। अतः कामोत्तेजना से बचे रहने के इस तरीके को ‘ब्रह्मचर्य’ – ऐसा श्रेष्ठ नाम दिया जाता है। इस उच्च मनोस्थिति के फल-स्वरूप ही सभी ग्रन्थियों के स्त्राव शरीर के भीतर ही ओज, तेज, मानसिक शक्ति तथा शारीरिक बल पैदा करने में प्रयुक्त होंगे।

यदि जैविक रसायन (Bio-chemistry) के दृष्टिकोण से देखा जाय तो उपरोक्त जीवन-द्रव्य के बाह्य-निष्कासन से मनुष्य के शरीर को बहुत ही अथाह हानि पहुँचती है। कुछ वैज्ञानिकों का तो मन्तव्य है कि इससे मनुष्य के मस्तिष्क को भी बहुत हानि पहुँचती है, मानो कि मस्तिष्क ही का कोई सार निष्कासित हो गया हो; तभी तो मस्तिष्क में खोखलापन अनुभव होता है। परन्तु खेद है कि बे-समझ इन्सान इस निकृष्ट कर्म को करता रहता है। फिर शरीर में इन तत्वों का अभाव अनुभव करने पर वह डॉक्टर से इन्जेक्शन (injection) लगवाता है, या अण्डा, प्याज़, माँस इत्यादि तामसिक वस्तुओं का सेवन करता है परन्तु इनसे उसे पुनः कामोत्तेजना होती है और इस प्रकार यह कुचक्र (Vicious circle) चलता रहता है।

1. ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युं उपायन्त – देवताओं ने ब्रह्मचर्य द्वारा मृत्यु को जीत लिया।

2. जैविक रसायन-वेत्ताओं का कथन है कि इससे मनुष्य के शरीर से एल्ब्यूमन (Albumen),

कैल्सियम (Calcium), फॉस्फोरस (Phosphorus), प्रोटीन (Proteins), हार्मोन (Hormones) तथा अनेक लवण इत्यादि तथा 2 करोड़ से 5 करोड़ तक की संख्या में जीवन-क्रीट (sperm) व्यर्थ चले जाते हैं।

इसके अतिरिक्त, मनुष्य को भोग-क्रिया से और कई प्रकार की क्षति पहुँचती है।

पुनश्च, शरीर-विज्ञान-वेत्ताओं का कहना है कि काम की उत्तेजना के परिणाम स्वरूप, मनुष्य का रक्त उसकी भोगेन्द्रियों की ओर दौड़ता है। कुछ काल वहाँ ही रुकने के बाद वह पुनः बाकी रक्त में जाकर मिलता है। इस प्रकार, वहाँ रुके हुए रक्त का वापस रक्त में जा मिलना ही हानिकारक है। इससे भी मनुष्य को कई रोग पैदा होते हैं।

अतः संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि कुचेष्टाओं से, कामोत्तेजना से तथा ब्राह्मस्त्राव के निष्कासन से मनुष्य को अनेकानेक प्रकार की हानियाँ होती हैं। यदि इसकी बजाय मनुष्य अन्तःस्त्राव को संयम से, ब्रह्मचर्य से, आध्यात्मिक ज्ञान एवं योग-साधना से अन्दर ही खपा दें तो उस से अवर्णनीय लाभ हैं।

-
3. Skin nerves over the glands : शिब्र के मुण्ड के ऊपर का चर्म। उदाहरण के तौर पर, शरीर-विज्ञान-वेत्ताओं का कहना है कि मनुष्य का जो मुण्डाग्र चर्म है, उसमें उसके शरीर की कई ज्ञान-वाहिनी शिरायें (Sensory nerves) पहुँचती हैं। स्त्री-संसर्ग से उन पर भी अनुचित दबाव पड़ता है। वे बहुत नाजुक होती हैं। अनुचित धर्षण से उन द्वारा मनुष्य के मस्तिष्क पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

वासना-भोग

प्रकृति के नियमों के विरुद्ध है या अनुकूल?

जीवन-द्रव्य को स्रवित करने वाली ग्रन्थियों का तथा उनसे सम्बन्धित प्रणालिकाओं के अस्तित्व का उल्लेख करते हुए बहुत-से लोग कहते हैं कि—मनुष्य के शरीर की रचना ही ऐसी है कि वासना-भोग प्रकृति (Nature) की ओर से स्वीकृत है। यदि कुदरत को यह काम स्वीकार्य न होता तो शरीर में यह सब नालिकाएँ-प्रणालिकाएँ और ग्रन्थियाँ क्यों होतीं?

वास्तव में उनका यह कथन सरासर ग़लत है। शरीर की यह रचना ही बताती है कि मनुष्य प्रकृति के विरुद्ध ही यह निकृष्ट कार्य (काम-भोग) करता है; इसीलिए उसे प्रकृति की ओर से कड़ा दण्ड मिलता है। इस विषय में हमें निम्नलिखित बातें याद रखनी चाहियें —

1. हम बता आए हैं कि पुरुष ग्रन्थियाँ¹ तो बाल्यावस्था ही से होती है। उनके स्राव बचपन के समय से ही शरीर के भीतर खपते रहते हैं जिससे कि मनुष्य का विकास होता रहता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि पुरुष-ग्रन्थियाँ मूल रूप से अन्तःस्राव ही की ग्रन्थियाँ हैं। बाह्य स्राव तो बहुत वर्ष बाद में शुरू होते हैं, उसका कारण हम आगे चल कर बतायेंगे। जीवन-द्रव्य का निर्माण करने वाली दोनों पुरुष-ग्रन्थियों का तो लिम्फ (Lymph) और रूधिर-कोशिकाओं से सम्बन्ध होता है और सामान्यतः उनका स्राव रूधिर में तथा उस द्वारा समस्त शरीर में शक्ति प्रदान करता है।

(i) इस विषय में यह स्मरणीय है कि जब किसी मनुष्य या पशु (जैसे कि बैल, घोड़ा इत्यादि) की ये ग्रन्थियाँ निकाल दी जाती हैं तो उसमें पराक्रम, उद्यम, उत्साह, शक्ति, साहस इत्यादि गुण नहीं रहते, न ही उसमें यौवन के लक्षण होते हैं और न ही उसका ठीक प्रकार से विकास होता है। अतः इससे स्पष्ट है कि उन ग्रन्थियों का मूल उद्देश्य मानव में इन गुणों को उभारना तथा

1. जिन्हें 'गोनड' (Gonads) कहा जाता है।

उसके शरीर-विकासार्थ कुछेक महत्वपूर्ण स्त्राव द्रवित करना है तथा पुरुष और नारी को स्व-स्व व्यक्तित्व प्रदान करना है। इससे भी यही प्रमाणित होता है कि ये मुख्य रूप से अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियाँ हैं जो कि पुरुष के चेहरे, आवाज़, स्वभाव, शरीर-रचना को पुरुष के अनुकूल विकसित करने के लिये आवश्यक हैं क्योंकि पुरुष की ग्रन्थियों को स्त्री में स्थापित करके या स्त्री की ग्रन्थियों को पुरुष में स्थापन करके ये परिवर्तन होते देखे गये हैं। अतः इनका अस्तित्व केवल सन्तानोत्पत्ति ही के लिए मानना और इन्हें मुख्यतः 'बाह्य-स्त्रावी' ग्रन्थियाँ मानना भूल होगा।

2. अब यह जो कहा जाता है कि इन ग्रन्थियों से जीवन-कोट अथवा जीवन-बीज (Sperm) भी तो द्रवित होते हैं और वे तो सन्तानोत्पत्ति ही के लिए होते हैं, अब इसके बारे में भी सुन लीजिये:-

(i) इन ग्रन्थियों से जीवन-बीजों का निकलना साधारणावस्था में नहीं होता बल्कि काम-भाव से प्राप्त हुई उत्तेजना ही के परिणामस्वरूप होता है। मनुष्य को जितनी बार उत्तेजना हो, उतनी बार इन ग्रन्थियों से जीवन-द्रव्य स्त्रावित होता है। स्पष्ट है कि यह अस्वाभाविक और अप्राकृतिक है क्योंकि मनुष्य को दिन में या मास में कई बार तो सन्तानोत्पत्ति का कार्य करना नहीं होता। पशु भी ऋतु-गामी होते हैं, मनुष्य तो ऋतुचर्या का भी उल्लंघन करता है, तब भी स्त्राव तो होता ही है। ऐसी अवस्था में इसे प्राकृतिक (Natural) कैसे कहेंगे? 'उत्तेजना' तो सामान्य अवस्था का नाम नहीं है बल्कि असामान्य अवस्था का नाम है।

(ii) इन ग्रन्थियों से जीवन-द्रव्य तथा जीवन-बीजों का स्त्राव तो किसी चिन्ता या भय के कारण भी होता है। चिकित्सा-विज्ञान-वेत्ताओं ने ऐसे कई युवकों का उल्लेख किया है जो परीक्षा स्थल पर परीक्षा देते हुए निर्धारित समय में पूरे पत्र हल न हो सकने पर चिन्तित हो उठे और जब यह घोषणा हुई कि समय समाप्त होने वाला है तो उनकी चिन्ता बढ़ी और उसका तनाव इन ग्रन्थियों पर ऐसा पड़ा कि ये स्त्रावित हो उठीं। स्पष्ट है कि उस समय स्त्रावित होने का लक्ष्य सन्तानोत्पत्ति तो था ही नहीं; वह स्त्राव तो चिन्ता ही के कारण हुआ। चिन्ता तो मन की एक विकृत ही अवस्था है। अतः निष्कर्ष यह निकला कि इन ग्रन्थियों का बाह्यस्त्राव

प्रायः मन की विकृत अवस्था ही के कारण होता है।

(iii) बहुत-से युवक, चिकित्सकों को अपनी करुण कहानी सुनाते हुए कहा करते हैं कि रात्रि को कोई स्वप्न आने पर भी यह बाह्यस्त्राव निष्कासित हो जाता है। वे स्वप्न भय से भरे हुए भी हो सकते हैं और चिन्ता या काम-भाव से भी। प्रायः वे काम-भाव ही की उत्तेजना के परिणामस्वरूप होते हैं। चिकित्सक लोग इस प्रकार के स्त्राव हो जाने के कारण को 'स्वप्न दोष' (Night Pollution) ऐसा नाम देते हैं। स्पष्ट है कि जैसे स्वप्न में कामोत्तेजना होने से यह स्त्राव 'स्वप्न दोष' कहाता है, वैसे ही जागृत अवस्था में कामोत्तेजना से होने वाला बाह्यस्त्राव भी 'जागृत दोष' (Pollution) ही हुआ। जैसे स्वप्न दोष के परिणामस्वरूप मनुष्य का मस्तिष्क खोखला हो जाता है, उत्साह भंग होता है, शरीर में कमजोरी अनुभव होती है, आत्म-ग्लानि महसूस होती है तथा शरीर क्षति अनुभव करता है, वैसे ही तो 'जागृत-दोष' में भी होता है। अन्तर केवल इतना है कि जागृति की अवस्था में मनुष्य को स्त्री से जो प्रेम (वास्तव में झूठा प्रेम)³ मिलता है, उसके बल से वह इस क्षति को खुशी-खुशी सह जाता है परन्तु यह बात तो निर्विवाद है कि क्षति होती तो है ही।

फिर, स्वप्न में कलुषित विचारों में हुआ यह पतन तो 'दोष' कहलाता है क्योंकि मनुष्य ने पूरी तरह सचेत अवस्था में यह काम नहीं किया और उसने किसी दूसरे को भी अपने इन पतित विचारों के द्वारा पतित नहीं बनाया, परन्तु जागृति की अवस्था में किया गया यह निकृष्ट कर्म तो 'दोष' नहीं 'पाप' ही है क्योंकि इसे तो मनुष्य पूरी सूझ-बूझ की अवस्था में करता है और इस विकृत अवस्था में तो वह दूसरे के 'रक्त-पात' का उस पर कुठाराघात (Criminal assault) अथवा अधोपतन का निमित्त बनता है।

कुछ भी हो, यह तो निश्चित हो ही गया कि इस स्त्राव का मूल कारण मनुष्य के पतनकारी विचार (Polluted thoughts), अन्य किसी-न-किसी प्रकार की उत्तेजना (चिन्ता या भय) ही है। ऐसी अवस्था में इसे 'स्वाभाविक' या 'प्राकृतिक'

3. इसे 'झूठा' इसलिए कहा गया है कि यह स्वयं के 'पुरुष' या 'स्त्री' भान से, अल्पकाल के लिए पैदा होता है और स्वयं को आत्मा की बजाय 'पुरुष' या 'स्त्री' मानना तो झूठ ही है।

(Natural) मानना स्वयं को धोखा देना ही है।⁴

इस पर भी यदि कोई हठ करे तो हमारा कथन यह है कि इस प्रणालिका का अस्तित्व इसीलिए है कि यदि चिन्ता, भय या कामोत्तेजना से किसी की पुरुष-ग्रन्थियाँ जीवन-द्रव्य स्रावित करें भी तो उसका स्राव इस प्रणाली से बाहर निकल जाय। गोया स्वाभाविक अवस्था में इसका कोई विशेष प्रयोग नहीं है; अस्वाभाविक अवस्था में ही इसका प्रयोग है। शरीर में ऐसी बहुत-सी ग्रन्थियाँ हैं जिनका प्रयोग किसी विशेष अथवा असामान्य स्थिति में ही होता है: एड्रिनल ग्रन्थियाँ, जो कि शरीर को अतिरिक्त शक्ति देने के लिए हैं, भी एक दृष्टिकोण से इसी प्रकार की ग्रन्थियाँ हैं। जब मनुष्य को किसी ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता है, जिसमें उसे अधिक शक्ति की ज़रूरत हो, तभी वे विशेष तौर पर द्रवीभूत होती हैं।

विकासवादियों से हमारा निवेदन

डार्विन और उसकी विचारधारा के दूसरे वैज्ञानिकों के मत को मानने वाले कई लोग कहते हैं कि शरीर में जो भी ग्रन्थि, प्रणालिका इत्यादि हैं, वे निष्प्रयोजन नहीं हो सकते। अतः यह जो पुरुष-ग्रन्थियाँ हैं, इनका प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति ही है और इनका स्राव बाह्य होना ही स्वाभाविक है। इनकी बाह्यस्रावी प्रणालिका व्यर्थ ही नहीं बनी हुई है।

इसका उत्तर देने से पहले हम पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं कि डार्विन और उसके विकासवाद को सत्य मानने वाले तो स्वयं ही कहते हैं कि जैविक विकास (Biological evolution) के इतिहास में जीव परिस्थितियों का सामना करने के लिए अपने शरीरों में कई परिवर्तन करते रहे हैं। वे कई प्रकार के नये अंग या अवयव अपनाते रहे हैं, कई अनावश्यक या विषम अवयवों को त्यागते भी रहे हैं तथा और कई अंगों में वांछित परिवर्तन भी करते हैं। विकास की तो यह एक मौलिक मान्यता ही है कि जीवों के शरीर प्रारम्भ

4. पुरुष-ग्रन्थियाँ बाह्य स्रावी नहीं हैं - इसके अधिक स्पष्टीकरण के लिए तथा इनसे सम्बन्धित प्रणालिकाओं की जानकारी के लिए ज्ञानामृत पत्रिका के जुलाई-अगस्त, 1976 के अंक के पृष्ठ 54 को देखें।

से ऐसे ही नहीं रहे हैं और न ही यह अनन्त काल तक ऐसे रहेंगे ही। इसी सिद्धान्त के आधार पर ही कई विकासवादी लोग कहते हैं कि मनुष्य के शरीर में जो ऐपेंडिक्स (Appendix) है, वह व्यर्थ है;⁵ मानव से नीचे की कई योनियों में इसकी आवश्यकता थी परन्तु अब मानव के शरीर में इसकी आवश्यकता नहीं मालूम होती। अतः कई चिकित्सकों का मत है कि यदि इसे शल्य क्रिया (Operation) द्वारा निकाल दिया जाय तो कोई हर्ज नहीं। इसी प्रकार, वे रीढ़ की हड्डी के अन्तिम भाग को भी पूँछ के अन्त की तरह का मानते हैं। गोया उनका यह मन्तव्य है कि पशुओं में जो पूँछ होती है, वह ही मनुष्य के शरीर में लुप्त-प्रायः होकर इसी आकार की हो गयी है।⁶

अब हमारा नम्र निवेदन यह है कि जब आधुनिक शरीर-विज्ञान विकासवाद के उपरोक्त मन्तव्य पर ही टिका हुआ है और विकासवाद परिस्थितियों के अनुसार शरीर में परिवर्तन मानता ही है तो फिर यह मानने में क्या आपत्ति है कि पहले जब मनुष्य के विचार पवित्र अर्थात् काम-विकार से रहित हुआ करते थे, तब यद्यपि ये पुरुष-ग्रन्थियाँ होती थीं तथापि अष्टिलागत प्रणालिका इत्यादि नहीं थी या उसका यह कार्य नहीं था। जब मनुष्य काम-भाव से उत्तेजित होने लगा तब ही मानवी शरीर के अपने ही 'विकास' (Adaptation) द्वारा यह ग्रन्थि अस्तित्व में आई अथवा इसका पुरुष-ग्रन्थियाँ के स्त्राव के निष्कासन के लिए भी प्रयोग शुरू हुआ। अगर विकासवाद के अनुसार वानर (Ape) विकास को प्राप्त करके मनुष्य बन सकता है तो मनुष्य के शरीर के भीतर इस मामूली से परिवर्तन में कौन-सी बात असम्भव है? यदि एक जीव कोष (Cell) वाला अमीबा विकासवादियों के मतानुसार बदलते-बदलते मानव बन सकता है तो इस अष्टिला-गत प्रणालिका या शुक्रवाहिनी प्रणालिका के परिवर्तन हुए होने में कौन-सी बात अमान्य है।

5. शरीर-विज्ञान के कई ज्ञाता ऐसा नहीं मानते।
6. ज़रूरी नहीं कि हम इस मत से सहमत हों। हमने यहाँ केवल विकासवादियों का मत देने के लिए इसका उल्लेख किया है।
7. मेरे एक साथी कभी हँसी में यह भी कह दिया करते हैं कि शायद पहले पुरुष की पुरुष-ग्रन्थियाँ भी नारी की ग्रन्थियों की तरह कोष्ठ-गुहा में ही रहती होगी। वे इसलिये ऐसा कहते हैं हम प्राचीन

फिर, हमारे इस मन्तव्य का अनुमोदन तो कई तथ्यों द्वारा होता है। आज भी हम देखते हैं कि पुरुष-ग्रन्थियों से जीवन-बीजों इत्यादि का प्रवाह 'काम'-भाव द्वारा उत्तेजना होने पर ही होता है। दूसरे, हमें यह भी तो सोचना चाहिए कि जीवन-द्रव्य में 2 करोड़ से 5 करोड़ तक की संख्या में शुक्र-कीटों का होना यह भी सिद्ध करता है कि यह प्रकृति के नियमों के विरुद्ध है क्योंकि जब सन्तानोत्पत्ति में केवल एक ही शुक्र-कीट काम में आता है, तब इतनी फ़िज़ूलखर्ची प्रकृति को कैसे स्वीकार हो सकती है? प्रकृति स्वाभाविक तौर से कभी भी किसी अनमोल तत्व या पदार्थ को इस प्रकार व्यर्थ नहीं करती।

फिर, सोचने की बात यह भी है कि यदि शुरू ही से इस प्रकार पुरुष के जीवन-द्रव्य एवं शुक्र-कीट के निष्कासन के लिए प्रणालिका अथवा नस बनी हुई होती तो आज नस-बन्दी के अभियान की बात न सोची जाती। यदि मनुष्य में शुरू ही से यह 'काम'-वासना होती तो आज जो जन-संख्या है, वह सैकड़ों हज़ारों वर्ष पहले ही इससे भी ज्यादा हो गयी होती। अब जैसे जन-संख्या के बढ़ने की द्रुतगति से चिन्तित होकर नस-बन्दी की मुहिम जारी है, क्या पता अन्ततोगत्वा मनुष्य के शरीर ही में यह कुदरती परिवर्तन हो जाय!

पुनश्च, यह तो आधुनिक समाज-शास्त्री भी कहते हैं कि जो बुद्धिजीवी अथवा शिक्षित लोग हैं, वे अशिक्षित लोगों से कम ही सन्तानोत्पत्ति करते हैं। अतः अब डार्विन के विकासवाद के अनुसार भी शारीरिक विकास तो अमीबा (Amoeba) से मनुष्य तक हो गया है; अब तो मानसिक, बौद्धिक अथवा चेतनात्मक विकास ही की दिशा रह गयी है जिसमें मनुष्य विकसित हो सकता है। यदि इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो भी अब मनुष्य को आत्म संयम ही की ओर आगे बढ़कर अपनी नसल को जरा-व्याधि, अकाल मृत्यु इत्यादि पर विजय-प्राप्ति की ओर बढ़ाना चाहिए। और, इस लक्ष्य की सफलता का उद्देश्य तो ब्रह्मचर्य ही है। जबकि परिवर्तन जीव-विकास में विशेष रूप से सहायक है तो अब यही परिवर्तन वांछित

काल के पुरुषों। अर्थात् सतयुग या त्रेतायुग के देवताओं के जो चित्र देखते हैं, उनमें उन देवताओं के दाढ़ी-मूँछ इत्यादि नहीं दिखाये होते। प्रायः यह मन्तव्य प्रचलित है कि उनके दाढ़ी-मूँछ नहीं होते थे।

है ताकि हमारा समाज एक सुखी समाज बन सके।

पहले जन-संख्या कैसे बढ़ती थी?

अब कोई कह सकता है कि – “अच्छा, हमें यह मान लेते हैं कि पहले एक ऐसा युग भी था जब मनुष्य में कामोत्तेजना नहीं होती थी और इस प्रकार मनुष्य अपनी जीवनी शक्ति अथवा जीवन-द्रव्य को व्यर्थ नहीं गँवाता था, परन्तु तब संसार की वृद्धि कैसे होती थी?”

इस विषय में हमें मालूम होना चाहिए कि सतयुग और त्रेतायुग में सन्तानोत्पत्ति “योग बल”⁸ से होती थी क्योंकि तब मनुष्य उध्वरिता होते थे। भारत के प्राचीन ग्रन्थों में भी ऐसे बहुत-से उल्लेख हैं जिनसे विदित होता है कि पहले सन्तानोत्पत्ति कामोत्तेजना द्वारा नहीं होती थी। इन बातों को समझने के लिए मनुष्य का पहले ‘योगी’ बनना ज़रूरी है। अतः हमारा निवेदन है कि मनुष्य योगी बने, पवित्र बने, आत्माभिमानी बने तो उसके मन से इन शंकाओं का कोई महत्त्व ही न रहेगा। हम ने जीव-विज्ञान के द्वारा जो-कुछ भी बताने का प्रयत्न किया है, उसका भी मूल उद्देश्य तो ब्रह्मचर्य के लिए प्रेरित करना ही है।

-
8. हमारी यह मान्यता है कि मनुष्य-जाति जैसे-जैसे संयम अथवा यम-नियम का पालन करेगी वैसे-वैसे उसमें परिवर्तन आएगा। मनुष्य की वैराग्य वृत्ति तथा आण्विक अस्त्रों के विस्फोट के प्रभाव फलस्वरूप में यह परिवर्तन होगा। वैसे ही आज भी कई मनुष्य ऐसे होते हैं जिनकी यह ग्रन्थियाँ ऊपर कोष्ठ गुहा में ही होती हैं, उनको शल्य-क्रिया द्वारा डाक्टर लोग ‘स्त्री से पुरुष’ या ‘पुरुष से स्त्री’ बनाते हैं। आपको मालूम रहे कि जीव शास्त्री कहते हैं कि हाथी और व्हेल के नर में भी ये ग्रन्थियाँ कोष्ठ-गुहा में ही रहती हैं।

पहले सृष्टि की वृद्धि योग-बल द्वारा ही होती थी

आज इस घोर कलियुग में जब हम किसी से कहते हैं कि सृष्टि के पहले दो युग ऐसे थे कि जिनमें सन्तानोत्पत्ति योग बल के द्वारा होती थी तो वे इस कथन से पवित्र बनने की प्रेरणा लेने के बजाय ज़ोर से एक कहकहा लगा देते हैं। वास्तव में इसमें उनका कोई दोष नहीं है; आजकल लोगों का खान-पान, रहन-सहन, वातावरण, अध्ययन इत्यादि ही ऐसा हो गया है कि उसके प्रभाव के कारण मनुष्य के लिए ऐसे उच्च अथवा सूक्ष्म रहस्यों को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करना मुश्किल है। यदि मनुष्य आहार-व्यवहार की शुद्धि तथा ब्रह्मचर्य के नियम का पालन करे तथा योगाभ्यास भी करे तो उसे इस रहस्य की सत्यता में सहज ही निश्चय हो सकता है।

जिन दो युगों में योगज सृष्टि होने की चर्चा हम कर रहे हैं, उन दो युगों का लिखित इतिहास भी आज उपलब्ध नहीं है कि उसे पढ़कर कोई व्यक्ति यह मान जाए कि सतयुग और त्रेतायुग में निस्सन्देह योग बल द्वारा ही सृष्टि-संवर्द्धन होता था। उन दिनों न तो कोई ऐसी लड़ाइयाँ या घटनाएँ ही घटती थीं जैसी कि हम उत्तर काल के इतिहास में पढ़ते हैं, न ही इस प्रकार इतिहास लिखने का कोई रिवाज ही था; फिर, विशेष बात यह भी है कि योग-बल द्वारा प्रजा की उत्पत्ति की बात तो तभी कही जाती जब उन दिनों उसके अतिरिक्त गौण रूप से या सामान्य रूप से मैथुन या किसी अन्य विधि द्वारा भी सन्तानोत्पत्ति की जाती होती। जबकि उन दिनों योग-बल के अतिरिक्त दूसरा कोई तरीका न प्रचलित था, न ज्ञात ही था तब भला योग द्वारा सन्तानोत्पत्ति की बात को लिखने की ज़रूरत ही क्या थी? उल्लेख करने की आवश्यकता तो तभी मालूम होती है जब दूसरा या तीसरा-चौथा इत्यादि तरीका भी प्रचलित हो। इस दृष्टिकोण से जब हम देखते हैं तो हम पाते हैं कि जब मैथुनी सृष्टि का प्रचलन हो गया था, तब जो ग्रन्थ रचे गए थे उनमें यह लिखा गया कि प्राचीन काल में सृष्टि योग-बल से होती थी क्योंकि तब लोग दैवी स्वभाव के, श्रेष्ठ कर्म वाले,

धर्म-निष्ठ और ऊर्ध्वरिता थे। हम विषय का विस्तार न करते हुए, कुछेक ऐसे उदाहरण नीचे दे रहे हैं ताकि पाठकों को इस विषय में विश्वास करने में सहूलियत हो, -

पुराने ग्रन्थों में योगबल से जन्म का उल्लेख

यदि हम वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, पुराणों इत्यादि को देखें तो उनमें इस बात का उल्लेख मिलता है कि पहले मनुष्य का जन्म योग-बल द्वारा होता था और कि सतयुग और त्रेतायुग के लोग बहुत ही महान् थे। उदाहरण के तौर पर ताण्ड्य में लिखा है कि पहले मानवोत्पत्ति मन शक्ति के रेतस (जीवन-द्रव्य) से होती थी। श्वेताश्वेत उपनिषद् में कहा गया है कि जिसे योगाग्निमय शरीर प्राप्त होता है, उसे रोग, बुढ़ापा या मृत्यु नहीं सताते। अथर्ववेद में कहा गया है कि प्रथम युग (सतयुग) में मनुष्य 'अजः' अर्थात् मैथुन की विधि के बिना उत्पन्न हुए। ग्रन्थों में कहा गया है कि पहले लोग योग-बल द्वारा उत्पन्न शरीर वाले होते थे। वायु पुराण में भी 'योग महाबल' वाले शरीर का उल्लेख है। सांख्य दर्शन में योगबल द्वारा पैदा हुए शरीर को 'सांकल्पिक' एवं 'सांसिद्धिक'⁶ शरीर कहा गया है और वैशेषिक दर्शन में 'अयोनिज'⁷ शरीर कहा गया है। कई वेद-विश्वासी लोग मानते हैं कि ऋग्वेद में लिखा है कि वशिष्ठ का जन्म मानसिक बल द्वारा हुआ। प्रसिद्ध चिकित्सक अथवा आयुर्विज्ञान-वेत्ता 'धन्वन्तरि' का जन्म वायु-पुराण⁸ तथा हरिवंश में भी 'तपस्या

1. मनसोरेतः प्रथमं यदासीत् (ताण्ड्य 10/129/4)

2. न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः

प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरं (श्वेताश्वेत) 2/12

3. यदजः प्रथमं संबभूव सहतत् स्वराज्यमिषाय (अथर्व 20/73)

4. ये च योगाशरीरिणः 8/26

5. उत्सृज्य देहजातानि महायोगबलेन च (वायु पुराण 65/112 तथा 71/61/63)

6. सांख्य दर्शन में 'सांकल्पिक' अथवा 'सांसिद्धिक शरीर' कहा गया है (सांख्य 5/112)

7. वैशेषिक सूत्र, 4/6

8. उत्तोसि मैत्रावरुणा वशिष्ठ उर्वरया ब्रह्मन् मनसो-अधिजातः (ऋग्वेद अ 5, ओ 2, व 24)

9. पुत्रकामस्तपे नृपो दीर्घतपास्तपा। तस्य गेहे समुत्पन्नो देवोधन्वन्तरिस्तदा।

काशिसजो महाराजः सर्वं रोगं प्रणाशकः (वायु-ओ 92)

द्वारा' ही बतलाया गया है।¹⁰ इस प्रकार और भी कई उदाहरण दिये जा सकते हैं।

सतयुग तथा त्रेतायुग की पवित्र आत्माएँ

सतयुग और त्रेतायुग के लोगों में यह शक्ति थी क्योंकि वे धर्मनिष्ठ एवं स्वरूपनिष्ठ थे। तब न कोई गुरु थे न शिष्य बल्कि लोग धर्म को प्रत्यक्ष अथवा साक्षात् की न्यायीं स्वतः स्वभाव ही से जानते थे।¹¹ आप ही सोचिए कि तब भला वे कभी 'काम' विकार में प्रवृत्त होते होंगे? शतपथ ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य के वचनों का अनुवाद करते हुए उनके शिष्य माध्यन्दिन ने लिखा है कि याज्ञवल्क्य ऋषि स्वयं तो महातेजस्वी थे ही, परन्तु याज्ञवल्क्य ने कहा है कि उनसे पूर्व के ऋषि उनसे भी अधिक तेजस्वी थे।¹² पराशरकृत ज्योतिष संहिता में भी लिखा है कि पूर्वकाल में लोग अपरिमित शक्ति, प्रभा, धर्म-बल, सत्व और प्रभाव वाले होते थे।¹³ ऋग्वेद में भी यही कहा गया है कि सतयुग और त्रेता के सभी मनुष्य दैवी स्वभाव के थे और उनकी संकल्प भावना ही मातृ स्थानीया थी।¹⁴ चरक प्रतिसंस्कृता संहिता में भी लिखा है कि आदिकाल में अति ओज, अति बल, अति प्रभाव वाले, दैवी प्रभाव के लोग थे।¹⁵

इस प्रकार स्पष्ट है कि विभिन्न शब्दों में प्रायः सभी पुराने ग्रंथों में यह उल्लेख मिलता है कि सतयुग और त्रेतायुग के लोग अधिक तेज और ओज वाले थे और ऊर्ध्वरिता थे, इसलिए उनकी काया निरोग थी और वे मनोबल अथवा योगबल-रेतस द्वारा ही प्रजा-वृद्धि करते थे क्योंकि वे इसके योग्य थे।

10. हरिवंश 1/29/22-27

11. साक्षात्कृत्यं ऋषयो बभूवुः न असाक्षात्कृत धर्मेभ्य उपदेशो न मन्त्रानः सम्पादुः (निरुक्त 1/20/2)

12. तं ह स्मैतं पूर्वं उपर्यन्तिब्रिमहाव्रताने तेजस्विन आसुः सत्यवादिनाः संशितव्रताः (22/1/4/23)

13. तमुवाच भगवान् पराशरः पुरा खलु अपरिमित शक्ति प्रभा-प्रभाव - वीर्यायुरारोग्य सुखैश्वर्य-धर्म-सत्व-शुद्ध-तेजसः पुरुषः बभूव। (वृहत् संहिता 1/1 पर उत्पल टीका)

14. सुजातसोजनुषा पृथ्वीमातरो दिवोमर्त्या आ नो अच्छा जिगातन (ऋग्वेद 5/59/6)

15. आदिकाले आदितिसुतसमौजसो अतिबलविपुलप्रभावाः प्रत्यक्षदेवदेवर्षि धर्म यज्ञ विधिबिधानाः शैलन्द्रसारसहत शरीराः प्रसन्नवर्णेन्द्रिया-गुरुषा वभूवुरमितायुषः (विमान स्थान, अ० 3)

उन्होंने पूर्वकाल में ज्ञान एवं तप से स्वयं को शक्ति से युक्त किया हुआ था। परन्तु द्वापर और कलियुग में मनुष्यों में यह शक्ति नहीं रही।¹⁶ अनेकानेक ग्रन्थों में लिखा है कि धीरे-धीरे मनुष्य का तेज, ओज, वर्चस्व, आत्म-बल आदि कम होता गया, इसलिए स्वाभाविक है कि द्वापर और कलियुग में सन्तानोत्पत्ति योगबल की बजाय भोग-बल अर्थात् वासना-भोग से होने लगी। उदाहरण के तौर पर महाभारत में भी लिखा है कि युग-युग में मनुष्यों के तेज, बल, बुद्धि, वीर्य, आयु इत्यादि का हास ही होता आया है।¹⁷ आपस्तम्ब धर्म सूत्र में भी कहा गया है कि उत्तर काल में ऋषि उत्पन्न नहीं होते।¹⁸ जनश्रुति के अनुसार भी सत्ययुग के लोग 'देवी-देवता' थे; वे सत्यवादी, धर्मनिष्ठ, सतो-प्रधान और हंस-वर्ण के थे। सभी धर्म-परायण लोग कलियुग को निकृष्ट मानते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण ग्रंथ में सत्ययुग तथा अन्य युगों का अन्तर एक सुन्दर उपमा द्वारा बताया है। उसमें लिखा है कि कलियुग ऐसा है जैसे कि कोई व्यक्ति अचेत अवस्था में खर्राटे लगाता है। परन्तु जब वह जगकर जम्भाई लेता हुआ करवटें बदलता है, तब वह द्वापर युग का चित्र पेश करता है। जब वह आलस्य और निद्रा को त्याग कर खड़ा हो जाता है तो त्रेतायुग की स्थिति का सूचक होता है, परन्तु जब वह स्वरूपस्थित होकर कर्तव्य-परायण होता है तो सत्ययुग की स्थिति का बोधक होता है।¹⁹ इन सभी कथनों से स्पष्ट होता है कि प्रायः सभी मुख्य प्राचीन ग्रन्थ इस बात को मानते हैं कि सत्ययुग और त्रेतायुग में तो प्रजा-वृद्धि योग-बल द्वारा ही होती है परन्तु उत्तर काल में लोगों में योगबल, मनोबल अथवा स्व-स्थिति बल कम हो जाने से और उनके ऊर्ध्वरता न बने रहने से संतानोत्पत्ति काम विकार द्वारा होने लगी।

16. तपोज्ञानसमायुक्ताः कृते त्रेतायुगे नराः द्वापरे च कलौ नृणां शक्तिः हानिर्विनिर्मिता।

(बृहस्पति-अपराक टीका से उद्धृत)

17. आयुर्वीर्यमयो बुद्धिर्बलं तेजश्च पाण्डव।

मनुष्याणामनुयुगं हासतीति निबोध मे॥ (आरण्यक पर्व 188/13)

18. तस्मादृषयोऽवरेषु न जायन्ते नियमातिक्रमात्। (आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1/2/5-4)

19. कलिं शयानो भवति उज्जीहानस्तु द्वापरः

उत्तिष्ठन्नेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् ॥ (ऐतरेय 7/25)

जन-श्रुति, परम्परा और धार्मिक विश्वासों द्वारा इसका अनुमोदन

भारत की प्राचीन धर्म-परम्परा में जिस-किसी को भी पवित्र या महान माना जाता है, उसका जन्म विकार के द्वारा न मानकर अन्य ही किसी विधि द्वारा माना जाता है। उदाहरण के तौर पर सीता का जन्म पृथ्वी से, राम का जन्म कौशल्या द्वारा उस फल का सेवन करने से जो ऋषियों ने दशरथ को दिया था, हनुमान को 'पवन सुत' माना जाता है और श्री कृष्ण का जन्म विष्णु के साकार होने से माना जाता है। श्री लक्ष्मी और नारायण के जन्म की तो बात ही नहीं की जाती। गोया यहाँ यह मूलभूत धार्मिक मान्यता है कि पवित्रात्मा का पवित्र अथवा सतोप्रधान काया में जन्म 'काम' विकार द्वारा नहीं होता। सामान्य विवेक भी इस बात की पुष्टि करता है, क्योंकि मन्दिरों में अपवित्र अर्थात् विकारी व्यक्ति की प्रतिमा को तो स्थापित करने का प्रयत्न ही नहीं उठता।

तो स्पष्ट है कि धार्मिक विश्वास की परम्परा तथा जन-श्रुति भी यही कहती है कि सत्ययुग और त्रेतायुग में सन्तानोत्पत्ति योगबल द्वारा ही होती थी। चूँकि इसका स्पष्ट ज्ञान लोगों में नहीं रहा, इसलिए वे पुत्रेष्टी यज्ञ के अन्त में प्रसाद के रूप में दिये गये फल द्वारा, मंत्र द्वारा या अन्य किसी रीति द्वारा सन्तानोत्पत्ति का उल्लेख करते रहे। हमने बचपन में स्वयं भी पुरानी पीढ़ी के लोगों द्वारा यह कहा जाता हुआ सुना है कि सत्ययुग में सन्तानोत्पत्ति हँस की तरह, त्रेता में मोर की तरह, द्वापर में बैल या घोड़े की तरह और कलियुग में श्वान (कुत्ते) की तरह होती है। इसका यह भाव नहीं है कि जैसे ये जीव संयोग करते हैं, उसी-उसी तरह क्रमानुसार हर युग में मानव जाति में भी होता था, बल्कि इसका भाव यह है कि प्रारम्भ में नर-नारी के सम्बन्ध में पवित्रता थी। योग की एक उत्तम स्थिति को शास्त्रों में 'हँस' या 'परमहँस' की संज्ञा दी गयी है। अतः जन-श्रुति का भाव यही है कि पहले योग-बल द्वारा ही सन्तति होती थी।

योग शक्ति की महिमा

पुराने ग्रन्थों में तो योग शक्ति की बहुत ही महिमा है। महाभारत,²⁰ वायु

पुराण,²¹ चरक संहिता,²² योग वासिष्ठ, पतंजलिकृत योग सूत्र, देवल के 'धर्मशास्त्र' इत्यादि में इसकी बहुत ही महिमा लिखी है। पतंजलि के योग दर्शन में इसकी अणिमा, महिमा, लघिमा इत्यादि अष्ट सिद्धियाँ बताई हैं।²³ इनमें बताया गया है कि योग द्वारा मनुष्य न केवल शरीर को छोटा, बड़ा, हल्का या भारी कर सकता है बल्कि उसके लिए कुछ भी अप्राप्त नहीं रहता। योग की कर्तुम्, अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम् शक्तियाँ हैं अर्थात् असम्भव को सम्भव और सम्भव को असम्भव कर लिया जा सकता है। हरिवंशपुराण में लिखा है कि योगज शरीर वाले मनुष्य पर काल प्रभाव नहीं डालता।²⁴ देवल ऋषि ने भी कहा है कि जब मनुष्य योग द्वारा अपने मन को वश में कर लेता है तो सब-कुछ उसके वश में हो जाता है। उससे उसकी अपरिमित आयु होती है और जन्म-मरण भी उसके अपने ही वश हो जाता है।²⁵ मनु ने तो यहाँ तक कह दिया है कि जिसका पार न मिल सकता हो, जो वस्तु अप्राप्त हो, जिस कार्य को किया न जा सकता हो, योग तपस्या के प्रभाव से वह भी सिद्ध हो सकता है क्योंकि योग बल अथवा तपोबल से बढ़कर अन्य कोई शक्ति नहीं है।²⁶ जब ऐसी बात है, जब योग बल में ऐसी शक्ति है तो उस द्वारा प्रजोत्पत्ति होना असम्भव क्यों माना जाय?

क्या आज भी योग-बल द्वारा सिद्धि हो सकती है?

कई लोग कहते हैं कि यदि पहले कभी योग बल द्वारा प्रजोत्पत्ति होती थी तो अब भी होनी चाहिए। यदि आज भी कोई व्यक्ति सच्चे योग का अभ्यास करता है तो वह ऐसा करके दिखाये; तब हम इस सिद्धान्त को मान लेंगे।

21. वायु पुराण 66/151-152

22. चरक संहिता, शरीर स्थान 1/140

23. अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा प्राप्तिः प्राकाम्यमोशित्वं विशित्वं चाष्टसिद्धयः ॥

24. यस्माच्च वरदाः सतः परोप्यह्वराः स्मृताः।

तस्मान्न कालो न वयः प्रभाभमृषि भावेन। (हरिवंश 1/7/57)

25. आत्मवश्यता वशित्वम् वशित्वेनापरिमितायुः वश्य जन्मा च भवति
(कृत्य कल्पतरु, मोक्ष काण्ड में से उद्धृत)

26. युहुस्तरं यदुर्गयंच्य दुष्करम्।

सर्वतु तपसा साध्यं, तपोहि दुर्शतिक्रमम् (मनु स्मृति 11/238)

ऐसा प्रव्र करने वाले व्यक्तियों को यह मालूम होना चाहिए कि इसके लिए तो 'योगाभ्यास' की नहीं बल्कि 'योग-सिद्धि' की आवश्यकता है। जब मनुष्य सच्चे योग का अभ्यास करते-करते सिद्धि की सर्वोत्कृष्ट अवस्था को पहुँच जाता है, तब उसका शरीरान्त हो जाता है क्योंकि उसे महान, पवित्र अथवा पूज्य-स्थिति वाली आत्मा के लिए यह कामोत्पन्न शरीर योग्य नहीं होता।

दूसरी बात यह है कि वर्तमान काल में नर-नारी के जो शरीर हैं, वे तमोगुणी तत्वों के बने हुए हैं। वे माँस, मदिरा, प्याज, लहसुन से तथा अशुद्ध रीति से अर्जित धन द्वारा जुटाये भोजन से, काम-क्रोध आदि विकारों से आक्रान्त मन वाले नर-नारी द्वारा पकाये गये अन्न इत्यादि के द्वारा निर्मित हैं। प्रारम्भ ही से रोग; शोक, चिन्ता, असन्तोष, ईर्ष्या इत्यादि द्वारा इस शरीर की कई ग्रन्थियाँ प्रभावित और स्वावित होती आई हैं। इस शरीर में प्राप्त नेत्रों द्वारा मनुष्य पापमय दृश्य देखता रहा है, कानों द्वारा न सुनने योग्य बातों को सुनता रहा है। उसकी प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय उत्तेजना से आक्रान्त होती रही है। उसका मन विकारों के अधीन होकर व्यर्थ संकल्पों द्वारा मनोबल तथा शारीरिक बल का क्षय करता रहा है। संक्षेप में यों कहें कि आज विश्व का समस्त वातावरण ही दूषित है, सारी प्रकृति ही में प्रदूषण है और कोई भी मनुष्य पूर्णतः स्वस्थ और सात्त्विक नहीं है। अतः आज के विश्व में योगज सृष्टि नहीं हो सकती।

आज ऐसा न हो सकने का अर्थ यह नहीं कि इस सिद्धान्त में ही अविश्वास किया जाय। ऐसे तो विकासवादी अथवा वैज्ञानिक भी कहते हैं कि पहले उथले जल में, जैसे सूर्य की किरणों के प्रभाव से निर्जीव तत्वों से सजीव तत्व (Protoplasm) बना था, वह आज नहीं हो सकता क्योंकि उन दिनों जैसा वातावरण था, आज वैसा नहीं है। विकासवादी भी किसी निर्जीव तत्व से सजीव तत्व पैदा करके भी नहीं दिखा सकते, न ही वे अमीबा (Amoeba) का प्रयोगशाला में विकास करके वानर पैदा करके दिखा सकते, न ही वानर से मनुष्य ही पैदा कर सकते हैं। तब भला उनके सिद्धान्त को क्यों माना जाता है?

यह तो सन्देह-रहित सत्य है कि यदि अब नर-नारी योग का अभ्यास करेंगे और ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे तो काम-भोग वाली इस वर्तमान सृष्टि का

पटाक्षेप होगा क्योंकि अब, जबकि काम-क्रोधादि विकार अपनी चरम सीमा को प्राप्त हो चुके हैं, तब इस कलियुग का अन्त निश्चय ही है। आने वाले सतयुग की तैयारी करने के लिए ही अब स्वयं परमपिता परमात्मा शिव, प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा यह संदेश और आदेश दे रहे हैं कि अब 'पवित्र और योगी बनो' क्योंकि मनुष्य के काले कर्मों के परिणामस्वरूप अब शीघ्र ही विश्व में एक महान आध्यात्मिक परिवर्तन तथा वैज्ञानिक महाविस्फोट द्वारा सतयुग का सूत्रपात होने जा रहा है।



योग-बल द्वारा प्रजोत्पत्ति असम्भव नहीं है

सामान्य मनुष्य प्रकृति की शक्तियों के प्रभाव को तो शीघ्र ही मान लेते हैं; वे विज्ञान के चमत्कार से भी प्रभावित हैं, परन्तु योग की शक्ति से अपरिचित हैं। उन्हें मालूम नहीं है कि भौतिक शक्तियों से अभौतिक शक्तियाँ अधिक प्रबल तथा सूक्ष्म हैं। आखिर वैज्ञानिक भी जो महत्त्वपूर्ण कार्य करता है, वे भी होते तो मन ही की शक्ति द्वारा सम्पन्न हैं? मान लो कि कुछ वैज्ञानिक आण्विक शक्ति (Atomic Power) द्वारा बहुत बड़े रचनात्मक अथवा विध्वंसात्मक कार्य करते हैं, तो ये क्या मानसिक शक्तियों के प्रयोग के बिना थोड़े ही हो जाते हैं? फिर, मन को भी निर्विकार बनाने वाली, उसे अपने वश में करके उस महान शक्ति से कार्य लेने वाली आध्यात्मिक शक्ति का पूर्ण विकास हो जाय तो मनुष्य क्या नहीं कर सकता? साइन्स (Science) के आविष्कार मन के विचार ही ने तो किये हैं; तब क्या विचारों को भी एक बिन्दु में पकड़ रखने वाली शान्ति रूपी शक्ति (Silence Power) अथवा आध्यात्मिक शक्ति (Spiritual Power) क्या उस आविष्कारक शक्ति से भी अधिक महान न हुई?

आज रूस में मानसिक शक्ति के प्रकृति पर प्रभाव को जानने के लिये जो निरीक्षण अथवा प्रयोग किये गये हैं, उनसे भी स्पष्ट है कि मनोबल – शारीरिक अथवा भौतिक शक्तियों से अधिक या वैसे ही काम कर सकता है। उदाहरण के तौर पर ऐसे निरीक्षण किये गये हैं जिनमें कि अभ्यास द्वारा विकसित मनोबल वाले व्यक्तियों ने संकल्प से घड़ी की चलती सुइयों को रोका है या रुकी सुइयों को गति दी है। ऐसे भी बहुत-से वृत्तान्तों का संग्रह किया गया है कि संकल्प शक्ति द्वारा कोई सन्देश बहुत दूर बैठे व्यक्ति को संप्रेषित किया गया जबकि विज्ञान काफ़ी व्यय ही से यह कार्य कर सकता है। परन्तु चूँकि आज मनोबल के इन कार्यों से जन-सामान्य अनभिज्ञ है, इसलिये उन्हें शीघ्र अथवा सहज ही योग शक्ति के महत्त्व पर विश्वास नहीं होता।

किन्तु हम अध्यात्म की हरेक बात को विज्ञान की दृष्टि से क्यों परखें? विज्ञान तो प्रकृति की रचना और कार्यों के मूलभूत नियमों की प्रयोगात्मक

रीति से व्याख्या करता है; परन्तु वह अभी सभी रहस्यों की व्याख्या कहाँ कर पाया है? विज्ञान द्वारा नित्य नये रहस्योद्घाटन होते रहना स्वयं में एक प्रमाण है कि अभी तो विज्ञान में 'ज्ञात' कम है, अज्ञात अधिक। अतः विज्ञान द्वारा वर्तमान समय में प्रचलित सन्तानोत्पत्ति के (Reproduction) कार्य-कलापों की जैविक, रासायनिक, शारीरिक-रचना-सम्बन्धी व्याख्या को जानकर हम यही क्यों मान लें कि इसके सिवा दूसरा कोई तरीका या विकल्प (Alternative) न था, न होगा। विज्ञान ने तो स्वयं भी परिवर्तन, हेरफेर, या विकल्प ढूँढ़ निकाले हैं। वंशानुक्रम (Hereditary), वातावरण (Environment) तथा जैनेटिक (Genetic) रहस्यों को जानकर उसने स्वयं कई नये बीजों का निर्माण किया है अथवा बीजों को बोने की नयी प्रणालियाँ मालूम की हैं। अतः विज्ञान योग-बल द्वारा सन्तानोत्पत्ति के सिद्धान्त को 'अमान्य' कैसे घोषित कर सकता है जबकि इसको जानने की बात तो एक ओर रही, उसका अभी ध्यान इस ओर नहीं गया। हठयोग द्वारा होने वाले शारीरिक लाभों को पहले विज्ञान भला जानता या मानता थोड़े ही था? आधुनिक आयुर्विज्ञान तो चिकित्सा द्वारा ही रोगों का इलाज करता था; हठयोग की क्रियाओं द्वारा, बिना चिकित्सा के भी रोग-निदान सम्भव है — यह उसे कहाँ मालूम था? फिर, मानसिक योग (Meditation) द्वारा भी बहुत-से मानसिक तथा शारीरिक कष्टों का निवारण होता है — इससे भी पाश्चात्य आयुर्विज्ञान अनभिज्ञ था। अभी-अभी कुछ ही वर्ष तो हुए हैं कि उसने इन लाभों का अनुमोदन किया है। विज्ञान समर्थन न भी करता तो भी उससे लाभ तो होते ही थे। ठीक इसी प्रकार, 'परमपिता परमात्मा द्वारा सिखाये गये 'राजयोग' से जो लाभ होते हैं, उनके बारे में तो अभी वैज्ञानिकों ने गम्भीरता से सोचा भी नहीं है।' कई वर्ष हो गये हैं, मैंने एक समाचार पत्र में एक विचित्र समाचार पढ़ा था। सन्तानोत्पत्ति के बारे में कुछ ऐसे रहस्य डाक्टरों के सामने आये थे जिनकी व्याख्या डाक्टर लोग तब नहीं कर सके थे। मैं नीचे उस सारे समाचार को ज्यों का त्यों प्रकाशित कर रहा हूँ —

“ये बिना बाप के बच्चे”

“जब जर्मनी का रूस से युद्ध छिड़ रहा था और जर्मन सिपाही दिन-प्रतिदिन युद्ध में खेत हो रहे थे तो वहाँ डाक्टरों ने एक ऐसे इंजेक्शन का निर्माण किया

जिसके लगाने से कोई भी स्त्री गर्भवती हो सकती थी। इस तरह बहुत स्त्रियाँ इन्जेक्शन के द्वारा गर्भवती हुईं और उनसे स्वस्थ सन्तानें उत्पन्न हुईं।

लेकिन आज हम आपसे ब्रिटेन की एक कुमारी का वर्णन कर रहे हैं, जिससे बगैर किसी पुरुष के संभोग के एक स्वस्थ बच्चा उत्पन्न हुआ। अस्पताल के डाक्टर ने जब उस बच्चे के पिता का नाम पूछा तो वह कुमारी कहने लगी मेरा विवाह नहीं हुआ है।

इस अद्भुत प्रश्न से डाक्टर आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने उसकी पूरी डाक्टरी परीक्षा ली। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि एक कुमारी स्वयमेव गर्भ धारण कर सकती है।

ब्रिटेन में यह बात एक चर्चा का विषय बनी हुई थी कि उसी समय एक गर्भवती स्त्री अस्पताल में दाखिल हुई। उसके पुत्री उत्पन्न हुई। जब उसके पिता का नाम पूछा गया तो वह कहने लगी कि मैं अविवाहिता हूँ। उसकी भी डाक्टरी परीक्षा की गई और वह भी कुमारी ही प्रमाणित हुई।

सबसे अधिक आश्चर्य तो उस समय हुआ जब एक 40 वर्षीया स्त्री अपने पुत्री को, जो गर्भवती थी, अस्पताल में लेकर आई। उसने बताया कि मेरी यह पुत्री बगैर किसी पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुई है और यह लड़की भी अभी अविवाहिता है और गर्भवती है।

उस लड़की ने बताया कि आज से 6 माह पूर्व उसे चक्कर आते थे। फिर जो मचलाने लगा। एक लेडी डाक्टर को दिखाया तो उन्होंने मुझे गर्भवती बताया। डाक्टरों ने उसकी परीक्षा की और उसे भी वैसी ही गर्भवती घोषित किया।

यह नई और विचित्र बात बड़े-बड़े डाक्टरों के लिए एक दिलचस्प घटना बन गई। उन्होंने विशेषज्ञों की एक समिति बनाई और उपरोक्त कुमारियों की पुनः परीक्षा की गई।

सभी डाक्टर इसी निर्णय पर पहुँचे कि 'यह सिद्धान्त पूर्णतया सही है कि कुमारी लड़की बगैर किसी पुरुष के सम्पर्क में आए बच्चा उत्पन्न कर सकती है।

लेकिन यह समस्या अभी सुलझ नहीं सकी है कि कौमार्यावस्था में गर्भाधान की सम्भावनाएं किस सीमा तक हो सकती हैं? इस सम्बन्ध में ब्रिटेन के एक पत्र

में एक डाक्टर ने टिप्पणी की है।

उन्होंने बताया कि इन्सान तथा पशुओं पर ऐसी सम्भावनाओं के बारे में अध्ययन कार्य उस समय प्रारम्भ किया गया, जब मछली की एक छोटी किस्म को नर से सर्वथा अलग रखने के बावजूद अंडे देते देखा गया।

इसके पश्चात् डा० हैसेन ने गर्भ खून वाले जानवरों से अधिक प्रमाण इकट्ठे किये हैं। खरगोश पर परीक्षणों के बाद यह सिद्ध हो गया कि मादा, बगैर नर के, गर्भ धारण कर सकती है और पूरी अवधि के पश्चात् स्वस्थ बच्चा पैदा हो सकता है।

लेनेण्ट ने लिखा है कि इस सिलसिले में हमें अपने विचार बदलने होंगे। हो सकता है कि प्राचीन इतिहासों में जो ऐसे उल्लेख मिले हों, वे सही हों!

कुमारियों को बच्चा पैदा करने की यह बात ब्रिटेन में ही नहीं है, अमेरिका में भी इस प्रकार के बच्चे पैदा हुए हैं। वे पूर्णतया स्वस्थ होते हैं। उनका यहाँ तक विश्वास है कि बिना बाप के बच्चे अन्य बच्चों की अपेक्षा कहीं स्वस्थ और बलिष्ठ होते हैं।

ऊपर हमने जो समाचार प्रकाशित किया है, उसके बाद से लेकर अब तक के समय में हो सकता है कि डाक्टरों या शरीर-शास्त्रियों ने इसकी व्याख्या कर दी हो। वर्तमान समय प्रचलित विधि का यह अपवाद (exceptional cases) तो है ही। फिर ये 'योग बल' द्वारा भी उत्पत्ति नहीं है। परन्तु यहाँ हमने इसे इस लिए उद्धृत किया है कि ज़रूरी नहीं कि वैज्ञानिक हरेक क्रिया की युक्ति-युक्त या प्रयोगात्मक रीति से व्याख्या दे सकें। दूसरी बात यह है कि वैज्ञानिक भी मानते हैं कि शायद मानवोत्पत्ति की दूसरी भी कोई विधि कभी प्रचलित रही हो।

इस संसार में सन्तानोत्पत्ति की अनेकानेक विधियाँ

जीव-विज्ञान (Biology) के विद्यार्थी अच्छी तरह जानते हैं कि इस विशाल जगत् में सन्तानोत्पत्ति के आज भी विभिन्न प्रकार प्रचलित हैं। आज से कुछ वर्ष या कुछ शताब्दियाँ पहले वैज्ञानिकों को इन सभी विभिन्न विधियों का पता नहीं था।

इसी प्रकार, हो सकता है कि इस जीव-जगत् में ऐसी और भी पद्धतियाँ प्रचलित हों जिनका उन्हें अभी तक पता न लगा हो। उदाहरण के तौर पर वैज्ञानिकों को मालूम हुआ है कि मछली, साँप, बगुले, स्नेल (Snail) आरगोनट, मधुमक्खी इत्यादि में अलग-अलग ही प्रकार प्रचलित है। अन्य इनके अतिरिक्त भी तो करोड़ों जीव हैं; उन सभी की विधियों का वैज्ञानिकों को क्या पता? यदि यह बात ध्यान में रखी जाय कि वैज्ञानिकों को आदि काल से चली आई सभी प्राणियों की सभी प्रणालियों का पता नहीं है और कि जो प्रणाली मनुष्य जाति में प्रचलित है, वही एक विधि समस्त जगत् में प्रचलित नहीं थी तो मनुष्य को यह बात मानने में इन्कार नहीं होगा कि सतयुग में योगबल द्वारा भी प्रजोत्पत्ति होती होगी।



क्या यह सृष्टि शुरू से 'काम' अथवा मैथुन द्वारा ही चली आई है और ऐसे ही चलेगी?

कितने ही लोगों से जब कामजीत और निर्विकार बनने को कहा जाता है तो वे कहते हैं कि 'काम ही से तो सृष्टि चल रही है और चलती आई है; अतः 'काम' का विरोध करना तो सृष्टि का मूलोच्छेदन करना है।' वे कहते हैं कि— "काम ही से तो सृष्टि की उत्पत्ति हुई है और अब तक इसका संवर्द्धन होता आया है; तब यदि हम 'कामजीत' बन जायें तो सृष्टि कैसे चलेगी?"

विकासवाद के अनुयाइयों से हमारा प्रश्न?

जो लोग विकासवाद के अनुयायी हैं अथवा सृष्टि-उत्पत्ति की आधुनिक वैज्ञानिक व्याख्या में आस्था रखते हैं और जो उपरोक्त प्रकार से प्रश्न करते हैं, उनसे हम यह पूछना चाहते हैं कि — आप भला यह कैसे कहते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति 'काम' विकार से हुई और उसी द्वारा ही इसका संवर्द्धन हुआ तथा यह चलती आयी? आपका सिद्धान्त तो यह कहता है कि धीरे-धीरे जब पृथ्वी ठण्डी होती गयी तो आक्सीजन और हाइड्रोजन के मिलने से जल-बाष्प बन गयी और साथ ही साथ आक्सीजन और कार्बन के मिलने से कार्बनडाइआक्साइड भी बन गयी और बाद में वर्षा होने पर गढ़ों और खोखले स्थानों में पानी भर जाने से झील और समुद्र बन गये और उनके उथले जल में सूर्य की किरणों के प्रभाव से, हवा के कुछ फास्फोरस, नाइट्रोजन तथा जल में घुले हुए कुछ लवणों और कार्बोनिक् मिश्रण के संयोग-वियोग से एक दिन जीवन-पदार्थ (Protoplasm) बन गया। गोया आप तो प्राथमिक जीव को उथले जल में सूर्य की किरणों के प्रभाव से पैदा हुआ मानते हैं। वह जीव, जिसे आप 'अमीबा' कहते हैं, 'काम' विकार से तो उत्पन्न हुआ ही नहीं। उससे जो अन्य एक-कोष्ठीय (Uni-cellular) जीव उत्पन्न हुए वे भी काम द्वारा उत्पन्न नहीं हुए बल्कि आपके सिद्धान्त के अनुसार तो कोष्ठ-विभाजन (Division of cell) ही से उनका संवर्द्धन हुआ और आज तक भी ऐसा ही होता है। तब आप कैसे कहते हैं कि 'काम' भोग के द्वारा ही तो सृष्टि

आरम्भ से चलती आई है? विकासवाद के बाप', दादा, परदादा और नकड़दादा तो यही कहते आये हैं कि लाखों वर्षों तक तो एक कोष्ठीय ही जीव थे जो कि 'काम-भोग' से नहीं बल्कि कोष्ठ-विभाजन ही से वृद्धि को प्राप्त होते रहे। अतः आप तो यह कह ही नहीं सकते कि "यह सृष्टि ऐसे ही चली आयी है।"

मुसलमान धर्म के अनुयाइयों से हमारा निवेदन

मुसलमानों के कुरान शरीफ में तो लिखा है कि खुदा ने सृष्टि रचने के लिए 'कुन' शब्द कहा और यह सृष्टि बन गयी। कुरान शरीफ के इन शब्दों पर भी विचार कीजिए - "उसकी आज्ञा यही है कि जब वह किसी वस्तु का संकल्प करता है, तो उससे कहता है, 'हो जाओ' सो वह हो जाती है। तो पावन है वह जिसके हाथ में सर्व वस्तु की अधिसत्ता है। उसकी ओर तुम सब को लौट कर जाना है।"²

अब आप देख लीजिये कि कुरान शरीफ में यह तो कहीं लिखा ही नहीं है कि अल्लाह ने 'काम' विकार द्वारा सृष्टि रची। सभी जानते हैं कि कट्टर कुरानी लोग तो यहूदियों और ईसाइयों की तरह सृष्टि को छः दिन में पैदा हुआ मानते हैं और आदम को मुट्ठी-भर मिट्टी से बनाया गया मानते हैं। तब भला ये लोग कैसे कह सकते हैं कि 'काम' विकार तो सृष्टि के शुरू से ही चला आया है। ऊपर के उद्धरण में आपने इस बात पर ध्यान दिया होगा कि खुदा को 'पावन' (पाक) कहा गया है। कुरान शरीफ में तो कई बार ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी गई है। कुरान के इन शब्दों पर विचार कीजिए - "हे आदम-पुत्रो! तुम्हें शैतान चरित्र-भ्रष्ट करने के लिए न बहकाये जैसा कि उसने तुम्हारे (सर्वप्रथम) माँ-बापों को स्वर्ग से निकलवाया, उनके कपड़े उनसे उतरवाये, जिससे कि उन्हें उनके लज्जा-स्थान दिखाई दें। शैतान और उसका परिवार तुम्हें इस तरह देखते हैं कि तुम उन्हें नहीं देख सकते। निस्सन्देह हमने शैतान को उन लोगों का मित्र बना दिया, जो श्रद्धा

1. इस सिद्धान्त के अधिष्ठाता, स्थापक अथवा व्याख्याता - जिनमे लिनैस, वफन, एरैस्मस, डार्विन, लामार्क, चार्ल्स डार्विन, हक्सले, वालेस आदि के नाम मुख्य हैं। परन्तु यह सिद्धान्त आज चार्ल्स डार्विन के नाम से प्रसिद्ध है।
2. कुरान 36.77-83

नहीं रखते।’

और वे लोग जब कोई बुरा काम करते हैं, तो कहते हैं कि ‘अपने बाप-दादाओं को इसी पद्धति पर चलते पाया है, और ईश्वर ने ही हमें ऐसा करने की आज्ञा दी है।’ निस्सन्देह, ईश्वर बुरे काम की आज्ञा नहीं दिया करता। क्या तुम ईश्वर के विषय में ऐसी बात कहते हो, जिसका तुम्हें ज्ञान नहीं?’

कुरान से उद्धृत उपरोक्त शब्दों से तो यही सिद्ध होता है कि ईश्वर ने नग्न न होने की आज्ञा दी थी परन्तु जब मनुष्य ने इन लज्जा-स्थानों का भोग किया तब वह स्वर्ग से – सम्पूर्ण सुख और शान्ति के वातावरण से – निकाल दिया गया। इसमें यह साफ कहा गया है कि मनुष्य के आदि माता-पिता ने प्रारम्भ में काम-भोग नहीं किया था परन्तु आज शैतान द्वारा बहकाये गये लोग जब कोई बुरा काम करते हैं तो कहते हैं कि ‘हमारे बाप-दादा भी इसी पद्धति से चलते आये हैं और ईश्वर ने भी हमें ऐसी ही आज्ञा दी है।’ अब इन शब्दों को पढ़ने के बाद तो किसी भी मुसलमान को यह नहीं कहना चाहिए कि सृष्टि शुरू ही से (काम-विकार युक्त) चली आयी है और ईश्वर ने हमें ऐसी ही आज्ञा दी है। कुरान में तो ‘काम’ को ‘वासना’ कहा गया है और मनुष्य को कहा गया है कि वह इसे छोड़कर ईश्वर का श्रेष्ठ आश्रय ले। कुरान में तो ‘काम’ रूपी विकार की कुप्रेरणा देने वाले लोगों से बचने के लिए प्रार्थना है। अतः जो कुरान में पूरा ईमान लाता है, उसे तो चाहिए कि वह इस विकार से बचकर रहे; वह यह न कहे कि ईश्वर ने ही काम-भोग के लिए आज्ञा दी हुई है या यह कि यह तो सृष्टि के शुरू ही से चली आयी है।

3. कुरान : 7.26-28

4. वासनाओं को आकृष्ट करने वाले विषयों के प्रेम को आसक्त किया है। जैसे स्त्रियाँ, पुत्र, स्वर्ण, रजत, राशि, अंकित अश्व, पशु तथा कृषि – यह ऐहिक जीवन का मूल धन है, पर ईश्वर के पास ही अच्छा आश्रय है। कुरान 3.14

5. मैं आश्रय मांगता हूँ, मानवों के प्रभु का। मानवों के सत्ताधीश का। मानवों के भजनीय का, जिससे कि बचूँ कुप्रेरणा करने वाले और पीछे हटाने वालों की दुष्टता से जो मानव के हृदय में विकार डालता है – वह जिनों में से हो या मनुष्यों में से। कुरान 114.1-6

ईसाई धर्म के अनुयायियों से निवेदन

अब ईसाई धर्म की पुस्तक बाइबल को ले लीजिए। ईसाइयों की पुरानी पुस्तक (Old Testament), जिसे 'तौरेत' भी कहा जाता है और जिसमें ईसाइयों, यहूदियों तथा मुसलमानों का भी विश्वास है, लिखा है कि छः दिन में विश्व-रचना कर चुकने के बाद परमात्मा ने मनुष्य (आदम) को मुट्ठी-भर मिट्टी से बनाया। केवल मनुष्य ही को नहीं बल्कि अन्य प्राणियों को भी उसने धरती से बनाया। और फिर आदम को एक सहयोगी और उपयुक्त साथी देने के लिए भगवान ने पहले तो आदम को गहरी नींद की अवस्था में सुला दिया और जब आदम सो गया तब उसकी पसलियों में से एक पसली निकाल ली और उससे एक नारी पैदा की और उस नारी को वह आदम के पास ले गया और आदम ने उसे 'नारी' (woman) नाम दिया।

अब हम पूछते हैं कि इसमें यह तो कहीं नहीं लिखा कि भगवान ने काम-भोग करने की आज्ञा दी बल्कि इसी प्रसंग में आगे यही लिखा है कि सम्भोग के दण्ड के रूप में उन्हें स्वर्ग से निकाल दिया।

फिर, जो यहूदी, ईसाई और मुसलमान यह कहते हैं कि 'काम' विकार ही से तो सृष्टि चली आई है और कि यदि अब 'काम' विकार को मिटा दिया जाय तो सृष्टि कैसे चलेगी?— उनसे हम पूछते हैं कि आपकी धर्म-पुस्तकों में तो लिखा है कि खुदा ने कहा कि 'हो जा' और सृष्टि हो गयी और उसने मिट्टी का पुतला बनाकर उसमें रूह डाल दी तो मनुष्य बन गया; तो यदि आप इस प्रकार से मनुष्य के जन्म की बात मान सकते हो तब योग-बल से सृष्टि का

6. And the Lord God formed man of the dust of the ground, and breathed into his nostrils the breath of life, and man became a living soul. Genesis 2.6
7. And out of the ground, the Lord God formed every beast of the field, and every fowl of the air; and brought them unto Adam to see what he would call them. Genesis 2.19
8. And the Lord God caused a deep sleep to fall upon Adam, and he slept; and he took one of his ribs and closed up the flesh; instead thereof; And the rib which the Lord God had taken from man made he a woman, and brought her unto the man. Genesis 2.21 and 22.

संवर्द्धन क्यों नहीं मानते? बाइबल में तो नारी का जन्म आदम की केवल एक पसली ही से बताया गया है, तब इस प्रकार से जन्म का होना आप कैसे मानते हो? बाइबल के अनुसार हव्वा (Eve) तो आदम के बाद ही पैदा की गई, तब स्त्री-पुरुष के सम्भोग के बिना आदम कैसे पैदा हो गया? पुनश्च, आदम और ईव को पैदा होने में कोई नव-दस मास का समय तो लगा नहीं जैसे आजकल लगता है, तब आदम और ईव कैसे पैदा हो गए? अतः यदि आप इस प्रकार से जीव-सृष्टि की उत्पत्ति अथवा उसका संवर्द्धन मानते हैं तो फिर सृष्टि के प्रथम दो युगों में योग बल द्वारा सन्तानोत्पत्ति मानने में भी आपको कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

आर्य समाजी भाइयों-वहनों से निवेदन

आर्य समाजियों के मान्य ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा है कि सृष्टि के आदि में परमात्मा ने सभी नर-नारियों को युवा अवस्था में ही पैदा किया। उनमें न कोई बालक था, न वृद्ध। सत्यार्थ प्रकाश में लिखे प्रश्न और स्वामी दयानन्द जी द्वारा दिये गए उत्तर निम्नांकित हैं—

प्रश्न — आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्य, युवा व वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी, अथवा तीनों में?

उत्तर — युवावस्था में। क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता, तो उनके पालन के लिए दूसरे मनुष्य आवश्यक होते। और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुन सृष्टि न होती। इसलिए युवावस्था में सृष्टि की है।

सत्यार्थ प्रकाश में लिखे उपरोक्त मत को मानने वाला यदि कोई आर्य समाजी भाई कहता है कि 'काम' विकार ही से तो जीव-सृष्टि रची गयी है अथवा कि सृष्टि तो सदा ही से ऐसे चली आई है तो वह अपने मान्य ग्रन्थ का खंडन करता है। स्वयं सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि सृष्टि की आदि में केवल उन्हीं का ही जन्म होता है जिनके पूर्व-कर्म श्रेष्ठ होते हैं और इसलिए उनका जन्म स्वयं भगवान द्वारा होता है। सत्यार्थ प्रकाश में सृष्टि की आदि में नर-नारी

के जन्म को 'ऐश्वरी सृष्टि' (God-created) कहा है। इस विषय में सत्यार्थ प्रकाश में निम्नलिखित प्रश्न और उत्तर हैं—

प्रश्न - सृष्टि की आदि में एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किए थे, वा क्या था?

उत्तर - अनेक! क्योंकि जिन जीवों के कर्म ऐश्वरी सृष्टि में उत्पन्न होने के थे, उनका जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता (है)। क्योंकि 'मनुष्या ऋषयश्च ये, ततो मनुष्या अजायन्त' - यह यजुर्वेद में लिखा है। इस प्रमाण से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों-सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुए।¹⁰

स्पष्ट है कि जो इतने पवित्र थे कि उनका जन्म स्वयं ईश्वर द्वारा होना था, उन्होंने उसी जन्म में अपवित्र कर्म - वासना भोग - तो शुरू नहीं कर दिया होगा?¹¹ तब यह कहना ग़लत ही तो है कि सृष्टि में सदा 'काम' विकार द्वारा ही संवर्द्धन होता आया है।

बहुत-से लोगों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि जब आर्य समाजी भाइयों से कई विद्वानों ने यह पूछा कि सृष्टि की आदि में जो सैकड़ों और हजारों नर-नारी युवा अवस्था में पैदा हुए तो उनका जन्म कैसे हुआ, तब उसके उत्तर में आर्य समाजी भाइयों ने वेद के एक मन्त्र¹² का उदाहरण देते हुये यह बताया कि वे उद्भिज अर्थात् ज़मीन से पैदा होने वाले पौधों की तरह भूमि फोड़ कर प्रकट हुए! गोया आर्य समाजी मानते हैं कि पहले नर-नारी गण्डोलों के समान पृथ्वी के गर्भ से पैदा हुए।¹³ खैर कुछ भी हो; सत्यार्थ प्रकाश में यह तो स्पष्ट शब्दों में लिखा ही है कि सृष्टि की आदि में मानवोत्पत्ति 'अमैथुनी' थी।¹⁴ तब हम पूछते हैं कि यदि आप गण्डोलों की तरह भूमि से मनुष्यों की उत्पत्ति मान

10. अष्टम समुल्लास - इसमें जो 'मनुष्या ऋषयश्च' लिखा है वह ग़लत है। वास्तव में यजुर्वेद (31/9) में शुद्ध पाठ 'साध्याऋषयश्च' है।

11. इसको और अधिक विस्तार में हमने आगे स्पष्ट किया है।

12. आज्येष्टासः आकनिष्टास उद्भिजः, अर्थात् सृष्टि के आदि में वृक्षों की तरह ज़मीन फोड़कर नर-नारी उगे; वे न बूढ़े थे न बच्चे ही बल्कि हष्ट पुष्ट युवा थे।

13. रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित प्रामाणिक सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय संस्करण के द्वादश परिशिष्ट के पृष्ठ 1093 पर देखिए।

14. सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लास, कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 347

सकते हैं तो योग-बल द्वारा सृष्टि-संवर्धन के सिद्धान्त पर आपको क्या आपत्ति है? आर्य समाजी भाई तो प्रतिदिन भगवान से भजन-प्रार्थना करते हुए कहा करते हैं -

कामी, क्रोधी और लोभी कोई भी हम में न हो
शुद्ध होवे हमारा जीवन, छोड़ देवें मोह को।

तब क्या वे ऐसी प्रार्थना यह मान कर किया करते हैं कि ऐसा तो कभी हो ही नहीं सकता कि हम में से कोई भी कामी न रहे? यदि वे यह मान कर प्रभु से प्रार्थना करते हैं तो स्पष्ट है कि मन-वचन-कर्म को एक करके प्रार्थना नहीं की। यदि वे सच्चे मन से यह समझ कर प्रार्थना करते हैं कि कभी ऐसा भी हो सकता है कि कोई भी कामी न हो, तो हम पूछते हैं कि आर्य समाजियों का क्या विचार है, उस अवस्था में सृष्टि कैसे चलेगी?

सनातनधर्मी बहन-भाइयों से निवेदन

- मनु से इक्ष्वाकु का जन्म कैसे हुआ? -

हमारे सनातनधर्मी बहन-भाई तो अनेकानेक अद्भुत प्रकार के जन्मों को मानते हैं कि बात मत पूछिए। उदाहरण के तौर पर इक्ष्वाकु के बारे में विष्णुपुराण में लिखा है वह मनु की छोँकती हुई नाक से पैदा हुआ?¹⁵ यह वही इक्ष्वाकु हैं जिनके बारे में गीता में लिखा है कि भगवान ने सूर्य को ज्ञान दिया, सूर्य ने मनु को और मनु ने इक्ष्वाकु को।¹⁶ पुराणों में मनु के पुत्र राजा इक्ष्वाकु का काफी वर्णन है। अब देख लीजिए, ऐसा भी मानने वाले लोग हैं कि नासिका से भी मनुष्य का जन्म हो सकता है!

भुजा को मथ कर राजा पृथु का जन्म

इसी प्रकार, श्रीमद्भागवत् में राजा पृथु का वर्णन है। उसे कई पौराणिक लोग पृथ्वी पर पहला सम्राट मानते हैं। उनका भी जन्म बहुत ही विचित्र प्रकार से बताया है। पुराणों में लिखा है जब पापी राजा वेन मर गया तो ऋषियों ने उसकी जाँघ को

15. श्रुवतश्च मनोरिक्ष्वाकुधाणतः पुत्रो जज्ञे (विष्णु पुराण, अंश 4, अ 2. श्लोक 16-183)

16. श्रीमद्भगवद्गीता 4/1

मथ कर उससे 'निषाद'¹⁷ नामक पुत्र उत्पन्न किया और फिर उसकी भुजाओं को मथ कर उससे प्रसिद्ध महाराजा 'पृथु' को और 'अर्चि' को पैदा किया।¹⁸ बताइए, यह बात कैसी लगी? पहले जो हमने मनु के नाक से इक्ष्वाकु के पैदा होने का पौराणिक उल्लेख किया था, उस कथा के नायक मनु जी कम-से-कम ज़िन्दा तो थे; अब तो मृतक की टांग को मथ कर, निषाद और फिर उसकी भुजाओं को मथ कर इतने प्रतापी सम्राट 'पृथु' को पैदा कर दिया गया! अब कहां रही काम-भोग की बात या स्त्री-पुरुष के संयोग की बात?

राजा युवानाश्व की कोख से मान्धाता का जन्म

पुराणों में तो स्त्री-पुरुष के संयोग के बिना, अकेले पुरुष ही के पेट से भी पुत्र-जन्म की बात कही है! ऊपर, हम सम्राट इक्ष्वाकु और सम्राट पृथु की तो जन्म-कहानी कह आये हैं; पुराणों में एक अन्य प्रतापी सम्राट 'मान्धाता' का भी उल्लेख है। पुराणों में लिखा है कि राजा 'युवानाश्व' ने एक यज्ञ कराया था। यज्ञ के दिनों में ऐसा हुआ कि एक रात्रि को राजा को बहुत ही ज़ोर से प्यास लगी। तब राजा यज्ञ-शाला में पहुँचा। वहाँ ऋषियों को सोया हुआ देखकर उसने यज्ञ-कलश से जल ले लिया और उसे पी लिया। वह जल मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित था और पुत्रोत्पत्ति के लिए ही वह मन्त्र पढ़े गये थे। अतः कुछ समय व्यतीत होने के बाद राजा युवानाश्व की दांयी कोख को फाड़ कर एक चक्रवर्ती राजा के जैसे लक्षणों वाला बालक उत्पन्न हुआ।¹⁹ 'उसका नाम इसलिए 'मान्धाता' हुआ कि राजा को तो दूध था नहीं, इसलिए उसे धाय का दुग्ध पिलाया गया।'

ऊपर हमने तीन सम्राटों के विचित्र जन्म की पौराणिक गाथा लिखी है। यदि हम पुराणों में से ऐसे उदाहरण देने लगे तो एक पूरी पुस्तक-सी बन जाएगी।

17. मन्थुरून् तथ्या तत्रासीद् बाहुको नरः (पुराण 4/14/43)

18. बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्य (पुराण 4/15/1)

19. राजा तद्यज्ञसदनं प्रदिष्टो निशितर्णितः।

दृष्ट्वा शयानाब्निप्रातान्यपौ मन्त्रजलं स्वयं।

ततः काले उपावृत्ते कुक्षि निर्भिद्य दक्षिणम्।

युवानाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जज्ञान ह। (पुराण 9/6-27 तथा 30)

उदाहरण के तौर पर पुराणों के अनुसार व्यास के पुत्र 'शुकदेव' का जन्म यज्ञ के लिए लाई गयी अरणी (जोड़ी) नामक लकड़ी के मन्थन से हुआ।²⁰ प्रसिद्ध अगस्त्य मुनि और वशिष्ठ ऋषि, दोनों का जन्म घड़े से हुआ बताया गया है।²¹ महाभारत में सौ कौरवों का जन्म भी घड़ों में डाले गए मांस के लोथड़ों से हुआ बताया गया है!!! फिर ऋष्ट्युम्न, द्रौपदी, व्यास की माता सत्यवती, कर्ण इत्यादि कितनों के जन्म गिनाएं? सभी एक-से एक बढ़कर ही विचित्र हैं!

सृष्टि कैसे चलती आयी है?

इस लेख में हमने वैज्ञानिकों तथा धर्मावलम्बियों के मतों का उल्लेख किया है। इन थोड़े-से उद्धरणों से ही यह जान लिया जा सकता है कि इन सभी के मत मनुष्य की बुद्धि को कहाँ तक सन्तोष देने वाले हैं?

उदाहरण के तौर पर वैज्ञानिकों के जैविक विकासवाद (Biological Evolution) के सिद्धान्त को ही लीजिए। विकासवादी तथा शरीर-विकासवादी यह बात मानते हैं कि जीवन-द्रव्य (Protoplasm) के बिना किसी भी निर्जीव पदार्थ से जीवोत्पत्ति नहीं हो सकती। वे अपनी प्रयोगशाला में, आज इतनी वैज्ञानिक उन्नति हो चुकने पर भी किसी निर्जीव तत्व से जीवन-द्रव्य की रचना नहीं कर सकते। परन्तु देखिए तो यह कैसी अजीब बात है कि फिर भी वे मानते हैं कि प्रारम्भ में अवश्य ही किसी निर्जीव तत्व ही से जीवन-द्रव्य बना होगा! यह एक अनुमान ही तो है। इसका प्रमाण तो कोई नहीं है। आज भी हम प्रकृति द्वारा कहीं भी उथले जल में निर्जीव आक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बन, जल, फास्फोरस, सूर्य रश्मियों इत्यादि द्वारा प्रोटोप्लाज्म बनते हुए नहीं देखते। फिर भी वैज्ञानिक हठपूर्वक कहते हैं कि पहले कभी किसी विशेष वातावरण में ऐसा हुआ होगा! यह कल्पना नहीं तो क्या इसे 'विज्ञान' की संज्ञा देंगे? विज्ञान वह है जो प्रयोग द्वारा प्रयोगशाला में किसी भी क्रिया का पुनरावृत्त करके प्रमाणित कर सके। परन्तु आज विज्ञान तो अपने इस मन्तव्य को प्रमाणित नहीं कर सकता।

20. अरण्यामेव सहसा तस्य शुकमथापत्तु

तस्मात् शुकः समुद्भूतो व्यासकृतिः मनोहरः (देवीभागवत् 1/14/7-8)

21. ततोवृमान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् (ऋग्वेद 7/33/13)

फिर धर्मावलम्बियों के मन्त्रव्यों पर विचार कीजिए। कोई मत तो यह कहता है कि शुरू में मनुष्य भूमि फोड़ कर गण्डोलों की तरह निकले और अन्य कई यज्ञ-कुण्ड से, कोई कलश विशेष से किसी पुरुष द्वारा अभिमन्त्रित जल पीने से, लकड़ियों इत्यादि के मन्थन से या छींक मार देने से भी मनुष्य की उत्पत्ति मान रहा है! इसे आप मनुष्य की कोरी आस्था या उसका केवल विश्वास ही तो कह सकते हैं वरना आज कोई इन्हें न तो दुहरा कर दिखा सकता है, न ही इसके वैज्ञानिक पहलू पर प्रकाश डाला जा सकता है। आज जो प्रजा-संवर्द्धन (Reproduction) या सन्तानोत्पत्ति-सम्बन्धी विज्ञान है, उसके तरीके से तो इन उल्लेखों का स्पष्टीकरण नहीं कर सकते। अतः उसके दृष्टिकोण से तो इन्हें भी 'कल्पना', रोचक वचन, वैज्ञानिक फ़िक्शन (Science-fiction) या सामान्य लोगों की दृष्टि से 'करिश्मा' (miracles) ही कहेंगे।

कुछ भी हो, इन सभी से यह तो स्पष्ट है कि इनमें से कोई भी आदिकाल में जीव-उत्पत्ति मैथुन, काम-क्रिया या वासना-भोग द्वारा नहीं मानता। तब अवश्य ही आज की मैथुन-विधि से भिन्न ही कोई प्रणाली तब प्रचलित रही होगी। और हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि 'तब ऊर्ध्वरता लोग योग-बल द्वारा ही सन्तानोत्पत्ति करते थे।' उस प्रणाली को जानने से पहले तो मनुष्य को पूर्ण रूप से योग-युक्त और सतोप्रधान बनना ज़रूरी है।



सृष्टि कैसे चलेगी?

“यदि हम ‘कामजीत’ बन जायें तो सृष्टि कैसे चलेगी?”— ऐसा कहने वाले लोगों से हम पूछना चाहते हैं कि अब जिस प्रकार सृष्टि चल रही है, क्या उससे आप सन्तुष्ट हैं? क्या ईर्ष्या-द्वेष, घृणा-हिंसा, कलह-क्लेश, वैर-विरोध, मार-काट, निर्धनता और निर्दयता, रोग और शोक वाली सृष्टि आपको अच्छी लगती है? क्या बेगार और बेरोज़गार, शोषण और शराब, सूखे और बाढ़ वाली इस दुनिया में मन लग गया है? क्या भीड़-भाड़ और मार-धाड़ वाले इस संसार में कुछ समृद्धि और सुख की घड़ियाँ पाकर स्वयं को सदा के लिए सुखी मान बैठे हो? यह सृष्टि सतयुगी, पावन दुनिया की तुलना में तो कांटों का जंगल ही है, रौरव नरक ही है, विषय-वैतरणी ही है अथवा बदरौ या गदर ही है; क्या यहाँ रहना पसन्द है? इस जेल का कैदी बनने में खुशी है? क्या यहाँ के झूठे धंधों में आपका चित्त मुदित होता है? यह दुनिया तो चल नहीं रही बल्कि धक्के से चलाई जा रही है। इसमें सच्चा सुख और सच्ची शान्ति कहाँ हैं?

सच्चा सुख और सच्ची तथा सम्पूर्ण शान्ति तो सतयुग और त्रेतायुग ही में होती है जब मनुष्य का मन कामाक्रान्त नहीं होता, क्रोधावेश से पीड़ित नहीं होता, लोभ-लिप्सा की दलदल में नहीं फँसता, मोह की जंजीरों में नहीं जकड़ा जाता, अहंकार के उल्टे नशे में चूर नहीं होता, घृणा और द्वेष की आग में नहीं तपता और हिंसा तथा क्रूरता से अपनी अन्तर-आत्मा का खून नहीं करता। अतः अब पुनः उस युग को लाने के लिये ‘पवित्र बनो और योगी बनो’ अर्थात् ‘काम’ रूपी विष का पीना और पिलाना बन्द करो क्योंकि इसी से ही दूसरे भी मनोरोग होते हैं जो अशान्ति तथा दुःख के कारण हैं। इस ‘काम’ द्वारा सृष्टि नहीं चल रही बल्कि इस ‘काम’ ने ही सबका खाना खराब किया है। इस ‘काम’ ने सब काम बिगाड़ा है। अतः अब इस महाशत्रु पर विजय प्राप्त करो ताकि फिर से यहाँ सतयुग के दिन लौट आयें और हम जीव में काम, मोह और लोभ की बजाय पारस्परिक सच्चा प्यार हो।

यह सृष्टि तो अब धक्के से चल रही है

बड़े खेद की बात है कि जिस सृष्टि में पति-पत्नी में घरेलू अनबन बढ़ गयी है और उसके कारण तलाक के दावों की संख्या बढ़ रही है, जिस सृष्टि में रोग और रोगी इतने बढ़ रहे हैं कि अस्पताल में 'बेड' (Bed) भी नहीं मिलता, यात्रा के लिए कई दिन पहले से स्थान सुरक्षित कराना पड़ता है, मनुष्य को अपना पेट भरने के लिए ही सारा दिन कमाने में बिताना पड़ता है, न्यायालय वकीलों और मुकद्दमों से भरे हैं, अस्पताल रोगियों से भरे हैं, जेलखाने कैदियों से भरे हैं, पागलखाने पागलों से भरे हैं, प्लेटफार्म यात्रियों से भरे हैं और रोज़गार के दफ़्तर उम्मीदवारों अथवा बेरोज़गारों से भरे हैं, उसके बारे में आप कहते हैं कि यह सृष्टि चल रही है! क्या इसी तरह से चलने को 'चलना' कहते हैं!!

जिस सृष्टि में मनुष्य अपने दाम्पत्य जीवन से बाहर अथवा पहले ही कई बार वासना-भोग कर लेता है, 'मित्र' कहे जाने वाले व्यक्तियों में भी स्वार्थ ही का सम्बन्ध है, न्याय इतना महँगा, देर से मिलने वाला और दुष्पाप्य है कि तोबह ही भली, मनुष्य के जीवन में कोई नैतिक मूल्य स्थिर अस्तित्व नहीं रखते, प्रेम और सम्मान केवल रोल्ड-गोल्ड के जेवरों की तरह दिखावटी ही रह गये हैं, पूर्ण स्वास्थ्य तो एक अप्राप्य आदर्श ही है, श्वास लेने को पूर्णतः शुद्ध वायु भी प्राप्त नहीं, लोग घरों में ऐसे रहते हैं जैसे मुर्गीखाने में मुर्गी; तब भी क्या हम कह सकते हैं कि सृष्टि चल रही है!

ईश्वर द्वारा रची गई सृष्टि कैसे चलती है?

हमें मालूम होना चाहिए कि परमपिता परमात्मा द्वारा बनाई गयी सृष्टि इस प्रकार नहीं चलती, वह तो ईश्वरीय नियमों के अनुसार अथवा दैवी मर्यादा के अनुकूल ही चलती है। वह तो परम सौन्दर्य और परम सुख की सृष्टि है। उस सृष्टि में सरलता और सच्चाई है। वहाँ कानून तोड़ने वाले लोग नहीं, इसलिए वहाँ कानून की किताबें, कानून जानने वाले वकील और कानून की बातें सुनने वाले 'जज' भी नहीं हैं। वहाँ अपराध नहीं होते। इसलिए वहाँ न पुलिस होती

है न जेलखाने ही होते हैं। वहाँ लोग नियमों का उल्लंघन नहीं करते; अतः जबकि वहाँ सभी स्वस्थ होते हैं तो अस्पतालों की क्या जरूरत? वहाँ इतनी भीड़-भाड़ ही नहीं होती कि सब जगह पंक्ति में ठहरना पड़े। वहाँ सच्चा स्नेह है क्योंकि मनुष्य देवताई स्वभाव का अर्थात् पवित्र है। वहाँ चोरी नहीं होती कि घरों को ताले लगाये जायें। वहाँ हिंसा भी नहीं होती कि किसी का डर हो। उस दुनिया में प्रकृति भी मनुष्य की खूब सेवा करती है, वह उत्पात नहीं मचाती क्योंकि मनुष्य प्रकृति के नियम नहीं तोड़ता। अतः अब उस दुनिया में चलना है। अमर्यादा वाली, आसुरी, नरकमयी सृष्टि के दिन अब पूरे हुए। अब रोने का समय बीत चला; अब तो खुशियों से गाने और सुख पाने के दिन आ रहे हैं। अब यह कलियुग जा रहा है; अब तो सतयुग आने को है। अतः अब इसके लिए तैयारी करो। सदा दिन एक-जैसे नहीं रहते; कालचक्र घूमता ही रहता है। अतः यह मानना कि सदा सृष्टि आज ही की तरह चलती रहेगी, विवेक और विचार के विपरीत ही मन्तव्य है। अब परमपिता परमात्मा इस सृष्टि को बदल रहे हैं और वे इसे देवताई तथा सतयुगी दुनिया में परिवर्तित करके ही रहेंगे। अतः अब जो स्वयं नहीं बदलेंगे, स्वयं को मनुष्य से देवता अथवा विकारी से निर्विकारी नहीं बनायेंगे, वे अपनी ही हानि करेंगे और बाद में पछतायेंगे।

मनुष्य अपनी और गृहस्थी की ज़िम्मेवारी निभाने में असमर्थ

सृष्टि को चलाने की ज़िम्मेवारी मनुष्य की नहीं, परमात्मा की है। मनुष्य ने तो सृष्टि को बिगाड़ दिया है, उजाड़ दिया है अथवा फूलों के बगीचे को बदल कर कांटों का जंगल बना दिया है। मनुष्य ने तो अपने मत से काफी समय तक सृष्टि को चलाकर देख लिया है। उसका परिणाम यह हुआ है कि आज उसने अपनी ही सृष्टि के महाविनाश के लिए एटम और हाइड्रोजन बम भी बना लिए हैं। अतः अब मनुष्य को चाहिये कि अपने उल्टे मत को छोड़कर प्रभु के श्रेष्ठ मत पर चले और प्रभु की सम्मति यह है कि 'काम नरक का द्वार है'।

मनुष्य तो अपनी छोटी गृहस्थी को भी ठीक रीति से नहीं चला सकता; वह तो अपने तन को भी स्वस्थ नहीं रख सकता न मन को सदा शान्त अवस्था

में स्थिर रख सकता है। अतः ऐसी हालत में यह मानना कि 'हम ही सृष्टि को चला रहे हैं और यह प्रश्न करना कि हमारे कामजीत बनने पर सृष्टि कैसे चलेगी?' – एक मिथ्या अहंकार अथवा कल्पना की उड़ान उड़ान है।

आज पिता के बैठे होने पर भी काल उसके बच्चे को ले जाता है अथवा रोग मनुष्य को रोगी बना देता है, परिवार के सदस्य साथ छोड़ देते हैं, कारोबार और रोजगार में खटपट होती है, अपने भी बेगाने हो जाते हैं, उम्मीदें उठती हैं पर मिट जाती हैं, सभी तरह का खटका और सटका लगा रहता है, बच्चे भी आज्ञा का पालन नहीं करते, मन भी चंचलता नहीं छोड़ता – क्या इसी का नाम सृष्टि को चलाना है? रात्रि को नींद की गोलियाँ खाकर सोना, प्रातः को तनाव दूर करने के लिये ट्रांक्व्यूलाइज़र¹ सेवन करके ही कार्य-क्षेत्र में उतरना, फिर रात्रि को अपने दिन-भर के दुःख-दर्द को और थकावट-मिलावट की बातों को भूलने के लिए शराब का प्याला चढ़ाना – क्या इसी का नाम दुनिया है? जिस दुनिया में 'मित्र' मनुष्य को धन-संग्रह करते देखकर या तो ईर्ष्या से जल मरते हैं और या उससे आर्थिक प्राप्ति ही के लिए मौके देखते रहते हैं, दारा और सुत भी स्वास्थ्य और साधन-सम्पन्न होने तक ही साथ देते हैं, जहाँ मार्ग पर मरते हुए मनुष्य के पास जाने की ही किसी के पास फुर्सत या जुर्रत नहीं, जहाँ चरित्र को घुन चाट गया है और जहाँ मनुष्य मुश्किल से घड़ी-दो घड़ी के लिए ही सन्तुष्ट होता है, क्या उस दुनिया कि चलने-चलाने की फिक्र है?

'सृष्टि कैसे चलेगी?' – इस चिन्ता को छोड़ अपनी चिन्ता करो!

परमपिता परमात्मा कहते हैं कि दुनिया की फिक्र करने से पहले अपनी फिक्र से तो फारिग होबो! पहले अपने आपको ठीक तरह चलाओ कि जिससे आप स्वयं से सन्तुष्ट हो सको और दूसरे भी आप से सन्तुष्ट हों। पहले अपने ही मन को अपने वश में करके चलाओ क्योंकि अभी तो यह भी बहुत-सी दुर्घटनाएं (Accident) कर बैठता है; कई लोगों से झगड़ा करा देता है, कई जनों से रूठ जाता है और कई जगह भटकता है। यह कई विषयों के पीछे भागता

1. Tranquiliser or Compose.

है। अतः पहले इसे तो ठीक तरह चलाओ। संकल्प ही से सृष्टि रची जाती है; संकल्प ठीक होंगे तो सृष्टि ठीक हो जायगी।

सृष्टि तो बहुत बड़ी चीज़ का नाम है; उसकी चिन्ता करना आज के असमर्थ मनुष्य का काम नहीं। सृष्टि की रचना परमात्मा ने की थी, अतः इसकी चिन्ता उस सर्व समर्थ पर ही छोड़ दो। अथवा, सृष्टि प्रकृति या कुदरत ही का कार्य है, यह उसे करने दो। आप केवल उन्हें सहयोग दो; आप अपने मन को पवित्र और स्थिर करो। उसके लिए ज़रूरी है कि ब्रह्मचर्य से शक्ति लो।

अब सृष्टि की जो स्टेज आ पहुँची है, क्या इससे आपको यह अन्दाज़ा नहीं होता की अब यह सृष्टि इसी तरह ज्यादा समय चलने वाली नहीं है? अब तो बिगड़ी को बनाने वाले परमपिता परमात्मा ने इसे सुधारने का कार्य अपने ज़िम्मे लिया है। अब तो इसकी समस्याएँ परस्पर इतनी उलझ चुकी हैं, इन का सूत परस्पर ऐसा अड़-सा गया है कि इन्हें पूर्णतः सुलझा सकना मनुष्य के बस की बात नहीं है। मनुष्य के लिए तो अब परमपिता परमात्मा यही कर्तव्य दे रहे हैं कि यदि वह अविवाहित है तो स्वयं को ठीक तरह चलाये और यदि वह विवाहित है तो अपने बाल-बच्चों को और अपनी गृहस्थी को ठीक तरह चलाये। इसका भाव यही है कि वह स्वयं को पवित्र बनाये। उसके लिए ज़रूरी है कि वह ब्रह्मचर्य का पालन करे। इसके बिना मनुष्य का, उसकी गृहस्थी का तथा उसके समाज की समस्याओं का सुलझना मुश्किल है, नहीं-नहीं असम्भव है।



क्या वासना-भोग तनाव से छूटने का एक साधन है?

‘काम’ विकार के बारे में मनुष्य ने कई ग़लत धारणाएँ बना रखी हैं। इन धारणाओं को बनाने में शरीर-विज्ञान-वेत्ताओं का भी हाथ है और मनोवैज्ञानिकों का भी। उदाहरण के तौर पर कुछ ही वर्ष पहले हृदय रोग के कुछेक विशेषज्ञों ने यह कह दिया कि वासना-भोग करने से मनुष्य के हृदय पर का दबाव कम हो जाता है और मनुष्य का मानसिक तनाव (Mental Tension) दूर हो जाता है। उन्होंने अपना मत प्रकट किया कि काम-भाव की अभिव्यक्ति से मनुष्य के मन को विश्रान्ति (Relaxation) मिलती है और इसके फलस्वरूप हृदय रोग की उग्रता में काफी अन्तर पड़ जाता है। गोया उन्होंने ‘काम-क्रिया’ को हृदय रोग के लिए एक मानसिक औषधि घोषित कर दिया। चूँकि वे हृदय रोग के विशेषज्ञ थे इसलिए उनके इस वक्तव्य को महत्व दिया गया। फिर, आज का समाज कामोन्मुख अथवा स्वच्छन्दता-प्रिय (permissive) तो है ही, समाचार पत्रों के संवाददाताओं ने इसे एक अच्छा समाचार मानकर अपने-अपने पत्रों में इसे खूब छपा। परिणाम यह हुआ कि हृदय रोग से पीड़ित रोगियों को तो वासना-भोग के लिए मानो एक लाइसेन्स ही मिल गया। उनके इस अत्याचार से नारी वर्ग पीड़ित हो उठा और उन्होंने यह भी देखा कि प्रत्यक्ष में तो रोगी के स्वास्थ्य पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है क्योंकि उसमें भी शक्ति के हास के कारण कमज़ोरी ही आती है। अतः उपरोक्त समाचार के शीघ्र ही बाद एक दूसरा समाचार छपा कि किसी-किसी महिला ने अपने पति के चिकित्सक को फोन पर कहा – ‘डाक्टर, यह किस विशेषज्ञ ने कह दिया है कि वासना-भोग से हृदय रोग को राहत मिलती है? हम तो उसके इस वक्तव्य से परेशान हो उठी हैं।’

कहने का भाव यह है कि दो-चार वैज्ञानिकों के ऐसे वक्तव्य को, जिसकी

प्रामाणिकता अभी परीक्षणों द्वारा सिद्ध न हुई हो और जिसके बुरे परिणाम भी हमारे सामने हों, झट से मानकर अपने जीवन को हानि नहीं पहुँचानी चाहिए। उनके वक्तव्य पर विचार करना चाहिए और अपने विवेक से भी काम लेना चाहिए। यह भी देखना चाहिए कि उस वैज्ञानिक को सम्बन्धित विज्ञान का कितना ज्ञान है तथा उसने अपने निरीक्षण (Observation) को अन्य पहलुओं से भी जाँचा है या नहीं। उपरोक्त उदाहरण को ही ले लीजिए। सोचने की बात है कि यदि वासना-भोग से मनुष्य को स्वास्थ्य-लाभ होता है या इससे विश्रान्ति (Relaxation) प्राप्त होती है तो फिर इसके बाद मनुष्य को थकावट और कमजोरी क्यों अनुभव होती है? जिस कार्य से मनुष्य की शक्ति का क्षय हो, क्या कभी वह कार्य मनुष्य के लिए स्वास्थ्य-वर्धक हो सकता है? जिस क्रिया के बाद मनुष्य सो जाना चाहे अथवा विश्राम पसन्द करे, क्या उसे हम 'विश्रान्ति' (relaxation) देने वाला कर्म मान सकते हैं? जिस कर्म को करने के बाद मनुष्य का चेहरा काला या पीला हो जाय और उसके उत्साह में कमी हो जाय, क्या हम उस कर्म को रोग-निवारक मान सकते हैं?

काम-भोग – समस्याओं का हल नहीं

तब प्रश्न उठता है कि डाक्टरों ने इस कर्म को 'विश्रान्ति-दायक' क्यों घोषित किया? इस विषय में समझने की बात यह है कि जिस रोगी में काम-उत्तेजना हो, यह उसके बारे में कहा गया है। यदि कोई मनुष्य ऐसे उच्छृंखल स्वभाव का है कि उसमें 'काम' के संकल्पों का तीव्र वेग है और वह उन्हें शान्त नहीं कर पाता है और इसका प्रभाव उसके हृदय पर पड़ रहा है क्योंकि वह रोगी है, वह वासना-भोग कर के ही तनाव की निवृत्ति महसूस करता है। परन्तु यदि सद्विवेक का प्रयोग किया जाय तो वास्तव में यह समस्या का हल तो नहीं है। उस व्यक्ति में पुनः कामोत्तेजना पैदा होगी और वह पुनः भोग करेगा और इस प्रकार तो उसका हास ही होगा। वास्तविक इलाज तो यह है कि उसके विचारों और संस्कारों को शुद्ध किया जाय।

फिर यदि उस मनुष्य में कामोत्तेजना नहीं है बल्कि चिन्ता है तो यह चिन्ता

की निवृत्ति का भी ठीक उपाय नहीं है क्योंकि इससे तो अधिकाधिक इतना ही होता है कि कुछ क्षणों के लिए उसका मन चिन्ताओं से हट कर इस क्रीड़ा में लग जाता है, जिससे उसे विश्रान्ति का अनुभव होता है परन्तु फिर वे चिन्ताएँ उसे घेर लेती हैं और शक्ति का क्षय होने से वह उन चिन्ताओं का ठीक तरह सामना नहीं कर पाता है।

काम एक मद्य है

पुनश्च, जैसे कोई व्यक्ति अपनी चिन्ताओं को भुलाने के लिए मद्यपान करता है, उसी प्रकार काम-भोग से भी तो वह एक मद्य ही का काम लेता है। यह तो एक उत्तेजना से निकलकर दूसरी उत्तेजना का स्वागत करना है। यह तो केवल चंचलता का रूपान्तर मात्र है। तब यह मनोरंजन कैसे हुआ? 'काम-भोग' के बाद तो मनुष्य के मन में मायूसी (depression) ही आती है; उसके बाद तो खोखला हो जाने के कारण वह उत्तेजनाशील बन जाता है। अतः ऐसे मनोरंजन का क्या लाभ कि जिससे मनुष्य अपने यौवन, रूप, शक्ति, मनोबल इत्यादि खो बैठे? सोचिये तो सही कि यदि मदारी का खेल देखते समय किसी व्यक्ति की जेब में से 20 हजार रुपये निकल जायें तो क्या उसके लिए वह खेल मनोरंजन कहलाएगा या दुःख का कारण?



क्या कामोत्पत्ति 'भूख' की तरह स्वाभाविक है?

जैसे कुछ लोग अज्ञानता-वश वासना-भोग को मनोरंजन या विश्रान्ति का एक साधन मानते हैं, वैसे ही बहुत-से लोग आज यह माने बैठे हैं कि स्त्री-पुरुष संसर्ग तो एक स्वाभाविक वृत्ति के अनुरूप है। वे कहते हैं कि वासना तो 'भूख' की तरह ही है। जैसे भूख पैदा होना स्वास्थ्य की निशानी है और स्वाभाविक है, वैसे ही वासना का पैदा होना भी शारीरिक धर्म है। ऐसा मानकर वे अपने आध्यात्मिक विकास का मार्ग अपने ही हाथों बन्द कर देते हैं। देह और गेह की आसक्ति को नेह का लेबल लगाकर वे स्वयं को धोखा देते हैं। वरना वास्तविकता तो यह है कि 'वासना' और भूख में तो पृथ्वी और आकाश का अन्तर है।

'भूख' तो शरीर में शक्ति-संवर्द्धनार्थ कुछ खाने की ज़रूरत बताने के लिए मानो एक अलार्म या घंटी है। कुछ खा लेने के बाद शरीर में शक्ति का अनुभव होता है और उस शक्ति के फलस्वरूप उसमें कार्य करने की क्षमता बढ़ती है तथा उसके उत्साह और हर्ष में वृद्धि होती है, परन्तु वासना-भोग के बाद तो मनुष्य शक्ति का नहीं, कमजोरी ही का अनुभव करता है। तब भला इसे स्वाभाविक या स्वास्थ्यप्रद कैसे माना जा सकता है?

पुनश्च, वासना शरीर की नहीं, मन ही की उपज है। काम-वासना को 'मनोज' अर्थात् मन से पैदा हुआ, माना गया है। जैसे लड़ाई के बारे में कहा जाता है कि वह मनुष्य के मन ही में पैदा होती है, वैसे ही वासना का जन्म भी मन ही में होता है। यही कारण है कि इसका सम्बन्ध मनुष्य के आचार और विचार से माना गया है। कई मनोवैज्ञानिकों ने भी इस बात को माना है कि पत्नी को अपने अधीन करने अथवा उस पर अपना स्वामित्व जमाने के लिए ही मनुष्य के मन की यह एक पाशिवक वृत्ति है।

अतः याद रखना चाहिये कि काम शारीरिक भूख नहीं, यह मन के मलीन विचारों का परिणाम है, जैसे कि लड़ाई मन के हिंसापरक विचारों का परिणाम है। इसका जन्म मानसिक उत्तेजना से होता है। मन के विचारों ही का प्रभाव शरीर पर पड़ता है जिससे ऐन्द्रिय चंचलता उत्पन्न होती है।

अतः वासना को स्वाभाविक मानना भूल है। जैसे भूख न होने पर भी भुने हुए

चने सामने रखे होने पर मनुष्य आदत के वश उन्हें चुगता रहता है और ऐसे ही चुगलखोर व्यक्ति की भी आदत हो जाती है कि जिसके कारण वह दूसरों की चुगली करता रहता है, ठीक वैसे ही कामी व्यक्ति भी नेत्रों द्वारा अथवा भोगेन्द्रियों द्वारा अपने विषय का यों ही सेवन करता रहता है। यदि इसे भूख भी मान लिया जाए तो यह कृत्रिम भूख (artificial hunger) है। जैसे वृद्ध हो जाने पर भी कई व्यक्ति वासनात्मक कर्मों को नहीं छोड़ते, क्योंकि उनकी यह आदत हो जाती है, वैसे ही आज के हरेक व्यक्ति में यह एक अर्जित आदत (acquired habit) हो गयी है क्योंकि आज समाज का वातावरण ही ऐसा है कि मनुष्य एक-दूसरे से यह बुराई सीख लेता है। जैसे सिग्रेट पीने की आदत डाल लेने के बाद मनुष्य को सिग्रेट पीने के लिए एक 'आन्तरिक भूख' (urge)-सी महसूस होती है, वैसे ही 'काम'-भोग की भी आदत मनुष्य को हो जाती है। यह आदत मनुष्य का स्वभाव (nature) नहीं बल्कि वह 'अर्जित स्वभाव' है जो कि आदत डालने से बन गया है। जैसे अफीमची अफीम के बिना और शराबी शराब के बिना नहीं रह सकता, वैसे ही हाल काम की आदत वाले व्यक्ति का होता है। इस प्रकार मनुष्य को चाहिए की वह काम की अवस्था, जो कि एक उत्तेजना वाली अवस्था है, की बजाय योग द्वारा एक-रस आनन्द की अवस्था को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करे।

मनुष्य को यह याद रखना चाहिए कि काम-विकार तो एक ऐसे नशे की तरह है जो मनुष्य के सन्तुलन को नष्ट कर देता है। वह उसे स्वप्नों की दुनिया में ले जाता है, भविष्य को उनके मन से भुला देता है अथवा उसे मिथ्या एवं दूषित विचारों में फँसा देता है। जैसे अन्य नशे मनुष्य के तन और धन को हरने वाले तथा उसकी बुद्धि को भ्रष्ट करने वाले होते हैं, उनसे भी 'काम' का नशा ज्यादा खतरनाक है क्योंकि वह मनुष्य को न केवल आदत का गुलाम बना देता है बल्कि उसे कई प्रकार के सांकल पहना देता है। तभी तो कहा है कि - 'सभी नशों में है नुकसान सिवाय एक नारायणी नशे के।' अतः काम को एक स्वाभाविक भूख न मानकर इसे एक घातक नशा ही मानना चाहिये।



‘काम’ और ‘प्रेम’ में अन्तर

इस संसार में एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से मृदुल नाता जोड़ने वाला जो मनोभाव है, उसी का नाम ‘प्रेम’ है। जैसे पृथ्वी का गुरुत्व-आकर्षण चीजों को अपनी ओर आकर्षित करता है, वैसे ही एक व्यक्ति में दूसरे के प्रति जो आकर्षण होता है, उसी को ‘प्रेम’ कहा जाता है। प्रेम ऐसी मनोस्थिति है अथवा एक ऐसा अनुभव है जो ‘आनन्द’ के अति निकट है, नहीं, नहीं, प्रेम तो आनन्द का सहगामी ही है अथवा आनन्द का उत्पादक ही है। यदि संसार में प्रेम न हो तो मनुष्य का जीना ही मुश्किल हो जायेगा क्योंकि तब मनुष्य किस लिए जीए, किसके साथ जीए? अतः प्रेम जीवन को स्थिर रखने वाला, जीवन का सार है अथवा मनुष्य के मन को भाने वाला एक रस है।

प्रेम ही का विरोधी मनोभाव घृणा है। घृणा से अनेकानेक अशान्तिकारी तथा दुःखोत्पादक संकल्प-विकल्प और विचार उत्पन्न होते हैं परन्तु प्रेम से मनुष्य के मन में एक-दूसरे के कल्याण की भावना पैदा होती है। प्रेम मनुष्य को दूसरे के लिए अपने सुख को त्यागने में भी सुख की अनुभूति करता है जबकि घृणा से मनुष्य के मन को एक दाह का अनुभव होता है और वह दूसरे के सम्बन्ध अथवा सम्पर्क को ही त्याग देना चाहता है। अतः प्रेम एक स्वाभाविक, आवश्यक और सात्विक गुण है। परमात्मा के प्रति मन में प्रेम का होना ही भक्ति तथा योग है। परमात्मा के प्रेम की एक बूँद प्राप्त करने के लिए भी प्रभु-प्रेमी व्यक्ति अपने जीवन की बाज़ी लगाने को तैयार हो जाता है। प्रेम एक बहुत ही उच्च, बहुत ही पवित्र गुण अथवा अनुभूति है। परन्तु मनुष्य गलती से इसके विकृत रूप को भी प्रेम मान बैठता है। वह मोह, काम और लोभ को भी ‘प्रेम’ समझ बैठता है। अतः वह इनकी दलदल में फँस कर जीवन को दुःखी बना बैठता है।

प्रेम और विकार में अन्तर

यदि ध्यान से देखा जाय तो ‘प्रेम’ और ‘काम’ में या प्रेम और मोह में बहुत अन्तर है। ‘प्रेम’ दूसरे के प्रति त्याग की भावना पैदा करता है जबकि ‘काम’ में

इत्यादि। प्रेम की भाषा ऐसी हिंसात्मक शब्दों से नहीं बनी है। सच्चा प्रेम मनुष्य के मन में एक तूफान या आंधी पैदा नहीं करता, उसे अनियन्त्रित नहीं बनाता, उसके मन को उलझाता नहीं, उसे मानसिक ग्रंथियाँ नहीं देता बल्कि उसके स्वरूप को विकसित करता है, उसके चेहरे पर स्थायी हर्ष लाता है।

‘काम’ – स्वार्थ पर एक ओढ़नी है

प्रेम का अस्तित्व दूसरे के शोषण के लिये नहीं होता। ‘काम’ जहाँ होता है, वह दूसरे के रक्त को चूसने के लिए उकसाता और फिर उसके बाद वह वहाँ से उठ जाता है। ‘प्रेम’ हँस है तो ‘काम’ नाली का कीड़ा है। प्रेम एक सद्परिचय है परन्तु ‘काम’ स्वार्थ पर एक ओढ़नी है। कामी व्यक्ति रट तो यही लगाता है कि ‘मुझे तुम से प्रेम है,’ परन्तु उसके इन शब्दों के पीछे दूसरे के रूप-लावण्य को लूटने ही का भाव छिपा होता है। कामी भी मुस्कराता तो है परन्तु उसकी मुस्कराहट को तयोरियों में बदलते देर नहीं लगती।

‘काम’ – प्रेम नहीं है

सच्चे प्रेम का आधार आत्मीयता है और आत्मीयता का आधार स्वयं को ‘आत्मा’ मानना है। अतः शुद्ध प्रेम देह की आयु, अवस्था, लिंग-भेद या रंग-रूप पर नहीं टिका होता। यह हृदों में नहीं बँटा होता। उसका प्रेरक भाव ‘हरेक के कल्याण की कामना’ ही है। अतः हमें यह जानना चाहिए कि ‘काम’ को ‘प्रेम’ कहना प्रेम को कलंकित करना है।

प्रेम को ‘नरक का द्वार’ नहीं कहा गया, काम ही को ‘महाशत्रु’ और ‘नरक का द्वार’ कहा गया है। प्रेम ही के कारण तो स्वर्ग सही अर्थ में स्वर्ग है। ‘काम’ को ‘कटारी’ कहा गया है, प्रेम तो जीवनदायक है। अतः जो लोग ‘काम’ को प्रेम मानकर अपने जीवन का सर्वनाश करने में लगे हुए हैं, उन्हें सचेत होना चाहिए। उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि गृहस्थ जीवन में भी पत्नी की स्वीकृति या इच्छा के बिना काम-भोग बलात्कार (Rape) ही है और जो मनुष्य इन्द्रिय-नियन्त्रण में अयोग्य है, उसे व्यापक व्यभिचार से बचाने का एक निकृष्ट उपाय है। यह बड़े पाप (greater evil) से बचाने के लिए छोटे पाप

(lesser evil) के लिए स्वीकृति है: परन्तु जो इसे 'धर्म' या प्रेम मान लेता है, वह स्वयं को धोखा देता है। वह प्रभु के प्यार से हटकर हाड़-माँस के आकर्षण में बँध जाता है। वह 'योगी' के बजाय भोगी बन जाता है। वह अपने आत्मिक विकास के द्वार बन्द कर देता है। वह समूचे समाज से सच्चा प्यार करने में अयोग्य सिद्ध होता है। उसका प्यार अपनी पत्नी की देह तथा अपने पुत्रों की आवश्यकता की पूर्ति तथा अपने घर की चार दीवारी तक सीमित हो जाता है। वह समाज के लिए अपने जीवन को नहीं दे सकता क्योंकि वह अपना जीवन इन्हीं को दे देता है। उसकी शारीरिक शक्ति, आर्थिक सामर्थ्य, बौद्धिक क्षमता सब-कुछ काम को केन्द्र बनाकर बनाई गई गृहस्थी में ही लग जाते हैं। सच्चे सुख की आशा में वह मकड़ी की तरह गृहस्थी का जाल बनाता है, फिर उसी में ही स्वयं फँसकर लटक जाता है! अपना सर्वस्व लुटा चुकने के बाद जब उसे होश आता है, तब देर हो चुकी होती है; तब हाथ मसलने के सिवा कुछ नहीं हो सकता!



मनुष्य का स्वार्थ होता है। यदि कामी व्यक्ति की वासना-तृप्ति के प्रस्ताव को स्वीकार न किया जाय तो वह तुरन्त ही क्रोधावेश में आ जाता है और घृणा ही की अभिव्यक्ति करता है। कामी व्यक्ति पत्नी के जीवन को अपने हाथ में एक खिलौना मानता है जिससे कि उसका अपना मनोबहलाव पूरा होना चाहिए, उसमें खिलौने की भावनाओं का अस्तित्व नहीं रहता। कामी व्यक्ति छोटी-छोटी बात पर भी अपनी पत्नी को झाड़ और फटकार देता है। वह उस पर हाथ उठाने को भी तैयार हो जाता है और घर से निकल जाने की फरमायश करने में भी देर नहीं लगाता। वह उसे अपने बराबर या अपने से भी ऊँचा जीवन-साथी नहीं मानता बल्कि पत्नी के जीवन को अपनी दया ही पर अधिक समझता है। यदि पत्नी का स्वास्थ्य ठीक न हो अथवा वह कमजोर हो अथवा वासना-भोग की उसे इच्छा न हो तो न सही, पति को यदि वासना-तृप्ति करनी है तो उसकी कामना पूरी होनी चाहिए; उसके लिए गृहस्थ का यही मुख्य प्रयोजन है।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि 'काम' भाव एक दानवी वृत्ति है, यह आसुरी स्वभाव की अभिव्यक्ति है, यह एक मनोविकार है। यह एक तुच्छ अथवा उच्छृंखल मनोवृत्ति है। इसका जन्म मन की चंचलता से होता है। यह घास की आग की तरह पैदा होता है और फिर बुझ जाता है। और फिर घास की आग की भाँति जल्दी ही जग जाता है। यह अपने तथा दूसरे के जीवन को हास की ओर ले जाने वाला, एक-दूसरे को गर्त में गिराने वाला, आत्म-ग्लानि के भाव को पैदा करने वाला है। यह कुत्सित संकल्प है। यदि यह पवित्र अथवा उत्तम भाव हो तो मनुष्य इस की पूर्णाभिव्यक्ति के लिए एकान्त और अन्धेरे का स्थान क्यों ढूँढ़ता है? वह इसे छिप कर क्यों करता है? क्या माता अपने बच्चों से या भाई अपने भाई से छिप कर प्यार करता है? क्या उसकी चर्चा होने पर वह कभी लज्जा का अनुभव करता है? अन्य किसी भी प्रकार के प्यार की अभिव्यक्ति का उल्लेख 'काला मुँह करना' — इस प्रकार के निन्दित शब्दों या मुहावरों से नहीं किया जाता। अन्य किसी भी प्रकार के प्रेम के व्यापक रूप को 'व्यभिचार' की संज्ञा नहीं दी जाती। अन्य प्रकार के प्यार की अभिव्यक्ति

काम विकार और मनोविज्ञान

जर्मनी में एक मनोवैज्ञानिक तथा मनोविश्लेषक (Psychoanalyst) हुए हैं जिनका नाम था सिगमंड फ्रायड¹ उनका यह मत था कि मनुष्य की अनेकानेक मौलिक प्रवृत्तियों (Primary instincts) में से काम की प्रवृत्ति (Sexual instinct) सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपने भाषणों और लेखों में यह बताने का भरसक यत्न किया है कि शिशुकाल से ही जब बच्चा दूध मुँहा होता है तब से ही विभिन्न रूपों में उसमें लैंगिक आकर्षण अभिव्यक्त होता रहता है। उन्होंने यह कहा है कि बचपन से ही कन्या का अपने पिता की ओर तथा बालक का अपनी माता की ओर अधिक आकर्षण बना रहता है।

फ्रायड के अनुसार बचपन से ही लैंगिक आकर्षण स्वाभाविक

फ्रायड ने अपने इस मत का प्रतिपादन कुछ ऐतिहासिक दृष्टान्तों तथा कुछ बालकों के निरीक्षणों से प्राप्त निष्कर्षों द्वारा किया है। इस प्रसंग में उन्होंने यूनान देश की एक पौराणिक कथा को भी उद्धृत किया है। उस कथा में ओएडिपक्स (Oedipux) नामक एक बालक ने अपने पिता का कत्ल करके अपनी माँ से शादी कर ली थी। इस वृत्तान्त का हवाला देते हुए फ्रायड ने, बालक का अपनी माँ के प्रति जो आकर्षण होता है उसे 'ओएडिपक्स काम्प्लेक्स' (Oedipus Complex) का नाम दिया है। इसी प्रकार, फ्रायड ने अन्य एक कथा को भी उद्धृत किया है जिस में कि इलेक्ट्रा (Electra) नाम की एक बालिका ने अपने भाइयों से मिलकर अपनी माता का वध करा दिया। बालिकाओं में इस प्रकार से अपने पिता के प्रति आकर्षण को फ्रायड ने 'इलेक्ट्रा काम्प्लेक्स' (Electra Complex) की संज्ञा दी है। इसके अतिरिक्त, फ्रायड ने अनेकानेक बालकों और बालिकाओं के जीवनो का अध्ययन करके यह भी बताया है कि प्रारम्भ से ही बालक तथा बालिका अपने शरीर से प्यार करते हैं। इसे फ्रायड ने नारसिज्म (Narcissism) का नाम दिया है। फ्रायड कहता है कि बालक-बालिकाएँ

1. Sigmund Freud -- 1856 to 1939.

अपने-अपने शरीर में ऐसे भागों को खोजते हैं जिससे उन्हें ऐन्द्रिय सुख (Pleasure) मिले। इसे उसने सेल्फ इरोटिसिज्म (Self-Eroticism) की संज्ञा दी है। इस प्रकार की चर्चा करते हुए फ्रायड ने लैंगिक आकर्षण और बाद में 'काम' को मनुष्य की मौलिक, महत्वपूर्ण एवं स्वाभाविक वृत्ति माना है और इस बात पर ज़ोर दिया है कि इस स्वाभाविक इच्छा को दबाया न जाये।

फ्रायड का कहना है कि मनुष्य के मन का अध्ययन करने के लिए हम उसे चेतन (Conscious), अर्ध चेतन (Sub-conscious) और अचेतन² (Unconscious) तीन स्तरों में बाँट सकते हैं। मनुष्य के मन को ग्लेशियर (Glacier) से उपमा देते हुए उन्होंने बताया है कि जैसे ग्लेशियर का लगभग 6/7 भाग पानी में डूबा रहता है और दिखाई नहीं देता और पानी की सतह के ऊपर का भाग, जो कि कुल का 1/7 ही भाग होता है दिखाई देता है, वैसे ही मनुष्य का चेतन मन उसके कुल मानसिक व्यवहार और व्यापार का मानो केवल 1/7 ही भाग होता है। परन्तु उसका जो 6/7 अचेतन मन है वह मनुष्य के व्यक्तित्व, उसके बर्ताव, चरित्र और उसके व्यवहार को बहुत-ही प्रभावित करता है। उस अचेतन मन में मनुष्य की बहुत-सी इच्छाएँ, बहुत-सी कामनाएँ दबी हुई-सी पड़ी रहती हैं और अवसर तथा चेतन मन से स्वीकृति मिलने पर वे नाना रूप से अभिव्यक्ति पाती हैं। फ्रायड ने इस बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए उपमा की रीति से कहा है कि मनुष्य का अचेतन मन एक डेवढ़ी अथवा एक दालान (anteroom) के समान है जिसमें कि बाहर से आए व्यक्तियों की तरह सभी प्रकार की इच्छाएँ चेतन मन रूपी कोठी में जाने की इन्तज़ार में ही होती हैं परन्तु बीच में के दरवाज़े पर खड़ा हुआ सेन्सर (censor) रूपी चौकीदार उन्हें अन्दर जाने से रोके रहता है।

इस प्रकार की व्याख्या करते हुए फ्रायड ने कहा है कि सभ्यता, संस्कृति, परम्परा, सामाजिक मर्यादा, रीति-रिवाज की चेतना मनुष्य की अनेक प्रकार की इच्छाओं को इसलिए अभिव्यक्ति पाने से रोकती हैं कि समाज उन्हें अच्छा

2. वास्तव में यह 'अचेतन' नहीं है। इसलिए बाद में फ्रायड ने इसे 'अन्कासास' की बजाय 'इड' (Id) नाम दिया।

नहीं मानता। फिर समयान्तर में वे इच्छाएँ रूप बदलकर अथवा लुके-छिपे अभिव्यक्त हो जाती हैं। यदि उन्हें अभिव्यक्त करने की बजाय दबा दिया जाए तो इससे मनुष्य को कई प्रकार के मानसिक रोग और उसमें कई असाधारण लक्षण (abnormalities) उत्पन्न हो जाते हैं।

मनुष्य के अचेतन मन, जिसमें इच्छाएँ उठती हैं, उसको फ्रायड 'इड' (Id) का नाम देता है और समाज की मर्यादाओं, परम्पराओं इत्यादि की चेतना मनुष्य का 'सुपर ईगो' (Super-ego) कहलाती है। इच्छाएँ सदा ईगो (ego) में जाकर अभिव्यक्त होना चाहती हैं, परन्तु सुपर-ईगो, ईगो को प्रकट करने के लिए रोकती है। इस प्रकार, मनुष्य के ईगो और सुपर ईगो में सदा एक द्वन्द्व (Conflict) रहता है जो कि मनुष्य के स्वाभाविक विकास के लिए हानिकर है। इस प्रकार से फ्रायड वासना की इच्छा को रोकने से मना करते हैं।

फ्रायड के इस मत के भयंकर परिणाम

फ्रायड की इस बात को लेकर पिछले 50-75 वर्षों में विदेशों में एक बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है। लोग काम वासना को स्वाभाविक मानते हुए स्थापित मर्यादाओं को बड़ी तीव्रता से तोड़ते जा रहे हैं और आज वहाँ एक ऐसे समाज की स्थापना हो गई है जिसे 'स्वच्छन्द समाज' (Permissive Society) कहा जाता है। आज वहाँ फ्रायड के सिद्धान्तों का प्रभाव प्रायः हर अध्ययन-क्षेत्र पर देखने में आता है – ऐसा बहुत-से पाश्चात्य विद्वानों ने माना है। इसके परिणाम बहुत भयंकर हुए हैं। इससे वहाँ नर-नारियों में नाजायज़ सम्बन्ध (Promiscuity) की अतिवृद्धि हो गई है जिसके परिणामस्वरूप उनके पारिवारिक जीवन नष्ट हो

3. The extraordinary popularity of Freudianism is a most convincing evidence of the sexualisation of modern psycho-social disciplines. One can hardly imagine a more degrading theory than the pan-sexual phantasmagoria of Freud, which would hardly have had any serious chance among supposed scholars if today's Psychology, psychiatry, sociology, education and anthropology had not, in a sense, been infected by a growing sex-obsession (Sane Sex Order by P.A. Sorokin, page 20)
4. A large proportion of divorces and desertions are the direct results of adultery or other forms of illicit sex adventures committed by one or both parties.....These conclusions are well supported by several sociological studies. The exact

गये हैं। वहाँ पर तलाकों की संख्या दिनों दिन इतनी बढ़ती जा रही है कि उन देशों की सरकारें चिन्तित हो उठी हैं। वहाँ सरकार को इतने अवैध बच्चों को संभालना पड़ रहा है कि जिससे व

इसे गम्भीर समस्या मानने लगे हैं। इस चारित्रिक संकट के कारण वहाँ के राजनीतिक जीवन में कई विप्लव आये हैं। परिणाम यह हुआ है कि वहाँ के समाज में लोगों के सामने ऐसे आदर्श जीवन वाले व्यक्ति ही नहीं हैं कि जिनका चारित्रिक प्रभाव लोगों के लिए अनुकरणीय और प्रेरणाप्रद हो। आम बाजारों में ऐसी दुकानें खुली हैं जहाँ पर कि साइन बोर्ड को देखकर ही मनुष्य के मन में यह निश्चय हो जाता है कि सभ्यता में सड़ान्द पैदा हो चुकी है और इन देशों से पवित्रता को निकाल दिया गया है। वहाँ 'प्रेम' और 'काम' को प्रायः पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयोग किया जाता है। हालत यह है कि घर-घर वेश्यालय बन चुका है और मनुष्य में यह पशुवृत्ति निरंकुश हो गई है। इसी का ही एक पहलू यह भी है कि वहाँ के साहित्य, वहाँ के पत्रों-पत्रिकाओं वहाँ के चलचित्रों एवं दूर दर्शन, वहाँ के साँस्कृतिक कार्यों और वहाँ के उपन्यासों तथा कथा-कहानी की पुस्तकों में इसको एक बहुत बड़ा स्थान दिया जाता है। 'काम' को लेकर वहाँ के कला-कृतियों, पुस्तकों के मुखपृष्ठों तथा नृत्य और गान में सब जगह एक अश्लीलता अथवा गँवारूपन छाया हुआ है।

percentages of such relationships vary according to the kind of social groups investigated. Practically, all such studies point to an increase of promiscuity.

(Sane Sex Order by P.A. Sorokin, page 11)

5. As a result of the mounting number of divorces, separations and desertions, about 12,000,000 of the 45,000,000 children in the United States do not live with both parents. Due to no fault on their own part, these children are deprived of security and love, and exposed to all the inclemencies of the half-parental and non-parental homes, or of no homes at all..... (Ibid, page8)
6. "Skipping centuries, contrast this with the state of affairs in the U.S.A., U.K., and many of the parts of Western Europe which lead in a high divorce rate, which is officially acknowledged. In the U.S.A. in particular, almost one in every three, marriages ends up on the rocks" -- Divorce: How to check a growing trend. (Sunday Standard, dt. the 12th June, 1971)
7. In America, in 1970, there was one divorce for every 33.7 marriages contracted; in the last few years, one per 2.5 to 3. In 1990, there were three divorce per 1000 married females; in 1946, 17.8 per 1000. (Sane Sex Order by Pitirim A. Sorokin, page7)
8. सोरोकिन महोदय (Mr. Pitirim A. Sorokin) ने एक पूरे अध्याय (Sexualisation of

इसी का अनुकरण आज भारत तथा पूर्व के अन्य देश भी करने लगे हैं। वे पवित्र बनने की चेष्टा करने की बजाय यह कहने लगे हैं कि “काम वासना तो स्वाभाविक है; इसकी अभिव्यक्ति के बिना भला कौन रह सकता है? स्त्री और पुरुष दो अलग-अलग जातियाँ बनी ही इसलिए हैं। उनमें आकर्षण होना स्वाभाविक है। पहले ये हमारे देश में दबे और छिपे रूप में था, अब वह ऐसा नहीं रहा।” वासना के वशीभूत लोग आँखें खोलकर यह नहीं देखते कि ‘काम’ विकार ने पश्चिमी देशों का कितना बुरा हाल किया है। आज जब पश्चिमी देशों के लोग आध्यात्मिक एवं चारित्रिक नेतृत्व के लिए भारत की ओर नज़र लगाए हुए हैं, तब भारत के लोग पश्चिम का अन्धानुकरण करने में लगे हैं।

हमने पहले भी बताया है कि फ्रायड के इस सिद्धान्त के परिणामस्वरूप कितने भयंकर परिणाम निकले हैं। परन्तु केवल परिणामों ही की बात नहीं, सैद्धान्तिक रूप से यदि हम देखें तो भी फ्रायड के मत में कई त्रुटियाँ हैं। स्वयं फ्रायड ने भी बाद में इस बात को स्वीकार किया की मनुष्य के जागृत एवं स्वप्न व्यवहार में अन्य भी कई मूल प्रवृत्तियाँ ‘काम’ की प्रवृत्ति-जैसे ही प्रभाव डालती हैं। उनके एक विश्व-विख्यात शिष्य जो युंग (Yung) नाम से प्रसिद्ध थे, इसी विषय में उनसे मतभेद होने के कारण उनसे अलग ही हो गये और उनके एक सहयोगी मनोविश्लेषक एडलर (Adler) ने भी उनसे अलग ही अपने विचार व्यक्त किये। उन दोनों के मन्तव्यों को भी आज मनोविज्ञान में काफी महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। उन्होंने अनेक दृष्टान्तों और निरीक्षणों के आधार पर यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि मनुष्य का व्यवहार और मनोव्यापार लैंगिक आकर्षण से नहीं बल्कि अधिकार चेष्टा (Instinct of

Modern Culture, pages 17 to 46) में यह बात स्पष्ट की है कि पिछले एक सौ वर्षों में, विशेषकर फ्रायड के समय में तथा उसके बाद, साहित्य, चित्र कला, सांस्कृतिक कार्यक्रम – गायन, वाद्य एवं नृत्यकला-विज्ञान, नैतिक एवं धार्मिक क्षेत्र, राजनीति इत्यादि पर किस प्रकार इस मत का बुरा प्रभाव पड़ा है।

9. Sigmund Freud, Introductory Lectures on Psycho-analysis (Penguin Books, Page 16)

possession) अथवा प्रभुत्व-चेष्टा (Instinct of Mastery) से प्रेरित होता है। कुछ भी हो, आज बहुत-से मनोवैज्ञानिक फ्रायड द्वारा बताये गये ओएडिपक्स काम्प्लेक्स (Oedipux Complex) और इलेक्ट्रा-काम्प्लेक्स (Electra Complex) की बात की निन्दा करते हैं¹⁰ और वे उसे स्वाभाविक न मानकर प्रतिवाद रूप में मानते हैं और बहुत-से लोग इस बात को नहीं मानते।

फिर, इस सत्यता के पक्ष में कई प्रमाण दिये जा सकते हैं कि पहले मानव-जाति में प्रेम का शुद्ध रूप था। अतः तब मानव देवता था। समयान्तर में यह प्रेम विकृत होता गया और इसने आसक्ति, मोह, लोभ और 'काम' का रूप ले लिया। फिर, कई कारणों से 'काम' विकार की अग्नि भी अधिकाधिक भड़कती गई। आज कई विचारक कहते हैं कि अवकाश अथवा धन की बहुतायत, स्त्री-पुरुष के कारखाने तथा दफ्तरों में इकट्ठे काम करने, कालेजों में इकट्ठे पढ़ने, क्लबों में इकट्ठे खेलने, शराब, माँस इत्यादि का अधिकाधिक प्रयोग करने, गाड़ियों में इकट्ठे घूमने, इकट्ठे ही सिनेमा, टी.वी. इत्यादि देखने, सन्तति-निरोध (Birth-Control) के साधनों का प्रयोग करने तथा ऐसे अन्य कई कारणों से वासना-वृत्ति और भी ज़्यादा हो गई है। समाचार-पत्रों में इस विषय में कई लेख छपते हैं।¹¹ तथा इस विषय में कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन सभी से स्पष्ट है कि काम विकार शुरू ही से नहीं चला आया, न ही यह मूल प्रवृत्ति है बल्कि यह तो बाद में प्रकट हुआ जब प्रेम विकृत हो गया और धीरे-धीरे सभी सीमाओं को तोड़ता गया जिससे कि यह आज की अवस्था को पहुँचा है।

10. Educational Psychology, by S.S. Mathur, Page 180.

11. Increasing affluence and, the consequent leisure which follows, have been assigned as two of the reasons for this trend.....Constant association with men at work often results in affairs which, in turn, sometimes lead to long-standing alliances, often breaking up the home followed by divorce.

One other by-product of affluence has been the emergence of drinks and drugs. Many an emotional and sexual relationship gets further cemented under the influence of these stimulants.

Perhaps, the single most important reason for promiscuous sex leading to separation has been the invention of male condom and the comparatively recent usage of the pill...." (Divorce: how to check a growing trend — **Sunday Standard**, dt. the 12th June. 1977)

फ्रायड के सिद्धान्तों द्वारा

‘काम’ का देह-अभिमान से उत्पन्न होना सिद्ध

खैर, इस वाद-विवाद में न पड़कर हम यहाँ इस ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं कि यदि फ्रायड के इस मत को ठीक भी मान लिया जाए (और इस बात को कुछ हद तक ठीक मानते हैं भी) कि बालक में प्रारम्भिक काल में अपने शरीर से प्यार (Narcissum) होता है और वह अपने शरीर द्वारा ऐन्द्रिय सुख की खोज करता है और कि बड़ा होने पर भी उसमें लैंगिक आकर्षण होता है तो इससे निश्चित रूप से यही तो सिद्ध होता है कि ‘काम’ विकार की उत्पत्ति दैहिक चेतना (body-consciousness) से होती है। शिशु काल में भी जब बालक तथा बालिकाएँ विभिन्न दैहिक रचना तथा उसके भेद के प्रति सचेत होते हैं, तभी तो उनमें यह काम्प्लेक्स (Oedipus and Electra Complex) जड़ें लेता है। अतः यदि वे आत्मिक चेतना (Soul-consciousness) की स्थिति में हों तो उनमें निश्चय ही इस प्रकार की प्रवृत्ति नहीं हो सकती।

फ्रायड के निरीक्षण कलियुगी लोगों ही के

फ्रायड ने जो निष्कर्ष निकाले, वे इस कलियुग के लोगों के निरीक्षणों पर ही आधारित थे और यह तो हम कहते ही हैं कि इस युग का हरेक व्यक्ति पक्का देह-अभिमान बन चुका है और काम ने हरेक मनुष्य के मन पर अपने डोरे डाले हुए हैं और यह संसार वेश्यालय बन चुका है। हम तो ज़ोरदार शब्दों में इस बात को स्पष्ट करते हैं कि द्वापर युग में मनुष्य धीरे-धीरे अधिकाधिक देह-अभिमान बनता गया और उसके फलस्वरूप उसमें ‘काम’ वासना (Sex-urge), अधिकार चेष्टा (wish for possession) और प्रभुत्व की इच्छा (urge for mastery) विकृत रूप में उत्तरोत्तर बढ़ती ही आई। इसके ये संस्कार बहुत पक्के हो गये। इन संस्कारों को ही फ्रायड ‘इड’(Id) अथवा अनकांशस माईन्ड (unconscious mind) का नाम देता है। नाम के इस अन्तर से बात में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता बल्कि यही सिद्ध होता है कि अब, जब कलियुग

का अन्तिम चरण है, मनुष्य जन्मकाल से ही देह-अभिमानी है, वह अपने आत्मिक स्वरूप को ही बिल्कुल भूला हुआ है और एकदम पतित हो चुका है। यहाँ तक कि वह इस वासना को स्वाभाविक मानने लगा है क्योंकि यह संस्कार उसमें कूट-कूटकर भरा है और कोई-कोई व्यक्ति वासना के अधीन पूरा शैतान बनकर अपनी माता अथवा अपने पिता की हत्या करने को भी उद्यत हो जाता है! हाय, हाय कैसा गुलाम बना दिया है मनुष्य को काम वासना ने!

आज पक्का देह-अभिमानी बन जाने के कारण ही मनुष्य केवल देह-भेद पर आधारित कुदृष्टि का कुठार लेकर आत्मा की पवित्रता की जड़ काटने में लगा है। वह केवल दैहिक ही सम्बन्धों के भान में जकड़ा है। इतना ही नहीं, वह स्त्रीत्व और पुरुषत्व के भान में बन्धा है। न केवल यह पति-पत्नी का नाता विकारी नाता मान रहा है बल्कि हरेक नाते का आधार लैंगिक आकर्षण मानने की पहाड़-जितनी बड़ी भूल कर रहा है। उसे यह भूल गया है कि पहले मनुष्य की प्रवृत्ति दिव्य थी और उसका प्यार पवित्र एवं दिव्य था। आज भी जिन लोगों में आध्यात्मिकता है वे अपने प्यार का पवित्रीकरण करते हैं। उनका दृष्टिकोण पति-पत्नी के सम्बन्ध के बारे में अथवा विवाह के बारे में भी फ्रायड के दृष्टिकोण से नितान्त भिन्न होता है। देखिये इस विषय में महात्मा गाँधी का क्या विचार है।

गाँधी जी 7 जुलाई 1946 के 'हरिजन' में कहते हैं¹² - "सच तो यह है कि विवाह का उद्देश्य नर और नारी में घनिष्टतापूर्ण मित्रता तथा साथीपन है और होना भी यही चाहिए। इस सम्बन्ध में वासना-तृप्ति का तो कोई भी स्थान नहीं है।

12. "Rightly speaking, the true purpose of marriage should be, and is, intimate friendship and companionship between man and woman. There is in it no room for sexual satisfaction. That marriage is no marriage which takes place for the satisfaction of the sex desire. That satisfaction is a denial of true friendship. I know of English marriages undertaken for the sake of the companionship and mutual service. If a reference to my own married life is not considered irrelevant, I may say that my wife and I tasted the real bliss of married life when we renounced sexual contact and that in the hey day of youth. It was then that our companionship blossomed and both of us were enabled to render real service to India and humanity in general. I have written about this in my 'Experiments with Truth.....' (Harijan, July 7, 1946)

वासना-भोग तो सच्ची मित्रता को भंग करने के समान है। मुझे इस बात का पता है कि अंग्रेजों के यहाँ इस प्रकार के विवाह होते हैं जिन में नर-नारी केवल एक-दूसरे के साथी मात्र ही होते हैं। यदि यहाँ मेरे अपने विवाहित जीवन का उद्धारण देना असामयिक न हो तो मैं कहूँगा कि मैंने और मेरी पत्नी ने विवाहित जीवन का वास्तविक आनन्द तभी अनुभव किया जब हमने वासनात्मक सम्पर्क का त्याग किया और वह भी तब जब हम भरपूर यौवन में थे।'

आप ने देखा कि गाँधी जी ने नर-नारी के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में क्या कहा? अब आप किन्चित गाँधी जी का उन लोगों के प्रति उत्तर पढ़िये जो कहते हैं कि वासना-भोग वैसे ही स्वाभाविक है जैसे कि भूख और प्यास अथवा शरीर के अन्य कार्य-कलाप।

गाँधी जी कहते हैं - "आज 'स्वाभाविक' (natural) शब्द का जितना दुरुपयोग हो रहा है उतना शायद अन्य किसी शब्द का नहीं हो रहा है।¹³ उदाहरण के तौर पर एक पत्रकार महोदय लिखते हैं - 'जैसे मनुष्य के लिए खाना और पीना स्वाभाविक है, वैसे ही क्रोध भी मनुष्य के लिए स्वाभाविक है।' एक दूसरा व्यक्ति दलील देते हुए कहता है - 'वासना की अभिव्यक्ति भी उतनी ही स्वाभाविक है जितनी कि शरीर की अन्य क्रियाएँ। यदि ऐसा न होता तो भगवान ने मनुष्य को ये कर्मेन्द्रियाँ न दी होतीं.....' अब वास्तविकता तो यह है कि यदि हम मनुष्य को पशुओं की श्रेणी में गिनें तब तो मनुष्य के लिए भी कई ऐसी-ऐसी बातें स्वाभाविक मानी जा सकेंगी जो कि पशुओं के लिए स्वाभाविक मानी जाती हैं। परन्तु यदि मनुष्य पशुओं से भिन्न अर्थात् ऊँच है, तब वह हर बात जो पशुओं के लिए

13. "No word seems to be more abused to-day than the word 'Natural!'. For instance, a correspondent writes: 'As eating and drinking are natural to man even so is anger.' Another seems to argue, 'the sexual function is as natural as the other functions of the body. Were it not so, God would not have endowed it to man....' Indeed if we were to put man in the same category as a brute, many things could be proved to come under the description 'natural'. But if they belong to two different species, not every thing natural to the brute is natural to man. Progress is man's distinction alone. Man does not live by the bread alone as the brute does. Of course, I will not carry conviction to one who makes no distinction between man and the brute. To him virtue and vice are convertible terms. While to man whose end and aim is the realisation of God, even the functions of eating and drinking can be natural only within certain limits....."

स्वाभाविक है, उसे मनुष्य के लिये स्वाभाविक नहीं माना जा सकता। उन्नति करना मनुष्य का विशेष गुण है; यह गुण केवल मनुष्य ही में पाया जाता है, अन्य पशुओं में नहीं। मनुष्य केवल रोटी खाकर ही जीवित नहीं रहता परन्तु पशु रहता है।

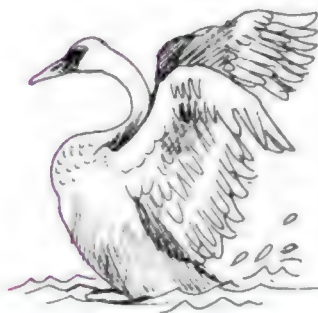
हां, मेरी यह बात उस व्यक्ति को, जो मनुष्य और पशु में भेद नहीं करता, नहीं जंचेगी। उसके लिए तो पुण्य और पाप पर्यायवाची शब्द हैं परन्तु जिस व्यक्ति के लिए परमात्मानुभूति जीवन का ध्येय अथवा लक्ष्य है, उसके लिए तो खाना-पीना भी एक मर्यादा ही के भीतर स्वाभाविक है...”

अस्तु। हमने देख लिया कि फ्रायड तथा उसके अनुयायियों का यह विचार कि वासना-भोग स्वाभाविक है, सभी को मान्य नहीं। अतः सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से भी फ्रायड का मत सर्वमान्य या त्रुटिरहित नहीं है। फिर, इस विचारधारा के प्रचार से जो जन-मानस को हानि हुई है, सो तो भयावह है ही।

इस सब चर्चा के बाद अब प्रश्न यह उठता है कि जो लोग काम के अभिशाप से मुक्त होना चाहते हैं वे क्या करें? अब काम पर विजय प्राप्त करने के लिए क्या क्या जाए? क्या काम-वासना को दबा दिया जाए? जन-मत और धार्मिक उपदेशों के भय से इस वृत्ति का दमन कर दिया जाए? और, इस प्रकार मानसिक अव्यवस्था मोल ली जाए? नहीं, हमारा यह अभिप्राय नहीं है परन्तु हम ऐसा भी नहीं कहते कि इसकी अभिव्यक्ति की जाए क्योंकि इसकी जितनी अभिव्यक्ति की जाती है उतना ही यह संस्कार पक्का होता है और उतना ही यह मनुष्य को अधिक गुलाम बनाता है। इसी प्रकार ही तो उससे समाज में स्वच्छन्दता और अनैतिकता बढ़ी है तथा व्यभिचार व अश्लीलता को बढ़ावा मिला है और पारिवारिक जीवन भी बिगड़-सा गया है। तब क्या हम इसकी अति को रोक कर इसे मर्यादित करने के लिए कहते हैं अथवा इसकी कोई सीमा निर्धारित करने का सुझाव देते हैं? नहीं, ऐसा भी नहीं, क्योंकि जिसको यह लत लग जाती है, उसकी यह आदत आगे ही बढ़ती है। हमारा कहना तो यह है कि हम एक ऐसे समाज की स्थापना के लिए प्रयत्नशील हों जिसमें मनुष्य में यह वासना होती ही नहीं। इसके लिए हम इस वासना का

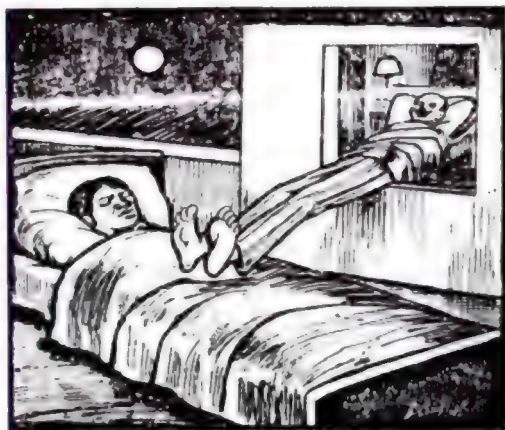
दमन नहीं बल्कि इसका शुद्धिकरण अथवा दिव्यीकरण करें और इसके लिए हम 'आत्मा-निश्चय' बनने का अभ्यास करें। यह बात अनुभव सिद्ध है कि जब मनुष्य आत्मिक दृष्टि को अपना लेता है तो उस स्थिति में देह का आकर्षण उसे प्रभावित ही नहीं करता। अतः इसके लिए हमें अपने दृष्टिकोण को बदलने की ज़रूरत है। जब मनुष्य का ज्ञान-चक्षु खुल जाता है तब वह केवल इन स्थूल नेत्रों से, देहभाव से ही नहीं देखता बल्कि आत्मिक नाता अनुभव करता है जिसके कारण उसके प्यार का शुद्धिकरण हो जाता है।

अतः संक्षेप में हम यह कहेंगे कि इस बात से इन्कार नहीं है कि आज मनुष्य में कामवासना स्वाभाविक रूप ले चुकी है परन्तु हमें यह मालूम होना चाहिए कि यह मनुष्य का आदिम स्वभाव (Original Nature) नहीं है बल्कि यह मनुष्य के 'प्रेम' नाम के स्वाभाविक गुण का विकृत रूप है जिसके परिणामस्वरूप संसार में दुःख बढ़े हैं और संसार का पतन हुआ है। अब हमें इस प्यार का शुद्धिकरण करके पुनः इस संसार को पवित्र एवं सुखमय बनाना है और इस पवित्रीकरण के लिए हमें आत्मनिष्ठ होने और योगाभ्यास करने की ज़रूरत है और उसके लिए संसार को ज्ञान-नेत्र से देखने का अभ्यास करना है।



काम सोये वा घर में, पाँव पसारे या घर में

जब किसी देश की सरकार सोती अपने देश में है, परन्तु पाँव भारत में पसारती हो, तब उसके इस कुकृत्य को देखकर भारतवासी उन्हें सीधा करने की तैयारियों में लग जाते हैं। जिन दिनों पाकिस्तान या चीन ने भारतीय इलाके में पाँव पसारे थे तब भी भारतवासी चौंक उठे थे और सभी एक स्वर से बोल



उठे थे कि पाकिस्तान की फौजों को यहाँ से निकाल बाहर करना चाहिए।

परन्तु एक और शत्रु जो शताब्दियों से घुसा हुआ है और सबको परेशान कर रहा है उसकी ओर जनता तथा सरकार का ध्यान नहीं है। उसको निकाल बाहर करने के लिए लोग तैयारियाँ

नहीं कर रहे। वह महाशत्रु है — 'काम'विकार।

काम विकार ने मनुष्य को मदारी के रीछ की तरह नचा रखा है। यह एक व्यक्ति के मन में डेरा डालकर, वहीं से दूसरे की भी तार खींचता है। जब यह किसी पुरुष के मन में उत्पन्न होता है तो वहाँ से ही स्त्री पर पाँव पसारता है, उससे प्रस्ताव करता है और उसे उकसाता है। अतः इसके बारे में यह कथन सत्य है कि "काम सोये वा घर में, पाँव पसारे या घर में।"

जब कोई शत्रु किसी देश पर आक्रमण करता है तो पहले वहाँ की सप्लाय लाइन, सेक्रेटेरियट, टेलीविजन, रेडिओ, छावनी, हवाई अड्डों, जलयानों आदि-आदि पर अपना कब्जा जमाता है। 'काम' ने भी इन सब पर अपना कब्जा जमा रखा है। परमात्मा से योग ही मनुष्य की सप्लाय लाइन है क्योंकि वहाँ से मनुष्य को शक्ति की रसद मिलती है। काम ने मनुष्य का योग

तोड़ दिया है। बुद्धि ही मनुष्य का सेक्रीटेरियट (Secretariat) है क्योंकि यहाँ ही निर्णय होता तथा नीति निर्धारित होती हैं। मनुष्य का मन ही टेलीविजन है; इस पर भी काम ने कब्जा कर रखा है और ईश्वरीय चित्रों तथा वचनों की बजाय काम ही के चित्र तथा किस्से मन में उभरते रहते हैं। मनुष्य की वाणी ही रेडियो (आकाशवाणी) है। इस द्वारा भी मनुष्य आज काम ही की चर्चा करता है। मनुष्य की कर्मेन्द्रियाँ ही छावनी के समान हैं। इस छावनी पर आज काम ही का अधिकार हो चुका है। हवा में उड़ने वाले पक्षी तथा पतंगे और जल में बसने वाली मछलियाँ, मगर आदि जीवों को भी 'काम' ने आज अपने ही हवाई अड्डे और जलयान बना रखा है। अतः आज काम ही का एकछत्र राज्य है। काम ही का चक्रवर्ती राज्य है।

ऐसी आपतकालीन परिस्थिति में परमपिता परमात्मा शिव अवतरित होकर कहते हैं कि "अब मेरे सहयोग से इस काम-रूपी महाशत्रु पर विजय प्राप्त करो तो तुम भी चक्रवर्ती राजा बन जाओगे। इस काम को तुम निकाल बाहर करो तो जल, थल, नभ, जीव-प्राणी सभी सुखी हो जायेंगे। फिर एक देश के लोग दूसरे देशों में पाँव नहीं पसारेंगे।"



एक से अनेक की उत्पत्ति

अब परमपिता परमात्मा शिव ने समझाया है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार, जो विकार हैं उनमें से काम मनुष्य का महाशत्रु है क्योंकि काम से ही अन्य विकारों की भी उत्पत्ति होती है। इस विषय में कई लोग सोचते हैं कि काम से अन्य विकारों की भला कैसे उत्पत्ति होती है? काम ही सभी विकारों का मूल कैसे है?

कुछ लोग 'काम' का अर्थ 'कामना' मानते हैं। अशुद्ध कामनाओं से तो विकारों की उत्पत्ति होती ही है, परन्तु यहाँ 'काम' का विशेष अर्थ देह के नाम-रूप, स्पर्श, सम्बन्ध इत्यादि के भान अथवा उसके प्रति अशुद्ध आकर्षण है। काम-चेष्टा की स्थिति में मनुष्य के मन में शरीर के प्रति राग और स्त्री में ममत्व और देह-अभिमान तो समाया ही होता है। अतः जब 'काम' अर्थात् मैथुन के परिणामस्वरूप सन्तति होती है तो सन्तान, स्त्री और सम्पत्ति में मनुष्य का मोह जाग्रत होता है। जब अशुद्ध प्यार में अथवा काम-चेष्टा के भोग में कोई बाधा पड़ती है अथवा 'काम' से उत्पन्न हुए उसके बच्चों को कुछ कष्ट पहुँचता है या उनकी कोई मनोकामना पूरी नहीं होती तो 'क्रोध' की उत्पत्ति होती है। इसलिए ही कहा गया है कि 'कामात् क्रोधोऽभिजायते' अर्थात् काम से क्रोध की उत्पत्ति होती है। स्त्री और सन्तान के दुःखों की निवृत्ति करना चाहते हुए अथवा उनकी आवश्यकताओं एवं लौकिक कामनाओं को पूर्ण करना चाहते हुए मनुष्य के मन में लोभ जाग्रत होता है। "मैं अपने कुटुम्ब के लिए अधिक-से-अधिक धन इकट्ठा करूँ, अधिक सुख-सामग्री जुटाऊँ, महल-माड़ियाँ बनाऊँ, सम्पत्ति एकत्रित करूँ, इस प्रकार ही मनुष्य का चिन्तन चलता है।

तब मनुष्य के मन में यह भावना जाग्रत होती है कि - "मैं घर का स्वामी हूँ, मैं स्त्री का पति हूँ, इन बच्चों का पिता हूँ, यह सब धन-माल मेरा है, मैं अमुक हस्ती वाला हूँ, अमुक दर्जे वाला हूँ, अमुक कुटुम्ब का मनुष्य हूँ" - इस प्रकार उस पर अहंकार का रंग चढ़ता है।

इससे सिद्ध हुआ कि 'काम' ही मनुष्य का महाशत्रु है। इसने मनुष्य को

आदि, मध्य और अन्त दुःखी किया है क्योंकि कामी मनुष्य विकारी अर्थात् आसुरी सृष्टि रचता है और दूसरों के जीवन को नर्कमय बनाता है। उसकी सन्तति में भी “यथा पिता तथा पुत्र” के नियमानुसार वही संस्कार (मोह, अहंकार आदि) भर जाते हैं तथा कामी मनुष्य अपनी सन्तान को भी कुमार्ग पर लगाकर, सन्तति का भी अकल्याण करता है। इस प्रकार, वह अपने तथा दूसरों के जीवन में जन्म-जन्मान्तर के लिए दुःख और अशान्ति तथा विकार और विकर्म लाने का निमित्त बनता है।

जब सृष्टि में ‘काम’ रूपी विकार नहीं था तब क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार भी न थे। इसलिए, तब सृष्टि पर पूर्ण सुख था और पूर्ण शान्ति थी। अगर मनुष्य को किसी ने दुःखी किया तो वह ‘काम’ ही है। इसलिए, सारे ज्ञान का सार यह है कि काम को, नाम-रूप के भान को अथवा देह के प्रति अशुद्ध आकर्षण को समाप्त किया जाय। जब तक मनुष्य के मन में यह विकार है तब तक उसके जीवन में शान्ति और शीतलता, आनन्द और उपराम वृत्ति, एकाग्रता और एक-रस अवस्था नहीं आ सकती।

कुछ लोग तो समझते हैं कि अपनी स्त्री के साथ काम का सम्बन्ध कोई विकार नहीं होता। परन्तु प्रश्न यह है कि अपनी स्त्री के साथ हो या अन्य किसी के साथ ‘काम’ तो ‘काम’ ही है। अतः इसे विकार तो माना ही जायेगा। उससे क्रोध, लोभ और मोह की उत्पत्ति तो होती ही है। उसके परिणामस्वरूप मनुष्य को कष्ट, दुःख अथवा अशान्ति तो भोगनी ही पड़ती है। निश्चय ही वह मनुष्य ज्ञान की रसना का, योग के आनन्द का और अतीन्द्रिय सुख का तो अनुभव नहीं कर सकता। क्या आज तक कोई ऐसा मनुष्य हुआ है जो काम-वासना का भी भोग करता रहा हो और आत्मिक सुख तथा ईश्वरीय आनन्द का भी अनुभव करता रहा हो? काम-विकार के कारण ही तो मनुष्य को गर्भ-जेल से लेकर मृत्यु तक इस सृष्टि में अपने विकर्मों का दण्ड भोगना ही पड़ता है। काम को विकार मानने के कारण ही तो लोग काम चेष्टा का गुप्त ही रीति से उपभोग करते हैं। अतः यदि मनुष्य सर्वदा सुख और शान्ति का जीवन प्राप्त करना चाहता है तो वह भले ही युगल जीवन व्यतीत करे परन्तु उसे

कमल पुष्प के समान पवित्र, देही-निश्चय-बुद्धि और कर्मातीत होकर रहना चाहिए।

जबकि 'काम' देह-अभिमान ही के कारण है और ज्ञान को नष्ट करने वाला है, तो ज्ञान और काम दोनों इकट्ठे कैसे रह सकते हैं? जबकि परमात्मा को ज्ञानी आत्मा प्रिय है और ज्ञानी आत्मा-अभिमानि होता है तो परमात्मा से योग-युक्त होना चाहने वाला मनुष्य इसे छोड़े बिना कैसे रह सकता है?

अतः सभी दुःखों के कारण रूप 'विकारों' को नष्ट करने के लिए विकारों के भी मूल 'काम' को नष्ट करना ज़रूरी है। काम को नष्ट करने के लिए उसके मूल 'देह-अभिमान' को नष्ट करना ज़रूरी है, देह-अभिमान को मिटाने के लिए अज्ञान की निवृत्ति आवश्यक है; अज्ञान की निवृत्ति और देही-निश्चय में स्थिति ज्ञान और योग से ही होती है और वास्तव में ज्ञान और योग की शिक्षा गीता के भगवान ही उस समय अवतरित होकर देते हैं जबकि सभी मनुष्य 'काम' से (मैथुन से) उत्पन्न होते हैं और स्वयं भी काम-वासना से युक्त होते हैं अर्थात् जब योग-बल और धर्म-बल की पूर्ण हानि हो गई होती है। अतः धर्म-ग्लानि के वर्तमान समय परमात्मा ही से ज्ञान और योग की शिक्षा प्राप्त करके काम-रूप महाशत्रु को जीतना चाहिए क्योंकि अब योग-भ्रष्ट, धर्म-भ्रष्ट, देह-अभिमानि और कामी सृष्टि की बजाय योगनिष्ठ एवं पूर्णतः पवित्र सृष्टि की पुनः स्थापना का समय है।



जीवन की यह नड़या, काम हवाले या राम हवाले?



यदि किसी भले मनुष्य से यह पूछा जाय कि उसको स्वच्छ एवं नैतिकता-पूर्ण 'शिवालय' अच्छा लगता है या वेश्यालय, तो निःसन्देह वह तुरन्त ही उत्तर देगा कि 'शिवालय' ही अच्छा लगता है। वह वेश्यालय की तो बात करना भी पसन्द नहीं करेगा।

शिवालय और वेश्यालय दोनों ही बने तो एक ही मिट्टी-पत्थर, चूने-गारे अथवा सीमेंट-रेत से होते हैं परन्तु उन दोनों में महान अन्तर होता है। वह अन्तर पवित्रता और अपवित्रता का है अथवा भगवान और शैतान का या 'राम' और 'काम' ही का है। शिवालय अथवा देवालय में तो मनुष्य परमात्मा अथवा देवताओं ही की स्मृति में मन को लगाता है, वहाँ विषय-वासनाओं की बात कोई नहीं करता। इसी प्रकार, सभी मनुष्य-देह भी बने हुए तो हड़्डी-माँस और रक्त-मज्जा इत्यादि के हैं परन्तु मनुष्य के मन में राम बसता है या काम, इसका भेद बहुत भारी है। यदि मनुष्य के मन में शिव की याद बसती है तो उसका मन 'शिवालय' है और यदि उसमें कामादि वेश्या-वृत्ति है तो वह 'वेश्यालय' है।

अपने तन और मन से मनुष्य भला भी बन सकता है और बुरा भी। इस तन-मन से 'काम' का स्मरण और 'काम' ही का भोग करके मनुष्य नरक में जाता है और इसी तन-मन से मनुष्य राम की स्मृति करके और भगवान से योग लगाकर स्वर्गगामी होता है।

**शास्त्रों के ढेर हैं परन्तु काम को जीतने के लिए
ज्ञान-शास्त्रों के ढेर नहीं हैं**

आज लोग शिवालयों और मन्दिरों में जाते हैं परन्तु मन को शिवालय अथवा मन्दिर नहीं बनाते। वे ज्ञान के लिए अपने पास शास्त्रों के ढेर लगाकर

रखते हैं परन्तु इन विकारों को जीतने के लिए 'ज्ञान-शास्त्र' अपने पास नहीं रखना चाहते। वे रामायण की इस प्रकार की चौपाइयाँ और दोहे तो पढ़ते हैं कि 'काम, क्रोध, मद लोभ की जब लग घट में आन, पण्डित हो या मूर्खा दोनों एक समान', परन्तु वे अपने मन में इन विकारों को आने देते हैं और नित्य राम के सामने इतना कहकर सन्तोष कर लेते हैं कि 'हे नाथ, मैं तो कामी और मूर्ख हूँ।' बस, वे राम के 'नाम लेवा' ही है 'गुण लेवा' नहीं हैं! वे राम को 'दाता' कहते हैं परन्तु उस दाता से पवित्रता लेते नहीं हैं।

शैतान बना मेहमान और राम चले वनवास

इसी प्रकार, गीता-पाठी भी गीता में भगवान के ये महावाक्य नित्य पढ़ते हैं कि - 'हे वत्स, 'काम' मनुष्य का महावैरी है। इसको तू ज्ञान रूपी तलवार से मार', परन्तु वे यह समझते हैं कि यह आज्ञा भगवान ने अर्जुन को दी थी; वे उसे अपने लिए नहीं मानते। तभी तो वे काम रूपी महाशत्रु को मन से बाहर निकालने की बजाय, उसे अपने एक इष्ट और घनिष्ट मित्र की तरह अपने मन में स्थान देते हैं। वे समझते हैं कि राम को हृदय में बसाना तो वनवासी साधुओं का काम है और गृहस्थियों का धर्म तो 'काम' रूपी शैतान को मेहमान बनाना है। इस प्रकार उन्होंने राम की याद को अपने मन से निकालकर मानो राम को वनवास दे दिया है।

राम और 'काम' एक सिंहासन पर नहीं बैठ सकते

रामायण और गीता की तो बात छोड़ दीजिये, वैसे भी लोग कहते हैं कि आत्मा अपने परमप्रिय परमपिता परमात्मा से इसलिए नहीं मिल सकती कि आत्मा पर इन विकारों का मैल बहुत चढ़ा हुआ है। परन्तु इस बात को जानते और मानते हुए भी वे काम रूपी मल को हटाने का प्रयत्न नहीं करते, बल्कि राम की बजाय काम से उनकी अधिक प्रीति है। मनुष्य जानता है कि एक सिंहासन पर दो राजा नहीं बैठ सकते परन्तु अपने हृदय रूपी सिंहासन पर वे 'काम' और 'राम' अथवा शैतान और भगवान दोनों को बिठाना चाहते हैं। लेकिन क्या कभी ऐसा हुआ है? कभी एक सिंहासन पर दो राजा बैठे भी हैं? लोग काम को हटाकर राम को बिठाने की बात को तो सुनकर अनसुना ही

कर देते हैं। अतः वे शैतान (काम) ही का वर्सा दुःख रूप में भोग रहे हैं। भगवान का जो वर्सा सुख व शान्ति है, उससे वे वन्वित हैं और पापात्मा ही बने हुए हैं।

प्रातः को 'राम' का नाम, रात्रि को 'काम' का नाम

सभी जानते हैं कि काम विकार को छोड़ने से ही मनुष्य महान आत्मा (महात्मा) बनता है और शान्ति को प्राप्त होता है। साधु-सन्तों, महात्माओं तथा देवताओं और कन्याओं की महिमा इसीलिए ही होती है कि वे काम विकार से सुरक्षित होती हैं। बाद में जब वही कन्याएँ अपवित्र हो जाती हैं तो वे वन्दनीय नहीं रहतीं बल्कि वन्दन करती हैं। परन्तु इन सभी बातों को जानते हुए भी मनुष्य प्रातः को राम का नाम लेता है और रात्रि को 'काम लेवा' बन जाता है। यह भला कैसी प्रभु प्रीति अथवा कैसी भक्ति है?

कहने को तो प्रायः सभी कहते हैं कि हम सभी भगवान के बच्चे हैं; भगवान ही हमारे माता-पिता, सहायक, स्वामी, सखा और एक नाथ हैं; यह सभी वसुधा (सृष्टि) ही हमारा कुटुम्ब है, परन्तु यदि ऐसी ही बात है तो फिर अपने ही 'कुटुम्ब' के सदस्यों के प्रति काम रूपी कुदृष्टि क्यों है? यदि सभी भगवान की ही वंशावली है तो एक ही पिता के बच्चों अर्थात् एक ही घर के बहनों-भाइयों में काम-कटारी क्यों चलती है? फिर भगवान के घर को पलीद क्यों करते हैं? अतः सिद्ध है कि कथनी से तो राम के ही मालूम पड़ते हैं परन्तु करनी से वे 'काम' ही के हैं। उनके मुँह में तो राम नाम है परन्तु बगल में काम की छुरी है।

वंश 'गुणों' से बढ़ा करते हैं, काम रूपी 'धुनों' से नहीं बढ़ते

कई मनुष्य कहते हैं – “यदि काम को विकार मानकर हम इसे बिल्कुल ही छोड़ दें तो वंश या वंशावली कैसे बढ़ेगी और यह सृष्टि कैसे चलेगी?” परन्तु दूसरी ओर वे स्वयं ही कहते हैं कि – “आजकल सन्तान तो बिच्छू-टिंडन की तरह है। आजकल के बच्चे तो धुन्धकारी और अवज्ञाकारी हैं। वे श्रीराम और श्रीकृष्ण-जैसे गुणवान और चरित्रवान नहीं हैं।” सोचने की बात है कि जिस वंश को वे बढ़ाना चाहते हैं, वह कोई दैवी वंश तो है नहीं। उस वंश से तो संसार में रोग, शोक और भोग ही बढ़ रहे हैं। उनसे तो यह संसार काँटों का जंगल

अथवा दुःख-धाम अथवा नरक बन गया है। क्या नरक के वंश को बढ़ाना चाहिए या स्वर्ग के दैवी वंश को? कितने आश्चर्य की बात है कि आज मनुष्य अपनी दृष्टि को ठीक करने को नहीं सोचते, सृष्टि की बात सोचते हैं जबकि सृष्टि का मालिक ही कहता है कि - “हे वत्स, यह ‘काम’ नरक का द्वार है; इस आसुरी स्वभाव वाली सृष्टि का अब मुझे महाविनाश करना है,” तो फिर “सृष्टि कैसे बढ़ेगी?” यह पूछना मानो छोटे मुँह बड़ी बात करना ही तो है। वंश तो सदा ‘गुणों’ ही से बढ़ता और फलता-फूलता है। परन्तु अब तो वंश को काम का ‘धुन’ खा गया है। अब भगवान कहते हैं कि आप पहले ब्रह्मचर्य का पालन करो और गुणवान बनो तो आने वाली सतयुगी सृष्टि में योगबल द्वारा श्रीकृष्ण के समान दैवी स्वभाव वाले, निरोगी, चरित्रवान, श्रेष्ठाचारी और सदा सुखी बच्चे पैदा होंगे। अब काम के बीज से जो बच्चे पैदा होते हैं वे प्रभु-वंशी नहीं हैं, मायावंशी हैं।

सत्य के नाश से सत्यानाश

सत्य (ब्रह्मचर्य) के नाश होने से तो वंशावली का सत्यानाश होता है। अतः जानने की बात है कि अब यह काम विकार वाली तथा आसुरी स्वभाव वाली सृष्टि नहीं चलेगी; अब तो इसके विनाश की सामग्री तैयार हो चुकी है। अब तो लौकिक सरकार भी कहती है कि यह काम-भोग बन्द अथवा कम होना चाहिए। परन्तु भगवान कहते हैं कि अब इस काम के गन्दे धन्धे को बिल्कुल ही बन्द करो वरना कामाग्नि और क्रोधाग्नि से यह सृष्टि तो जलने ही वाली है। सृष्टि का थमाव, बचाव और बढ़ाव पवित्रता पर ही निर्भर होता है। ‘काम’ और ‘अपवित्रता’ से तो यह पृथ्वी हिल जाती है और मनुष्यों का नाम-निशान ही मिट जाता है। अतः काम द्वारा सृष्टि को बढ़ाने का स्वप्न लेना मानो जलते हुए जंगल में काँटों के और ढेर लगाने का कर्म करना है।

कई कहते हैं कि सभी लोग पवित्र थोड़े ही बन सकते हैं? परन्तु वास्तव में ‘सभी’ की बात को छोड़कर मनुष्य को पहले ‘अपने’ कर्मों की ज़िम्मेदारी समझनी चाहिये। सभी डाक्टर या इन्जीनियर या प्रोफेसर नहीं बनते - ऐसा सोचकर स्वयं भी अनपढ़ रहने की सोचना महान भूल है। इसी प्रकार, सभी काम

विकार को यदि नहीं छोड़ सकते तो स्वयं भी पवित्र बनने का पुरुषार्थ छोड़ देना तो मूर्खी ही का काम है। अल्लाह-जैसा बनने का पुरुषार्थ छोड़कर उल्लू-जैसा बनने का पुरुषार्थ करना किसी बुद्धिमान् का काम नहीं हो सकता।

आज जब हम मनुष्यों को पवित्र बनने के लिये कहते हैं तो वे बोल उठते हैं – “आप इस बात पर अधिक बल क्यों देते हैं? हर एक का अपना-अपना मत है। हम अपने मत से चलेंगे और देखा जायेगा, जो हालत सारे संसार की होगी वह हमारी भी हो जायेगी। हमें कोई चिन्ता नहीं है।”

हाँ, संसार में आज सबका अपना-अपना मत है। परन्तु अपने-अपने मत पर चलकर ही तो सभी दुःखी हुए हैं। यदि वे सुखदाता परमपिता परमात्मा के श्रेष्ठ मत पर चलते तो सुख व शान्ति प्राप्त कर सकते। अतः “देखा जाएगा,” – ऐसा कहना गलत है क्योंकि अपने मत पर चलने का परिणाम तो सब अब भी देख ही रहे हैं। परमात्मा हमारे परम हितैषी एवं परम बुद्धिमान परमपिता हैं। अपने मत को परमात्मा के मत से श्रेष्ठ मानना तो “थोथा चना बाजे घना” वाली उक्ति पर आचरण करना है। परमात्मा परम-पवित्र हैं और वह हमें पूर्ण पवित्र बनने की आज्ञा देते हैं। अतः हमें उनका आज्ञाकारी बच्चा बनना चाहिए। केवल उनकी यह महिमा ही करते रहना कि “हे प्रभु, आप परम-पवित्र हैं”, इतना ही काफी नहीं है, बल्कि हम बच्चों का कर्तव्य है कि हम भी पवित्र बनें ताकि वह सतयुग का ज़माना लौट आये जिसमें सन्तान पवित्रता और योग के बल से पैदा होती थी, न कि काम विकार से।



लक्ष्मी बनना चाहिए, कुलक्षणी नहीं?

कुछ लोगों का यह मन्तव्य है कि गृहस्थाश्रम में तो काम विकार की छुट्टी है। वे कहते हैं कि, “अभी तो पवित्र रहने की हमारी अवस्था नहीं है। जब हम वृद्ध होंगे अथवा संन्यासाश्रम में प्रवेश करेंगे तब हम इस विकार को छोड़ देंगे। अभी तो इस विकार को भोगना गृहस्थ धर्म है। यह तो निभाना ही है, वरना शादी करने और गृहस्थी बनने का कोई अर्थ ही नहीं है। गृहस्थ में इसका भोग करने के लिए तो हमारे धर्मशास्त्रों और महात्माओं की आज्ञा है। हाँ, हम दूसरी नारियों के प्रति कुदृष्टि नहीं रखते।”

इस विषय में हम पूर्व के लेख में बता आये हैं कि यह मान्यता गलत है। सोचने की बात यह भी है कि ऐसे गृहस्थ को तो ‘आश्रम’ की संज्ञा हम दे ही नहीं सकते, कारण कि ‘आश्रम’ पवित्र स्थान का नाम है। आज लोगों की अज्ञानता और अपवित्रता के कारण ‘घर’ अलग और ‘आश्रम’ अलग बन गए हैं, सो बात अलग है।

आज भी जब विवाह होने पर वधू वर के घर आती है तो वर के माता-पिता कहते हैं, “लक्ष्मी हमारे घर आई है।” परन्तु वर और वधू की गृहस्थी में काम का प्रवेश हो जाने के कारण वे श्री लक्ष्मी-श्री नारायण की तरह पवित्र तो रहते नहीं हैं। उनके गृहस्थ में और श्री लक्ष्मी-श्री नारायण के गृहस्थ में यही तो अन्तर है। यदि यह अन्तर न होता तो आज के गृहस्थी युगल-मूर्त श्री लक्ष्मी-श्री नारायण की पूजा क्यों करते ? अतः इस बात को जानकर अब हमें श्री लक्ष्मी के समान गुण धारण करने चाहिएँ, कुलक्षणी नहीं बनना चाहिए; केवल उनका नाम लेने से या उनकी पूजा से काम नहीं चलेगा।

‘वृद्धावस्था में हम पवित्र बनेंगे’ – ऐसा सोचना भी स्वयं को धोखा देना है क्योंकि आज कितने आदमी वृद्धावस्था तक अपनी पूरी आयु को भोग पाते हैं? अनेक तो वृद्ध अवस्था से पहले ही मौत के शिकार हो जाते हैं। और फिर वृद्धावस्था में ‘पवित्रता’ का प्रश्न ही कहाँ उठता है?

बात यह भी है कि संस्कार पक्के हो जाने पर पुरुषार्थ करना कठिन होता

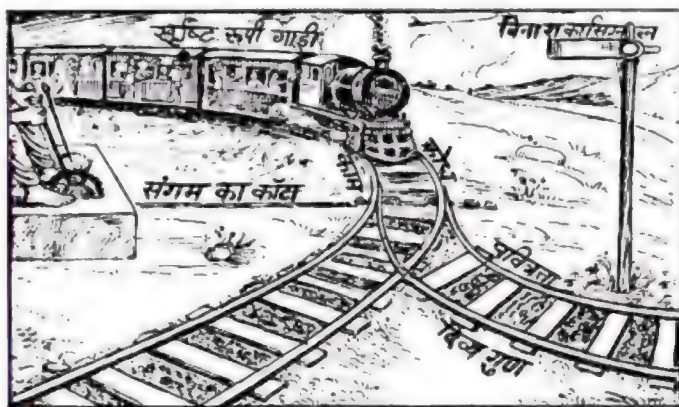
है। बुराई को तो शुरू ही में जड़ से उखाड़ देने में ही बुद्धिमानी है। हम पहले भी कह आये हैं कि वास्तव में लक्ष्य तो सारा जीवन ही ब्रह्मचर्य का पालन है परन्तु बाद में (द्वापर युग से) मनुष्यों के लिए 25 वर्ष तो अनिवार्य रूप से पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने का नियम बनाया गया था। यदि 'जीवन-भर' ब्रह्मचर्य-पालन का लक्ष्य सामने न होता तो स्वयं 'महात्मा' लोग सारा जीवन ब्रह्मचर्य व्रत क्यों धारण किये रहते और गृहस्थियों को महात्मा न मानकर संन्यासियों को ही लोग 'महान-आत्मा' क्यों मानते?

परन्तु यह सब सुनने पर भी कई लोग कहते हैं — 'अजी, गृहस्थ में रहते हुए इस काम-विकार को जीतना भला कैसे सम्भव है? काम-विकार तो स्वाभाविक है। स्त्री और पुरुष तो आग और कपास के समान हैं। ये इकट्ठे होंगे तो आग अवश्य लगेगी। घी का कनस्तर (Canister) अगर अग्नि के पास पड़ा होगा तो पिघलेगा अवश्य'। अतः घर में रहते हुए काम-विकार को जीतना असम्भव ही है। परन्तु वे भूल जाते हैं कि परमपिता परमात्मा शान्ति के सागर हैं; उनके योग से यह कामाग्नि शान्त हो जाती है।

अब सृष्टि रूपी गाड़ी ने पटरी बदलनी है

द्वापर युग के आरम्भ से लेकर अब तक यह सृष्टि रूपी गाड़ी काम और क्रोध इत्यादि विकारों की पटरी पर चलती आई है। परन्तु अब विश्व कल्याणकारी पुरुषोत्तम संगमयुग आ पहुँचा है। अब कलियुग का अन्त होना है और सतयुगी पवित्र एवं देवताई सृष्टि की पुनः स्थापना होनी है। अब ईश्वरीय ज्ञान तथा योग द्वारा इसका काँटा बदलना है। निकट भविष्य में ऐटम और हाइड्रोजन बमों द्वारा कलियुगी विकारी सृष्टि के महाविनाश का सिग्नल (Signal) डाउन होने वाला है। अब सृष्टि रूपी गाड़ी को ज्ञान और योग द्वारा विकारों की पटरी बदलकर (छोड़कर) पवित्रता तथा दिव्य गुणों की पटरी पर चलना है।

लोग स्वयं ही तो प्रतिदिन गाते हैं "मैं मूरख, खल, कामी, कृपा करो भर्ता।" स्पष्ट है कि परमात्मा की कृपा से पहाड़ भी तिनका बन जाता है। अतः जो काम-विकार अभी अजेय मालूम होता है, सर्वशक्तिवान परमात्मा से शक्ति



प्राप्त करने पर उसे जीतना सहज हो जाता है। परन्तु यदि कोई बच्चा यही कहता रहे कि - “घुटने के बल चलना तो मनुष्यजात के लिए स्वाभाविक है” तो यह उसकी बाल-बुद्धि की भूल है। वास्तव में वह बच्चा किसी समर्थ की अंगुली पकड़ कर खड़ा होकर पाँव पर चलना सीख सकता है। इसी प्रकार, परम शिक्षक एवं सद्गुरु परमात्मा की ज्ञान तथा योग-रूपी अंगुली पकड़ने से हम पवित्रता के पथ पर चलना सीख सकते हैं, क्योंकि वही एक सर्व समर्थ हैं। ऋषि-मुनि, साधु-सन्त, गुरु-गुसाईँ इसके योग्य हमें नहीं बना सकते। इस काम रूप विषय-सागर से पार करने वाला पतित-पावन वह एक निराकार ‘राम’ ही है। इसलिए ‘खेवनहार’ ‘तारन-हार’, ‘पतित-पावन’ इत्यादि शब्दों से एकमात्र उसी ही का गायन होता है। परन्तु आज मनुष्य ने जीवन की नइया ‘काम’ हवाले कर रखी है और फिर कहता है कि इस विषय-सागर से पार उतरना तो असम्भव है; गृहस्थ के बेड़े का विकारों की मंझधार में गोते खाना तो स्वाभाविक है। यदि मनुष्य अपने गृहस्थ की नइया ‘राम’ के हवाले कर दें, यदि वे ईश्वरीय ज्ञान तथा योग के चप्पुओं को सँभालें तो यह नइया अवश्य ही काम के भँवर से पार लग सकती है। ऐसा यहाँ प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय में अनेक गृहस्थों का अनुभव है।

अतः अब कायरता को छोड़ना चाहिए और पुरुषार्थ-रूपी धनुष का चिल्ला चढ़ाकर ज्ञान-रूपी बाणों से तथा योग-रूपी ढाल से काम रूपी शत्रु का सामना करने के लिए खड़ा होना चाहिए और भगवान को सारथी बनाना चाहिए। तब

निश्चय ही हड्डी-माँस और वात-कफ़ के इस शरीर का मोह नष्ट होगा तथा 'काम' विकार का मोह भी नष्ट होगा और विजय मिलेगी। शरीर-रूपी मिट्टी के साथ बार-बार खेलकर, अपना सर्वनाश करने के बहानों को अब छोड़ना चाहिए। वरना एक दिन मनुष्य पर काल का साँचा चढ़ा होगा और यह माँस का ढाँचा भी जला दिया जाएगा!



संकल्प-बन्दी

यदि शरीर-विज्ञान और मनोविज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो काम-चेष्टा का सम्बन्ध शरीर की एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थि (gland) से है जिसे 'पिट्युटरी' (Pituitary gland) अथवा 'पीयूष ग्रन्थि' कहते हैं। यह ग्रन्थि मानव की खोपड़ी में, मस्तिष्क के नीचे परन्तु अति निकट ही, भृकुटि के पीछे स्थित है। हठ-योगी लोग यहीं 'आज्ञा-चक्र' मानते हैं। उनका विचार है कि मनुष्य के मन में जो चेष्टायें उठती हैं, उनको क्रियान्वित करने के लिये आज्ञा यहाँ से दी जाती है। परमपिता परमात्मा शिव ने बताया है कि शरीर में मनुष्यात्मा का निवास-स्थान यहीं है। आत्मा यहाँ ही मस्तिष्क, पिट्युटरी अथवा पीयूष ग्रन्थि तथा स्नायुमण्डल से सम्बन्धित है।

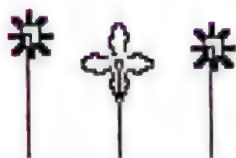
यह पिट्युटरी ग्रन्थि शरीर की अन्य बहुत-सी ग्रन्थियों, जैसे कि थाइरायड, पैराथाइरायड, पाचन-ग्रन्थियाँ, नारी की दुग्धोत्पादक ग्रन्थियाँ इत्यादि को भी नियन्त्रित अथवा प्रभावित करती हैं। शरीर में चर्बी तथा कार्बोहाइड्रेट्स के जज्ब होने की क्रिया भी इससे सम्बन्धित है। किसी मनुष्य के कद का बहुत बड़ा होना अथवा 'मिडगेट' की तरह छोटा होना भी इसी ग्रन्थि के अधिक स्त्रवित होने या कम स्त्रवित होने पर निर्भर करता है। इस ग्रन्थि का स्त्राव ठीक मात्रा में न होने से मनुष्य में बुद्धिमन्दता (Dullness) होती है और वह सुस्ती (sloth), थकावट, बांझपन या शिथिलता (sterility) अनुभव करता है। इस ग्रन्थि के पिछले भाग (posterior portion) से एक द्रव्य स्त्रवित होता है जिसे 'पिट्युटरीन' (pituitrin) कहते हैं। यह नारी के प्रजोत्पत्ति के शरीर-भाग के पुट्टों (involuntary muscles) को प्रभावित करता है।

इस ग्रन्थि के बारे में विशेष ध्यान देने के योग्य बात यह है कि आगे के भाग (anterior portion) से स्त्रवित होने वाले हार्मोन (Hormones) नर और नारी की प्रजोत्पत्ति से सम्बन्धित ग्रन्थियों को नियन्त्रित अथवा प्रभावित करते हैं। ये स्त्राव अथवा हार्मोन ही नारी के मासिक-धर्म को तथा उसके तन में सन्तान पैदा करने की क्रिया को भी प्रभावित करते हैं।

उपरोक्त वर्णन के पीछे हमारा भाव यह है कि आत्मा, जो कि पिट्युटरी और पीनियल ग्लेन्ड (pineal gland) के बीच में स्थित है, जब काम-चेष्टा करती है, तब वह उस चेष्टा द्वारा पिट्युटरी ग्रन्थि को प्रभावित करती है और पिट्युटरी अपने स्त्रावों द्वारा नर-नारी की, सन्तानोत्पत्ति से सम्बन्धित ग्रंथियों (Testes or ovaries) को प्रभावित करती है। यदि आत्मा 'काम' की चेष्टा ही न करे तो ब्रह्मचर्य-पालन स्वतः और अत्यन्त सहज हो जायेगा और आज जन-संख्या में तीव्र वृद्धि की जो भयावह समस्या हमारे सामने है, उसका सरलतम हल हमारे समाज को मिल जायेगा। इसलिये प्राचीन ग्रन्थों में भी पुत्रेष्णा का त्याग करने की शिक्षा दी गयी है। भारत की प्राचीन संस्कृति को तथा आधुनिक शरीर-विज्ञान को सामने रखने से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि समस्या का वास्तविक हल 'संकल्प-बन्दी' अथवा ऐषणा का बन्द होना ही है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यह संकल्प-बन्दी हो कैसे? प्राचीन काल के आचार्यों ने तो नारी के 'दर्शन' ही को वर्जित बताया है। परन्तु संसार में रहने वाले लोगों के लिये यह तो कोई हल नहीं है। आँख मूँद लेने से तो विषय-चिन्तन समाप्त नहीं हो जाता। अतः परमपिता परमात्मा शिव ने समझाया है कि किसी को भी देह-दृष्टि से न देखो, बल्कि ज्ञान-चक्षु प्राप्त करके, उस द्वारा सभी को 'आत्मिक-दृष्टि' ही से देखो और शरीर को तो एक चोला ही मानो। वास्तव में समस्या का यही सही और सरलतम हल है। जब आत्मा प्रकृति-पुरुष के भेद का यह ज्ञान प्राप्त कर लेती है और स्वरूप में स्थित हो जाती है तो वह लोकैष्णा, पुत्रेष्णा इत्यादि को छोड़ देती है। वह सभी को एक ज्योति-बिन्दु आत्मा ही के रूप में देखती है। इस प्रकार के यथार्थ दर्शन से उसकी पिट्युटरी अथवा पीयूष ग्रन्थि पर वैसा प्रभाव नहीं पड़ता जैसा कि एक 'कामी' मनुष्य के संकल्पों का पड़ता है। अतः वह उसकी पिट्युटरी ग्रन्थि सन्तान-उत्पत्ति से सम्बन्धित ग्रन्थियों पर भी ऐसा प्रभाव नहीं डालती जिससे कि वे उत्तेजित या स्त्रावित हों। इसका मधुर फल यही होता है कि मनुष्य किसी हठ-पूर्वक साधन को अपनाये बिना ही ब्रह्मचर्य का पालन करता है। उसे काम-भोग के संकल्पों को दबाना नहीं पड़ता बल्कि उसमें ऐसे निकृष्ट संकल्प

उत्पन्न ही नहीं होते, ऐसे ही मनुष्य को 'सात्त्विक-मनुष्य' अथवा 'पवित्र व्यक्ति' कहा जाता है। कलाकार ऐसे ही मनुष्य के चित्रों में भृकुटि-स्थान पर तीसरा नेत्र अंकित करता है। यह तीसरा नेत्र 'ज्ञान-नेत्र' ही है जिसके द्वारा वह हरेक नर-नारी को 'आत्मिक दृष्टि' से देखता है। यह तीसरा नेत्र भृकुटि में इसीलिये दिखाया जाता है कि आत्मा भृकुटि-स्थान पर ही पिट्युटरी ग्रंथि के निकट स्थित है। इस प्रकार, ज्ञान द्वारा 'संकल्प बन्दी' अथवा 'चेष्टा-नियन्त्रण' को समझना ब्रह्मचर्य के सर्वोत्तम उपाय को प्राप्त करना है।



काम विकार पर विजय कैसे प्राप्त करें?

‘ब्रह्मचर्य’ की धारणा एक बहुत ही ऊँची धारणा है। ब्रह्मचर्य की शक्ति से मनुष्य बहुत महान काम कर सकता है। ब्रह्मचर्य की जितनी महिमा की जाय उतनी थोड़ी है क्योंकि यह अनेक सद्गुणों की खान है। ब्रह्मचर्य से ही मनुष्य में सहनशीलता, धैर्य, हर्षितमुखता इत्यादि दिव्य गुण आते हैं। ब्रह्मचारी की वृत्ति सतोगुणी, दृष्टि पवित्र, वचन मधुर, हृदय शुभ-चिन्तक और मन-वचन-कर्म अहिंसक होते हैं। अतः जिस देश के व्यक्ति ब्रह्मचर्य से आकर्षित होकर उसका पालन करने के लिए पुरुषार्थ करते हो, वह देश, वह जाति धन्य है, मानो उसके भाग्य उज्ज्वल और उसकी धरणी पवित्र है। फिर जहाँ गृहस्थ में भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया जाता हो, उससे बढ़कर तो कोई चमत्कार अथवा साहस तथा वीरता का कार्य हो ही नहीं सकता। आज लोगों ने माउण्ट एवरेस्ट पर अथवा हिमालय के अन्यान्य बर्फानी शिखरों पर चढ़ने वाले वीरों की महिमा करना तो सीखा है, जनता ने शस्त्र बल से गर्वित शत्रु को तहस-नहस करने वाले बहादुर सैनिकों को सम्मान और प्रोत्साहन देना भी सीखा है परन्तु इस कलियुगी, मायावी दुनिया में गृहस्थ में रहकर ब्रह्मचर्य व्रत की पालना-जैसे अत्यन्त महान कार्य को करना तथा उसकी प्रशंसा करना नहीं सिखा! काम रूपी दुर्जय शत्रु के अनेक रूप-रूपान्तरों को कैद करके रख देने वाले साहसी नर-नारियों के पराक्रम और परिश्रम की उच्चता को पूरी तरह नहीं जाना!!

हाँ, यों तो आज की दुनिया में कुछ मनुष्य ऐसे भी हैं जो ब्रह्मचर्य कि उच्च स्थिति को प्राप्त करना चाहते हैं परन्तु वे फिर-फिर फिसलकर गिर जाते हैं और अब साहस खो बैठे हैं। इस असफलता के कई कारण हैं। सबसे मुख्य बात तो यह है कि जब तक मनुष्य आत्मा-निश्चय में स्थित न हो और दूसरों को भी शारीरिक दृष्टि की बजाय आत्मिक दृष्टि से न देखे तब तक वह देह के रूप-रंग-जाति-आयु से आकर्षित होता ही रहेगा। इसके अतिरिक्त, जब तक मनुष्य आनन्दस्वरूप और सर्वशक्तिवान परमपिता परमात्मा से योग का

अर्थात् बुद्धि द्वारा उसकी मौन स्मृति का अभ्यास नहीं करेगा तब तक वह सम्भोग के आकर्षण पर पूर्ण काबू नहीं पा सकेगा और उसका क्षणिक रस उसे फीका नहीं भासेगा। इसके अतिरिक्त, यदि ब्रह्मचर्य का सफलतापूर्वक पालन करना चाहने वाला व्यक्ति स्वयं को रचनात्मक कार्यों में अथवा समाज-सेवा में अथवा अध्ययन में व्यस्त रखकर अपनी संचित शक्ति का सदुपयोग नहीं करेगा तब तक वह इसमें सहज ही सफलता नहीं पा सकेगा। इसके अलावा मनुष्य के मन में यह जो मान्यताएं गहरी बैठी हुई हैं कि (i) काम विकार तो सृष्टि के प्रारम्भ से चला आ रहा है अथवा कि (ii) स्त्री-पुरुष की काम-वासना वाली इस सृष्टि की रचना तो स्वयं परमात्मा ही ने की है और इसलिए, काम-वासना का भोग वर्जित अथवा पाप नहीं है बल्कि (iii) यह तो स्वाभाविक है और इसके बिना तो सृष्टि चल ही नहीं सकेगी, तब तक मनुष्य काम को जीतने के प्रयत्न में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। अतः पहले हम विवेक के आधार पर इन रहस्यों पर प्रकाश डालेंगे कि (अ) काम विकार अथवा मैथुन, सृष्टि के आदि काल से नहीं चला आ रहा है और कि (ब) परमपिता परमात्मा ने इस 'काम' विकार वाली सृष्टि को नहीं रचा, बल्कि उनकी ओर से तो काम वर्जित है और कि (स) काम विकार वाली यह सृष्टि अब नहीं चल सकती। संक्षेप में इन पहलियों को स्पष्ट करने के बाद हम कुछ ऐसी ईश्वरीय युक्तियाँ भी बताएंगे जिन्हें ध्यान में रखकर गृहस्थ में रहते हुए, मनुष्य काम विकार पर विजय प्राप्त कर सकता है।

काम विकार सृष्टि के प्रारम्भ से नहीं चला आ रहा

मनुष्य के जीवन का जो लक्ष्य है अथवा सब देशों के मनुष्यों की यह जो एक साझी मनोकामना है कि जीवन में सुख, शान्ति और स्वास्थ्य बने रहें, उससे भी हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि काम विकार सृष्टि के प्रारम्भ से नहीं चला आ रहा। हरेक मनुष्य अपने जीवन में सम्पूर्ण सुख और शान्ति तो चाहता ही है। किसी भी देश में कभी भी कोई ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ जो सुख और शान्ति की इच्छा न करता हो। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य पहले पूर्णतः सुखी था क्योंकि आत्मा उसी अनुभव की कामना करती है जो अनुभव उसे पहले

प्राप्त था परन्तु समयान्तर में खोया गया।

अब यदि आप दुःख और अशान्ति के मूल कारण पर विचार करें तो आप इसी निर्णय पर पहुँचेंगे कि पाँच विकार ही इनका कारण हैं। उदाहरण के तौर पर, आप जानते हैं कि जब दो मनुष्य क्रोधान्वित हो जाते हैं तो आपस में झगड़ा करते हैं, उनके सम्बन्ध टूट जाते हैं, मन में अशान्ति पैदा होती है और कलह-क्लेश का वातावरण बन जाता है और मनुष्य के शरीर पर भी उसका खराब प्रभाव पड़ता है। जैसे क्रोध व्यक्तियों के बीच तनाव और अशान्ति अथवा दुःख फैला देता है, वैसे ही राष्ट्रों के बीच भी अशान्ति अथवा दुःख फैला देता है। इसी तरह, लोभ के वश होकर मनुष्य वस्तुओं में मिलावट करना, दूसरों से धूस लेना, काले बाज़ार में सामान बेचना इत्यादि निकृष्ट कर्म करने लगता है जिससे समाज का सारा ढाँचा बिगड़ जाता है और सारे समाज को कष्ट तथा क्लेश होता है और आखिर वह मनुष्य, लोभ के परिणामस्वरूप दुर्गति को पाता है। तो जैसे क्रोध और लोभ दुःख और अशान्ति के उत्पादक हैं वैसे ही 'काम' से भी रोग, शोक, दुःख और अशान्ति पैदा होती है क्योंकि काम विकार अथवा मैथुन शारीरिक शक्ति को क्षीण करने वाला, शरीर को निचोड़कर उसे मुर्दा बना देने वाला, मनुष्य को तेज़ी से बुढ़ापे और मृत्यु के मुख में ले जाने वाला, उसके मस्तिष्क को कमजोर करके उसकी सहनशीलता को नष्ट कर देने वाला अर्थात् उसे चिड़चिड़ा और उत्तेजित हो जाने वाला बना देता है और हर प्रकार से मनुष्य का पतन करके उसकी मस्ती और हस्ती को हर लेता है। तो स्पष्ट है कि मनुष्यता की जो प्रारम्भिक स्थिति थी, जिसमें उसे सम्पूर्ण सुख और शान्ति प्राप्त थी, उसमें काम, क्रोधादि विकार बिल्कुल न थे क्योंकि इनके होते हुए तो मनुष्य रोग, बुढ़ापा, दुर्बलता, चिड़चिड़ापन, कलह, झगड़े, मृत्यु इत्यादि दुःखों से बच ही नहीं सकता। अब जैसे मनुष्यात्माएँ अपनी प्रारम्भिक (original) अवस्था में पूर्ण पवित्र अर्थात् निर्विकारी थीं वैसे ही यह सृष्टि भी प्रारम्भ में पूर्णतः पवित्र थी।

पुनश्च, सभी मानते हैं कि संसार परिवर्तनशील है। इसकी आज जैसी स्थिति है, कल ऐसी नहीं थी और आने वाले कल में भी इसकी वैसी स्थिति

नहीं रहेगी। अतः यह कहना कि विकार इस सृष्टि में शुरू ही से चले आए हैं, ग़लत है। इस संसार में हरेक वस्तु की चार अवस्थाएँ होती हैं। प्रारम्भिक अवस्था में हर-एक वस्तु अधिक शक्तिशाली और सतोगुणी होती है और धीरे-धीरे वह शक्तिहीन, निस्सार और जड़जड़ीभूत हो जाती है। मनुष्य के शरीर की अवस्था को ही देखिये। शुरू में वह कोमल, पवित्र और सतोगुणी होता है, धीरे-धीरे मनुष्य में काम, क्रोधादि विकार पैदा होते हैं और अन्त में वह जड़जड़ीभूत होकर नष्ट हो जाता है और मनुष्य आत्मा नया जन्म लेकर नया, 'सतोगुणी'* शरीर लेता है। आप किसी वृक्ष को ही देखिए तो वह भी शुरू में एक कोमल और नन्हा-सा पौधा होता है, बड़ा होकर वह धीरे-धीरे पुराना होते-होते जड़जड़ीभूत अवस्था को प्राप्त होता है और आखिर एक दिन वह खोखला होकर गिर पड़ता है। नई अवस्था और पुरानी अवस्था एक-जैसी नहीं होती। कोई मकान भी जब नया होता है तो उसकी अवस्था अच्छी और जब पुराना होता है तो उसकी हालत खराब हो जाती है। अतः यह कहना कि सृष्टि की प्रारम्भिक अवस्था भी ऐसी ही थी जैसी कि आज है, ग़लत है, क्योंकि हर वस्तु में सदा परिवर्तन हो रहा है और प्रारम्भिक अवस्था में चीज़ अच्छी और अन्तिम अवस्था में जड़जड़ीभूत, नष्टप्रायः और दुखदायक होती है। 'विकार' शब्द ही से सिद्ध है कि यह वाद में आया क्योंकि 'विकार' शब्द का अर्थ ही प्रारम्भिक अवस्था में परिवर्तन अथवा 'बिगाड़' है। जब किसी वस्तु की प्रारम्भिक अवस्था में अथवा किसी मनुष्य की स्वस्थ अवस्था में परिवर्तन अथवा बिगाड़ पैदा हो जाता है तभी कहा जाता है कि उस वस्तु अथवा व्यक्ति में विकार पैदा हो गया है। अतः स्पष्ट रहे कि जब यह सृष्टि किशोर अवस्था में थी तब सतोगुण प्रधान था, तब विकार नहीं थे। दूसरे शब्दों में, सतयुग और त्रेतायुग में इस सृष्टि में काम, क्रोधादि विकार न थे बल्कि यह सृष्टि पूर्णतः पवित्र थी और, इसलिए, सुख-शान्ति सम्पन्न थी। पूर्ण विकास (evolution) हो चुकने के

* बाद की अवस्थाओं की तुलना में ऐसा कहा गया है।

बाद ही वस्तु का गलना-सड़ना, क्षीण होना, नाशोन्मुख होना (Involution) प्रत्यक्ष होता है। ठीक इसी प्रकार, सतयुग और त्रेतायुग के बाद ये काम क्रोधादि विकार प्रादुर्भूत (emerge) हुए और मनुष्य-समाज की अस्वस्थ अवस्था का प्रारम्भ हुआ। फिर धीरे-धीरे जैसे कोई वृक्ष जड़जड़ीभूत होता है अथवा मनुष्य-शरीर वृद्ध होता है, वैसे ही हालत इस सृष्टि की होती आई है। अथवा, जैसे कोई रोग धीरे-धीरे संचारी, पैत्रिक (hereditary) अथवा पुराना (chronic) होता जाता है, वैसे ही ये विकार भी संचारी हो गए हैं और आज लोग समझते हैं कि ये तो शुरू ही से चले आए हैं। परन्तु मनुष्य के दुःखी और अशान्त होने से अथवा सुख और शान्ति की कामना से ही सिद्ध है कि ये विकार तो रोग हैं और ये शुरू से नहीं चले आए हैं बल्कि इनसे छुटकारा पाकर सुख-शान्ति वाली प्रारम्भिक (original) स्थिति को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है।

परमात्मा ने यह काम-विकार वाली सृष्टि नहीं रची

ऊपर दी हुई व्याख्या से स्पष्ट है कि परमात्मा ने जो सृष्टि रची वह पवित्र, सतोप्रधान, सुख-शान्ति सम्पन्न और काम-क्रोधादि विकारों से मुक्त थी। रचना तो सदा नई ही वस्तु की होती है और नई हालत में तो वस्तु सतोप्रधान होती है; बाद में ही उसमें सड़न-गलन, पुरानापन और परिवर्तन अथवा बिगाड़ अथवा विकार शुरू होता है। अतः परमात्मा तो नई, सतयुगी, पवित्र, निर्विकारी सृष्टि ही के रचयिता हैं। त्रेतायुग के बाद की सृष्टि तो काल के पुरानेपन के और सड़न-गलन (Involution) के प्रभाव से ही गिरती चली आई है, उसकी इस दशा का निमित्त परमात्मा को मानना सर्वथा गलत है। चीज़ पुरानी, जड़जड़ीभूत और विकारी तो स्वयं ही समायान्तर में होती है, उसके पुरानेपन को रचा नहीं जाता है। अतः याद रहे कि परमपिता परमात्मा को इसी कलियुगी विकारी सृष्टि का रचयिता मानना, परमात्मा पर मिथ्या दोष लगाना और स्वयं को धोखे में रखकर पाप करते रहना है क्योंकि परमात्मा तो वास्तव में पतित-पावन हैं, वे तो काम विकार को मनुष्य का महाशत्रु घोषित करते हैं। जैसे कि गीता में भी उनके महावाक्य भी हैं, वह काम

की रचना नहीं करते बल्कि कल्याणकारी (शिव) परमात्मा तो काम को भस्म करने वाले 'कामारि' (काम के शत्रु) माने गए हैं।

आप स्वयं ही सोचिए कि जब कि महात्मा लोग भी कामभोग का त्याग करके ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं तो क्या महात्माओं से भी महान जो परमपिता परमात्मा हैं, उन्होंने काम-विकार की रचना की होगी? यह कदापि नहीं हो सकता। रचयिता के गुण, कर्म, स्वभाव सदा अपनी रचना में प्रतिबिम्बित होते हैं। अतः परमात्मा, जो कि पतित-पावन और परमपवित्र माने गए हैं, उन द्वारा रची हुई सृष्टि तो पूर्णतः पवित्र और निर्विकारी थी, जिस कारण से ही उस समय की सृष्टि को सतयुगी अथवा 'सतोप्रधान' सृष्टि कहा जाता है क्योंकि सत् का अर्थ ही प्रकाश और पवित्रता है।

आज भी भक्तजन परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि, "हे प्रभु, मैं मूर्ख, खल और कामी हूँ, आप हम पर कृपा करके हमारे विषय-विकार मिटाओ!" तो सिद्ध है कि परमात्मा इन विकारों को मिटाने वाले हैं, इनकी रचना करने वाले नहीं हैं।

काम विकार स्वाभाविक नहीं है

अतः याद रखना चाहिए कि काम विकार स्वाभाविक नहीं है, क्योंकि स्व (आत्मा) का भाव (अभिप्राय) तो सुख और शान्ति को प्राप्त करना है और वह तभी प्राप्त हो सकती है जब यह विकार न हों। आत्मा की स्वाभाविक अवस्था तो पवित्र थी, जैसे कि हम ऊपर स्पष्ट कर आए हैं, ये विकार तो कालान्तर में और प्रकृति के कुसंग से, परिवर्तन ही के कारण आये हैं। हाँ, अब मनुष्य को इनकी आदत (habit) पड़ गई है और उक्ति प्रसिद्ध है कि आदत भी स्वभाव-जैसी ही होती है (Habit is second nature)। अतः इसे बुरी अथवा दुखदायक आदत समझकर अब इससे छुटकारा पाने का उपाय करना चाहिए।

काम विकार वाली सृष्टि अब नहीं चलेगी

जब किसी मनुष्य को भाँग या शराब की आदत पड़ जाती है तो वह कहता

है कि - “इसके बिना मैं नहीं चल सकता।” इसी प्रकार, आज जब मनुष्यों को काम-वासना की लत पड़ गई है तो वे भी कहते हैं कि हम सम्भोग के बिना तो रह ही नहीं सकते, अथवा इसके बिना तो सृष्टि ही नहीं चल सकती। उन्हें यह तो मालूम ही नहीं है कि प्रारम्भ में अर्थात् सतयुग और त्रेतायुग में भले ही नर-नारी थे, युगल-जीवन था, गृहस्थ-व्यवहार इत्यादि सभी-कुछ था, परन्तु मैथुन या सम्भोग न था बल्कि योग बल से ही सन्तानोत्पत्ति होती थी। इसलिए, उन युगों के मनुष्यों को ‘दैवी स्वभाव वाले’ अथवा ‘देवता’ की संज्ञा दी जाती है क्योंकि उनमें योनि-भोग की गन्दी और आसुरी आदत न थी।

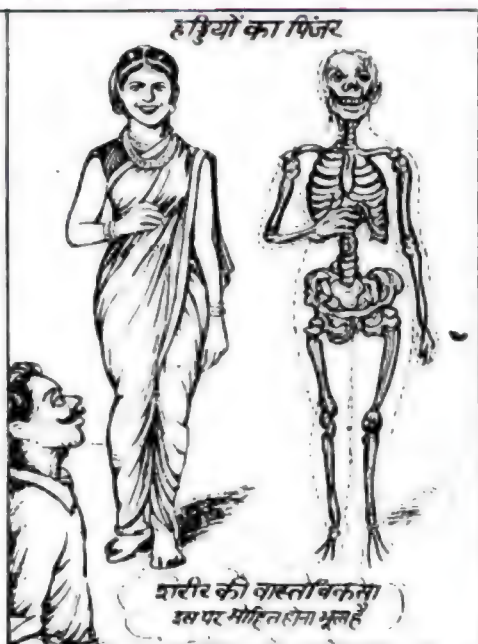
अतः अब मालूम रहे कि ‘काम’ विकार से यह सृष्टि नहीं चली आई बल्कि काम विकार वाली यह सृष्टि अब नहीं चलेगी क्योंकि अब इन विकारों के कारण इसकी जड़जड़ीभूत अवस्था हो गई है अथवा यह वृद्धावस्था को प्राप्त होकर मरणासन्न है। अब इसके महाविनाश के चिन्ह आप ऐटम तथा हाइड्रोजन बमों इत्यादि के रूप में स्पष्ट देख सकते हैं।

इन बातों को समझकर अब हमें बदलना चाहिए क्योंकि अब सृष्टि के नये जन्म का समय है अर्थात् अब इसका विनाश होकर सतयुग के प्रारम्भ होने का समय आ पहुँचा है। ये विषय-विकार अब हम से वैसे भी, जबरदस्ती भी छिन जाने वाले हैं। अतः स्वेच्छा से अपने संस्कारों को पवित्र करने और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का सर्वोत्तम पुरुषार्थ करके हमें परमपिता परमात्मा की कृपा का पात्र तथा मुक्ति एवं जीवन्मुक्ति का भागी अथवा सम्पूर्ण सुख-शान्ति का अधिकारी बनना चाहिए। उसके लिए हमें वो युक्तियाँ आनी चाहिएँ जिनसे कि हम काम विकार पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

काम विकार पर विजय प्राप्त करने की युक्तियाँ

1. अस्थि-चर्ममय देह के भीतर की हालत पर ध्यान - मनुष्य को जब किसी स्त्री के अथवा स्त्री को किसी पुरुष के रूप-लावण्य से अथवा रंग-रङ्ग से आकर्षण होता है और काम वासना को उत्तेजना मिलती है तो उस समय उसे नर-नारी के शरीर के भीतर की अवस्था पर ध्यान देना चाहिए। उसे समझना

चाहिए कि यह तो हड्डी-मांस का एक पिंजर है। इसमें तो कफ, रक्त, मैल, गन्दादि के नाले-परनाले हैं। ऊपर की त्वचा से ढका हुआ होने से इसके भीतर का दृश्य छिप रहा है। इसमें तो असंख्य कीटाणु इत्यादि हैं। यह कलियुगी शरीर तो तमोगुणी तत्वों का बना हुआ और काम विकार रूपी विष से जन्मा हुआ है। अतः माँस के इस लोथड़े अथवा मुठ्ठी-भर हड्डियों के प्रति मेरा आकर्षित होना मूर्खता ही तो है। यह तो कलियुगी, रोगी और



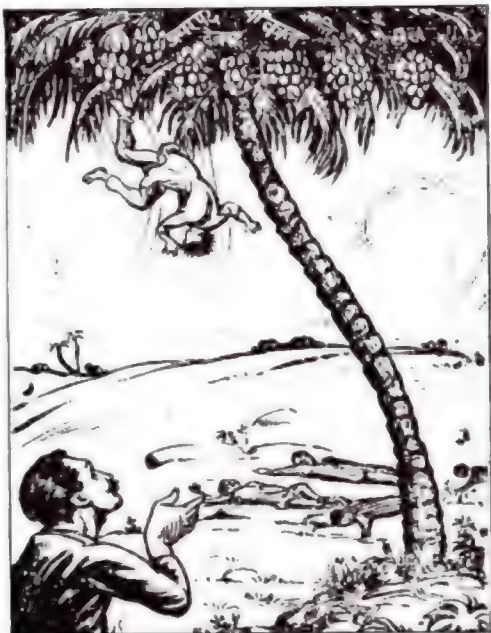
(नश्वर देह से प्रीति लगाने की बजाय
अविनाशी परमात्मा से प्रीति लगाइये)

‘झूठी काया’ है। अतः इस पुतले के पीछे पलीद होना गोया आँखों पर पट्टी बांधकर गर्त में गिरने की कोशिश करना है। इससे तो मेरा शरीर कमजोर हो जायेगा, शक्ति क्षीण होगी, सहन करने की शक्ति कम होगी, मेरी शान्ति चूर-चूर हो जायेगी, मन की स्थिति गिर जायेगी और मुझ में क्रोध की अग्नि भी जल उठेगी। अतः मैं यह ग़लत काम नहीं करूँगा।

मैं तो सर्वशक्तिवान, पतित पावन, आनन्द स्वरूप परमपिता परमात्मा की सन्तान हूँ और, इसलिए मुझसे यह गिरे हुए कर्म कदापि नहीं होंगे। मैं इतने उच्च कुल का होकर यह ‘छी-छी कर्म’ कैसे कर सकता हूँ? अरे, मैं खूब जानता हूँ कि यह माया ही है जो मेरी अक्ल पर पर्दा डालकर और मनुष्य के तन की वास्तविकता पर भी परदा डालकर मेरे ज्ञान-ध्यान को मिट्टी में मिलाना चाहती है और मुझे परमप्रिय प्रभु से हटाकर अपना दास बनाये रखना चाहती है। अतः मैं अब उसकी एक भी नहीं चलने दूँगा।

2. ऊँची खजूर से सिर के बल गिर कर चकनाचूर होने की हालत पर ध्यान – मनुष्य को सोचना चाहिए कि मैं तो ब्रह्मचर्य के बल से अपने लक्ष्य रूपी खजूर पर चढ़ जाऊंगा और आनन्द रस पाऊँगा।

आहा, उस प्रभु से मंगल मिलन होने पर मनुष्यात्मा को कितना हर्ष और आनन्द होता है, उसे कितनी शान्ति मिलती है! ब्रह्मचर्य और योग से युक्त अवस्था कितनी न्यारी और प्यारी अवस्था है! जबकि इस जीवन के रहे हुए समय में ब्रह्मचर्य पालन से मुझे जन्म-जन्मान्तर के लिये राज्य-भाग्य, सुख शान्ति, स्वास्थ्य-स्वराज्य सब-कुछ मिलेगा तो मैं ऊपर चढ़ते-चढ़ते नीचे काम को देखकर, सिर के बल क्यों गिरूँ, क्यों चकनाचूर होऊँ? जिसे स्वयं सर्व समर्थ और परिपूर्ण प्रभु मिलते हों वह उन्हें छोड़कर असमर्थ और सर्वथा अपूर्ण नर-नारी की देह में आसक्ति करके अपना सिर क्यों धुनने का कर्म करे? अतः मैंने काम और ब्रह्मचर्य दोनों की तुलना कर ली है, दोनों के परिणाम को समझ लिया है। मैं क्षणिक सुख को सामने रख कर सर्वदा के लिए सम्पूर्ण सुख नहीं खोना चाहता और उस प्रभु से बिछुड़ कर पाताल में गिर कर पुर्जा-पुर्जा होना नहीं



(ब्रह्मचर्य से चाखे आनन्द रस,
ब्रह्मचर्य से गिरे तो चकनाचूर)

चाहता। वह देखो, मैं तो ब्रह्मचर्य ही के श्रेष्ठ पुरुषार्थ से नित्य ऊँचा ही उठता जाना चाहता हूँ और प्रभु के प्यार का पात्र बनना चाहता हूँ तथा उन्हीं के पास पहुँचकर सदा आनन्दमय स्थिति में टिक जाना चाहता हूँ। अतः मुझे काम के सभी प्रस्ताव, सभी सुझाव, सभी दबाव, सभी प्रलोभन नामन्ज़ूर हैं, अस्वीकार हैं। मेरा

जो मित्र मुझे ब्रह्मचर्य से हटायेगा, मैं समझूँगा कि वह मुझे ऊँची अट्टालिका पर से धक्का देकर मुँह के बल गिराने वाला शत्रु है। काम विकार के लिए मुझे जो बाध्य करेगा, मैं उसे अपना अशुभ-चिन्तक सम्बन्धी समझूँगा जो कि मुझे ऊँची खजूर पर चढ़कर आनन्द रस चखने के मेरे पुरुषार्थ में मेरे लिये मंगल कामना नहीं करता और मेरे लिए शुभ नहीं सोचता।



3. काम को नरक का द्वार समझना चाहिए – मैं तो स्वर्ग ही में जाना चाहता हूँ,

(एक ही जीवन में ब्रह्मचर्य के पालन से नरक से छुटकारा प्राप्त हो सकता है)

परन्तु यदि कोई व्यक्ति मेरे लिए काम का जाल फैलाता है, तो मानो कि वह मुझे नरक भेजना चाहता है और एक दिन जब मैं मर जाऊँगा तो लोगों को यह झूठ कहना चाहता है कि “अमुक व्यक्ति स्वर्ग सिधार गया है।” मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि ‘काम’ विकार के परिणामस्वरूप मनुष्य का निर्बल शरीर रोग का शिकार बनता है। काम से हारा हुआ मनुष्य ही आखिर राज्य-भाग्य गंवा कर कंगाल और भिखारी बनता है। काम ही मनुष्य को काल का ग्रास बनने पर मजबूर करता है। अतः मैं कभी काम के कुचक्र में नहीं पड़ूँगा। मैं काम के द्वार में कभी भी प्रवेश नहीं करूँगा क्योंकि यह तो नरक का द्वार है। इसने ही तो सभी को अशान्ति की अग्नि में जला रखा है। इसी ने घर-घर को वेश्यालय बना दिया है। मैं इसे अपने मन में अब घुसने ही नहीं दूँगा।

4. काम को सबसे बड़ी हिंसा मानना चाहिए – हिंसा बुरी चीज़ है। हिंसा महापाप है; अहिंसा ही परम-धर्म है। मैं अधर्मी, पापी या अधम नहीं बनना

चाहता। इसलिए, मैं किसी पर भी काम-कटारी नहीं चलाऊंगा, किसी पर काम का कुठाराघात (Criminal assault) नहीं करूँगा। आज तो माता-पिता और सास-ससुर कन्या-रूपी गऊ की टांगे अपने रस्म-रिवाज की रस्सियों से बांधकर और उसे जेवरों से सजाकर काम-कटारी के नीचे जाने के लिए हवाले कर देते हैं, परन्तु मैं एक मासूम अथवा निर्दोष

आत्मा पर काम के द्वारा कुठाराघात नहीं करूँगा; मैं किसी का रक्तपात नहीं करूँगा, किसी का सतीत्व नहीं लूटूँगा किसी को स्वर्ग के द्वार से नहीं गिराऊँगा, मैं किसी भी आत्मा के अधोपतन का निमित्त नहीं बनूँगा। गोवध एक पाप है, परन्तु स्त्री रूपी भोली भाली गऊ पर काम कटारी चलाना तो उससे भी बड़ा गोवध और बड़ा पाप है क्योंकि भगवान के महावाक्य है कि – “हे वत्सो, काम मनुष्य



(काम-कटारी से आत्मा रूपी गऊ पर आघात)

का महावैरी है; इससे ही क्रोध आदि अन्य विकार पैदा होते हैं और मनुष्य का विवेक नष्ट होता है और अन्त में मनुष्य का सर्वस्व नाश हो जाता है।’

गृहस्थ आश्रम बुरा नहीं है परन्तु वह आश्रम अर्थात् पवित्र स्थान होना चाहिए, वहाँ काम-कटारी नहीं चलनी चाहिए क्योंकि काम-वासना से जुड़ा हुआ स्त्री-पुरुष का नाता तो एक ऐसी ऊँट-गाड़ी की तरह है जिसका ऊँट बे-मुहार है और तीव्रगति से ले जाकर गड्ढे में गिरा देता है।

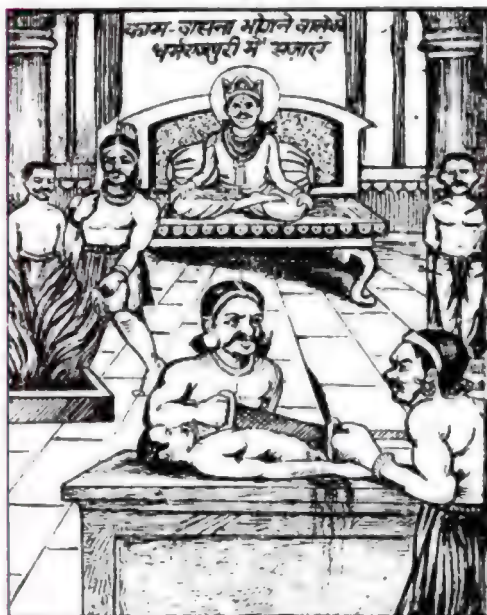
5. काम-भोग को गन्दे नाले में गोता लगाने के तुल्य समझना चाहिए – योनि-सम्भोग तो गन्दे नाले में प्रवेश से अथवा मैनहोल (Man hole) में घुसने अर्थात् भंगी के काम से भी गन्दा ही काम है। गन्दगी साफ़ करने वाला

भंगी तो मजबूरी से केवल गन्दगी उठाता है परन्तु काम वासना वाला शूद्र मनुष्य तो उस से भी गंदा काम करता है। अतः यह अति निकृष्ट कार्य है। मैं तो 'सच्चा ब्राह्मण' बना हूँ, मैं परमपिता परमात्मा के ज्ञान-योग से स्वच्छ बन रहा हूँ, अतः यह गन्दा काम कभी नहीं करूँगा। मैं तो पतित-पावन परमात्मा का पुत्र हूँ, मैं यह निकृष्ट कर्म नहीं करूँगा।

6. धर्मराज के दरबार में मिलने वाले कड़े दण्ड



(काम-वासना का भोग करना ही शूद्र



(समझदार मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन करके धर्मराजपुरी के दण्ड से स्वयं को बचा लेता है

पर ध्यान देना चाहिए - काम तो मनुष्य का महावैरी है क्योंकि इसके वश में होकर मनुष्य पाप करता है और, अन्त में, धर्मराज के दरबार में कड़ी सज़ाओं का भागी बनता है। अतः यहाँ भी दुःख और भविष्य में धर्मराजपुरी में भी दण्ड भोगने की बजाय इसे त्याग देना ही श्रेष्ठ है। वहाँ कील द्वारा दीवार में गाड़े जाना, तपे हुए खम्बे के साथ बाँधे जाना या आरे के साथ बुरी तरह काटे जाने-जैसे दुःख भोगने की बजाय समझ का काम तो यही है कि

ब्रह्मचर्य का पालन करके यहाँ भी सुख पाया जाय और भविष्य में भी राज्य-भाग्य प्राप्त हो।

7. काम द्वारा राज्य-भाग्य खो जाने का दृश्य सामने लाना चाहिए – काम से तो यह सृष्टि तप्त होकर काँप जाती है। काम से सिंहासन डोल जाता है, मनुष्य के सिर से पवित्रता और राज्य का ताज गिर जाता है। ईश्वरीय ज्ञान के आधार पर ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला मनुष्य श्री नारायण-जैसा देव पद पाता है और 21 जन्मों के लिए अटल, अखण्ड, निर्विघ्न और सम्पूर्ण सुख शान्तिमय चक्रवर्ती राज्य भोगता है, परन्तु काम-भोग के द्वारा मनुष्य की अवस्था हिल जाती है और राज्य-भाग्य नष्ट हो जाता है। अतः ब्रह्मचर्य का पालन करके अब 21 जन्मों के लिए दैवी सौभाग्य बनाने में ही कल्याण है तब क्षणभर के निकृष्ट सुख के लिए जन्म-जन्मांतर के सर्वांगीण सुख को लात मारना महान गलती होती है।

8. काम को विष का प्याला समझना चाहिए – विष से तो मनुष्य की एक बार मृत्यु होती है परन्तु काम-वासना का भोग एक ऐसा विष है जिसके द्वारा मनुष्य अनेक बार मृत्यु का ग्रास बनता है और जन्म-जन्मान्तर दुःखी होता है। इसके विपरीत, ब्रह्मचर्य ही ऐसा अमृत है जिसके द्वारा मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त करके अमर देवपद प्राप्त कर लेता है। अब मेरे एक तरफ विष का प्याला है और दूसरी तरफ अमृत का प्याला है; मैं तो निश्चय ही अमृत का प्याला पिऊँगा। काम विकार से युक्त जीवन के लिए



(काम विकार के कारण मनुष्य देव पद के सिंहासन से पतित होता है)

दबाव डालने वाले व्यक्तियों को सोचना चाहिए कि हम तो विष पीने के लिए अनुरोध कर रहे हैं। इससे तो दूसरों के सर्व नाश का सामान इकट्ठा कर रहे हैं।



(काम विकार 'विष' के प्याले की)

यह तो हितकर कार्य नहीं है, हमें इसमें हाथ नहीं डालना चाहिए क्योंकि किसी को विष पिलाना अथवा विष पीने के कार्य में सहयोग देना तो लौकिक सरकार की ओर से भी अपराध घोषित है और पारलौकिक सरकार परमपिता परमात्मा की ओर से भी।



काम विकार को जीतने और ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने की युक्तियाँ

परमपिता परमात्मा शिव ने हमारे ही कल्याणार्थ अब विश्व को स्वर्ग बनाने के लिये काम विकार को जीतने की निम्नलिखित अनमोल युक्तियाँ बताई हैं। यदि हम उनका ठीक तरह पालन करें तो 'काम' पर विजय प्राप्त करना सहज हो जाता है।

1. आत्मा-निश्चय-बुद्धि

शिव बाबा समझाते हैं, "वत्सो, आज मनुष्य काम 'विकार' द्वारा इस कारण पतित बनता है कि उसकी दृष्टि अर्थात् उस की आँखें उसे धोखा दे जाती हैं। जन्म-जन्मान्तर से मनुष्य देह-अभिमान ही बना हुआ है; इसलिए वह देह-दृष्टि द्वारा ही देखता है और स्त्रीत्व अथवा पुरुषत्व के भान में आ जाता है। वत्सो, उसका तीसरा नेत्र, जिसे 'ज्ञान-चक्षु' भी कहा जाता है तो बन्द ही रहता है। यही कारण है कि 'काम' का मद पी लेने से उसे अपने 'असल' (वास्तविक स्वरूप) की और अपनी 'नसल' (वंश) की सुधि नहीं रहती। अतः अब काम रूपी शत्रु को हराने का सर्वश्रेष्ठ एवं सही तरीका यही है कि स्वयं को 'आत्मा' निश्चय करो और अपनी देह को अपना चोला समझो। आत्मिक स्वरूप में स्थित होकर ज्ञान-नेत्र द्वारा अन्य हरेक नर-नारी को भी 'आत्मा' ही की दृष्टि से देखो! उसे भी भृकुटि में रहने वाला एक चेतन तारा समझो! इस प्रकार, आत्मा-निश्चय-बुद्धि (soul-conscious) होने से देह-अभिमान का नशा टूट जायेगा और नाम-रूप के आकर्षण की बीमारी से भी बच जाओगे।

वत्सो, आप जानते ही होंगे कि जब कोई पति और पत्नी किसी मन्दिर में जाते हैं तो वे अपने इष्ट को सम्बोधित करके कहते हैं - "हे देवाधिदेव! आप ही हमारे माता-पिता हैं, हम आपके बालक हैं...!" पति भी अपने इष्ट को 'माता-पिता' कहता है और पत्नी भी उसे 'माता-पिता' ही मानती है। गोया उस समय वे अपना दैहिक नाता भूलकर, स्वयं को 'आत्मा' मानकर 'परमात्मा'

ही को अपना माता-पिता मान रहे होते हैं। वरना तो पति-पत्नी दोनों उसे माता-पिता न कहते क्योंकि इस संसार में देह की दृष्टि से पति जिसे 'माता-पिता' कहता है, पत्नी उन्हें अपने 'सास-ससुर' ही मानती है। परन्तु यहाँ यद्यपि पति परमात्मा को सम्बोधित करते हुए "तुम परमपिता, हम बालक तेरे" आदि वचन कह रहा है, तो पत्नी भी उसे 'तुम सास-ससुर हम बहू हैं तेरी...' इस प्रकार के वचन नहीं कह रही। इसका कारण यह है कि उस समय वे स्वयं को "आत्मा" समझकर परमात्मा से अपना आत्मिक नाता जतला रहे हैं। और, जब तक वे ऐसा कर रहे हैं, तब तक उनके मन में 'काम' विकार कभी भी जागृत नहीं होता। अतः यदि घर में भी यह आत्मिक स्थिति बनी रहे और परमपिता परम-आत्मा से यह सम्बन्ध बना रहे तो काम विकार पैदा नहीं हो सकता। इस प्रकार, यह 'आत्मा' - निश्चय ही 'काम' को जीतने की सबसे बड़ी युक्ति है। "मैं आत्मा हूँ, ज्योति-बिन्दु हूँ, सर्वशक्तिवान एवं परम पवित्र शिव बाबा का बच्चा हूँ..." दिन-भर के कार्य व्यवहार में इस प्रकार की सूक्ष्म स्मृति एक ऐसा महामन्त्र है जिससे काम-विकार रूपी भूत भाग जायेगा।'

2. प्रतिदिन ज्ञान-स्नान

आजकल के दूषित वातावरण के प्रभाव से बच कर रहने की युक्ति बताते हुए शिव बाबा कहते हैं - "वत्सो, जैसे नित्यप्रति प्रातः स्नान कर लेने से मनुष्य स्वच्छ, निर्मल, शीतल तथा ताज़ा हो जाता है, वैसे ही प्रतिदिन प्रातः काल ईश्वरीय ज्ञान से आत्मा भी दिन-भर प्रसन्न, पवित्र तथा हर्षोल्लास से ऐसी परिपूर्ण हो जाती है कि 'काम' विकार उसको मलीन नहीं करता। प्रातः ही पावनकारी ईश्वरीय ज्ञान सुन लेने के फलस्वरूप दिनभर आत्मा को उसकी वह स्मृति बनी रहती है और कर्म करते हुए वैसी स्थिति भी बनी रहती है। प्रतिदिन ज्ञान-श्रवण से बात ताज़ा-ताज़ा ही मन में होने से अथवा ईश्वरीय शिक्षा दोहराये जाने से दिन-भर मनुष्य पाप-कर्म से बचकर रहता है। इसलिए ही 'सत्सग' की महिमा है।

3. सोते समय संकल्प और उठने पर स्मृति

बाबा बतलाया करते हैं कि मनुष्य को चाहिए कि वह सोने से पहले ज्ञान-

मुरली अथवा ईश्वरीय ज्ञान के किसी साहित्य को पढ़ें। गृहस्थी व्यक्ति यदि अपनी युगल-सहित ईश्वरीय वाणी का अध्ययन करे तो अच्छा है। सोने से पहले ईश्वरीय महावाक्यों को पढ़ने से देह-दृष्टि मिट जायगी और आत्मिक नाते की स्मृति बनी रहेगी। अतः कोई अकर्तव्य कर्म नहीं होगा।

बाबा कहते हैं कि सोते समय, पहले अपनी शय्या पर कुछ समय ईश्वरीय स्मृति में बैठना चाहिए और अपने दिन-भर के किये कर्मों पर दृष्टि डालनी चाहिए। फिर लेटने पर, यह सोचना चाहिए कि - “मैं तो आत्मा हूँ” ...; अब इस शरीर को आराम देने के लिये ढीला छोड़, इससे न्यारा होता हूँ; मैं शिव बाबा की स्मृति में अब विश्रामी होता हूँ।” इस प्रकार के संकल्पों से विश्रामी होने से नींद भी सतोगुणी आवेगी और मन विकार के संकल्पों से भी मुक्त रहेगा।

फिर प्रातः जब सुषुप्ति समाप्त हो और जागृत अवस्था हो तो सबसे पहले यही स्मृति रूप संकल्प आना चाहिए कि - “मैं तो आत्मा हूँ, ज्योति-बिन्दु हूँ, देह से न्यारा हूँ, भृकुटि का तारा हूँ, शिव बाबा का बच्चा हूँ, शिव बाबा! नमस्ते!...” इस प्रकार की चर्या द्वारा मन को दिन और रात अच्छे ही संकल्प करने का अभ्यास हो जावेगा तो अशुद्ध संकल्पों का आना बन्द हो जायेगा।

4. आहार की शुद्धि

शिव बाबा समझाते हैं कि तमोगुणी और रजोगुणी अन्न सेवन करने से भी मनुष्य के मन में विकार पैदा होते हैं। अतः मन को पवित्र बनाने के लिए उत्तेजक एवं वासनोत्पादक आहार सेवन नहीं करना चाहिए। इस विचार से प्याज, लहसुन, अण्डा, मांस, शराब, तम्बाकू इत्यादि का कदापि, रंच भी सेवन नहीं करना चाहिए। इन पदार्थों का सेवन करने का अर्थ म्लेच्छ बनना और तमोगुणी विचारों को अपने मन में निमन्त्रण देना है।

पुनश्च, भोजन भी ऐसे ही व्यक्ति के हाथ का बना हुआ सेवन करना चाहिए जो पवित्र हो और योग-युक्त हो, ईश्वरीय प्रेम में ही भोजन बनाता हो और मन में बुरे संकल्प न लाता हो। कामी, भोगी अथवा अपवित्र मन वाले व्यक्ति के

हाथ से बना हुआ भोजन भी मनुष्य की स्थिति को डगमग कर देता है और उसके मन में मलीन विचार उत्पन्न करता है। अतः अपनी अवस्था को महान बनाना चाहने वाले व्यक्ति को चाहिए कि विकारों के वशीभूत व्यक्ति के द्वारा बने हुए अन्न का सेवन न करे। इस पर भी विशेष बात यह है कि भोजन करने से पहले उसको ईश्वरार्पण करना चाहिए; बहुत ही प्रेम से उसका भोग लगाना चाहिये। वत्सो, भोग लगाने से भोजन 'प्रसाद' रूप हो जाता है और अवस्था को उच्च बनाने वाला, अमृत-सम हो जाता है।'

5. समय की पहचान

बाबा कहते हैं - "वत्सो, प्रायः भक्त लोग मानते हैं कि जब रात्रि का अन्त होने वाला होता है तब 'ब्रह्म-मुहूर्त' और 'अमृत-वेला' प्रारम्भ होता है। वे कहते हैं कि ब्रह्म-मुहूर्त अथवा अमृत-वेला ही योगियों के योग लगाने के लिए सर्वश्रेष्ठ होता है। उस समय ही परमात्मा सृष्टि में परिभ्रमण करते हैं; अतः वह समय विशेष तौर पर प्रभु मिलन का समय होता है। इसलिए सभी मनुष्यों को चाहिए कि निद्रा, आलस्य और विकार छोड़ कर उस समय उठ कर परमात्मा को ही याद करें।

वत्सो, ऐसे लोगों को बताना चाहिए कि वास्तव में वर्तमान समय ही सारी सृष्टि के लिए अमृत वेला है क्योंकि अब ही मैं ज्ञान सागर परमात्मा सारी सृष्टि को ज्ञान रूपी अमृत दे रहा हूँ; अब ही मुझ द्वारा ज्ञान रूपी अमृत पीने की वेला है। अब ही सारी सृष्टि के लिए 'ब्रह्ममुहूर्त' भी है क्योंकि अब यह शरीर छोड़कर 'घर' (ब्रह्मलोक) में लौटने का शुभ मुहूर्त है। अब 'काम' विकार द्वारा आपघात करने का समय नहीं। वह व्यक्ति तो बहुत ही निकृष्ट तथा अधम माना जाता है जो ब्रह्म-मुहूर्त अथवा अमृत-वेले में 'काम' द्वारा पतित होता है। अतः अब 'ब्रह्म-मुहूर्त' और 'अमृत-वेले' का वास्तविक अर्थ जानकर वापस ब्रह्मलोक में जाने तथा ज्ञान रूपी अमृत प्राप्त करने का पुरुषार्थ करना चाहिए।

6. यात्रा, यज्ञ, सत्संग और त्योहार

शिव बाबा बताते हैं - "वत्सो, जब कोई भक्त वैष्णो देवी इत्यादि की

यात्रा पर जाता है तो वह काम-वासना का संकल्प तक भी नहीं करता। वह निस्संकल्प होकर अनिवार्य रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करता है ताकि उसकी यात्रा सफल हो और उसका इष्ट उस पर प्रसन्न हो। उसका जो इष्ट हो, वह रास्ते में उसका ही जयघोष करता चलता है। उदाहरण के तौर पर अमरनाथ की यात्रा पर जाने वाला व्यक्ति - “अमरनाथ बाबा की जय! विश्वनाथ भोले की जय!” - इस प्रकार मन या वचन द्वारा ‘जय’ करता चलता है। ठीक इसी प्रकार, अब आप भी तो बुद्धि द्वारा मुझ परमपिता शिव अथवा अमरनाथ अथवा सोमनाथ के धाम (ब्रह्मलोक) ही की यात्रा पर हो। अतः आपको भी चाहिये कि जब तक यह यात्रा चल रही है अर्थात् जब तक यह शरीर है, तब तक ब्रह्मचर्य का पालन करो ताकि आपकी भी यात्रा सफल हो और अन्त में आप मेरे अव्यक्त धाम में पहुँच सको।

वत्सो, जहाँ यज्ञ रचा हुआ होता है, वहाँ या यज्ञ-स्थली के आसपास भी कभी कोई व्यक्ति यह घृणित कर्म करने का संकल्प भी नहीं करता। अतः आप सभी नर-नारियों को बताओ कि अब इस सृष्टि रूप विराट घर में परमपिता परमात्मा शिव ने प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा विशाल ‘ज्ञान यज्ञ’² अथवा ‘रूद्र गीता-ज्ञान यज्ञ’ रचा है।

अतः अब वे वासना द्वारा अपवित्र होने का दूषित संकल्प ही त्याग दें। यज्ञ को खण्डित करना अथवा उसमें विघ्न डालना महा-पाप का भागी बनना है। इस प्रकार कर्म-गति को समझकर अब इस विराट यज्ञ की समाप्ति की घोषणा तक पवित्र रहना ही चाहिये।

वत्सो, जब किसी के घर कोई महात्मा जाते हैं, तब वे भी कम-से-कम महात्मा के वहाँ ठहरने तक तो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते ही हैं। ठीक इसी

1. ‘यात्रा’ शब्द के ‘या’ और ‘त्रा’ को यदि अलग-अलग किया जाय तो इसका अर्थ होता है - आत्मा का त्राण करने वाली, उसे दुःखों तथा अशान्ति से मुक्त करने वाली। अतः बुद्धि योग ही सही अर्थ में ‘यात्रा’ है। मन अथवा बुद्धि द्वारा अमरलोक अथवा ब्रह्मलोक के वासी शिव बाबा के पास जाना ही सच्ची ‘यात्रा’ है। हम अभी इसी का अभ्यास कर रहे हैं और यह हमारे शरीर का अन्त होने तक चलती रहेगी।
2. यहाँ ‘ज्ञान-यज्ञ’ से यह अभिप्राय है कि ज्ञान रूपी अग्नि को प्रज्वलित करके, उसमें काम की आहुति, देह-अभिमान की आहुति तथा अन्य विकारों की आहुति दी जाय।

प्रकार, आप लोगों को बताओ कि अब जबकि स्वयं परमपिता परमात्मा इस सृष्टि को पावन बनाने के लिये आये हुए हैं तो अब उन्हें हर हालत में ब्रह्मचर्य का पालन करना ही चाहिये।

वत्सो, सभी धर्मों में यह भी रिवाज है कि जब उनके यहाँ कोई पवित्र पर्व अथवा त्योहार होता है, तब भी वे पवित्रता का पालन करते ही हैं। अतः आप विश्व में इस बात की घोषणा करो कि वर्तमान समय पुरुषोत्तम-युग है, अब परमपिता परमात्मा स्वयं अवतरित होकर पुरुषोत्तम योग तथा पवित्र गीता-ज्ञान की शिक्षा दे रहे हैं और अब तो सही अर्थों में 'शिवरात्रि' है क्योंकि इस अज्ञान-रात्रि में परमपिता शिव आये हैं, अतः अब तो उनका यह पवित्र कर्तव्य ही है कि वे ब्रह्मचर्य का पालन करें।

7. यह संकट की वेला है; ईश्वरीय आदेश है कि - 'पवित्र और योगी बनो'

शिव बाबा ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि - "देह-अभिमान और काम विकार के कारण अब सारी सृष्टि में संकटमय-स्थिति (Emergency) है। जन-संख्या की तीव्र वृद्धि के कारण तथा मनुष्य के काम-क्रोधादि के कारण यह सृष्टि अब दुःखधाम बन गयी है। अतः अब इसे फिर से सुख-शान्ति सम्पन्न बनाने के लिये यह ईश्वरीय आदेश (God's ordinance) है कि "काम रूपी विष का पीना और पिलाना बन्द करो। अब काम कटारी द्वारा आपघात करना छोड़ दो! अब पवित्र और योगी बनो और काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि महा-शत्रुओं को इस देश से निकालकर यहाँ सुख-शान्ति की पुनः स्थापना में सहयोग दो। अब मुझसे पूर्ण पवित्रता सुख, स्वास्थ्य एवं शान्ति का ईश्वरीय जन्म-सिद्ध अधिकार लो। अब नहीं तो फिर कभी नहीं!!"

8. समझ

समझकर कार्य करने से सफलता मिलती है। अतः सबसे पहले तो मनुष्य को यह समझ लेना आवश्यक है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने के लाभ क्या हैं और इसका पालन न करने से हानियाँ क्या हैं? जब तक मनुष्य यह न जान ले

कि पवित्र और योगी जीवन ही उच्च है और विकारी तथा भोगी जीवन बन्दर के जीवन से भी तुच्छ है और कि एक जन्म में भी इस विकार का संन्यास करने से मैं प्रभु का प्यार प्राप्त करूँगा और स्वर्ग का स्वराज्य भी, तब तक वह यथार्थ रीति से पुरुषार्थ नहीं कर सकता। जब तक मनुष्य अपने मन से किसी कार्य को न करना चाहे तब तक वह किसी के कहने से पूरा मन देकर नहीं करता। इसलिए, पहले तो अपने मन में यह उत्कट इच्छा होनी चाहिये कि “मैं पवित्र और योगी बनूँ” और यह इच्छा सफल रूप तभी धारण करेगी जब इसको ज्ञान का आधार मिलेगा। ज्ञान के बिना मनुष्य काम-वासना को दबाने का ही प्रयत्न करेगा परन्तु जैसे काँटे को अन्दर दबाये नहीं रखना होता बल्कि निकाल बाहर फेंकना होता है, वैसे ही ‘काम’ के संस्कार को भी निकालना है और यह बड़ा काँटा निकल तभी सकता है जब इसे ‘काँटा’ समझा जाय और इसे न निकलने का परिणाम अथवा इसकी हानि को भलि-भाँति समझ लिया जाय। अतः पहले यह स्पष्ट रीति से जान लेना चाहिए कि ‘ब्रह्मचर्य’ ही स्वर्ग का ‘द्वार’ है और ‘काम’ ही ‘नर्क’ का द्वार है और कि काम सभी पापों का मूल है और पाप, आत्मा से भिन्न किसी प्रकृतिकृत मन को नहीं लगता बल्कि आत्मा ही को लगता है जिसके परिणामस्वरूप आत्मा ही पापात्मा बन जाती है और दुःख पाती है।

9. दृढ़ संकल्प

समझने के बाद ही मनुष्य अपने मन में यह दृढ़ संकल्प करता है कि – “मैं पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा।” दृढ़ संकल्प से मनुष्य बड़े-बड़े कार्य कर लिया करता है और रास्ते में आने वाली रुकावटों को भी उलाँघ लेता है। दृढ़ संकल्प के बिना मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए वेगवान और धैर्यवान नहीं होता बल्कि उसका मन चलायमान होता है।

इसलिए यह दृढ़ संकल्प करना चाहिए कि चाहे कुछ भी हो, चाहे मुझ पर कितने सितम भी ढाये जाएँ, मैं प्रभु की आज्ञा के अनुसार पूर्ण पवित्र बनकर मुक्ति और जीवन्मुक्ति का अधिकारी बनूँगा। चाहे मेरे मन में माया के कितने भी तूफान आएँ और चाहे इस कलियुगी संसार के लोग मुझे कुछ भी कहें, मैं धरती पर भले

ही पड़ जाऊं परन्तु पवित्रता रूपी धर्म नहीं छोड़ूंगा क्योंकि यही तो मेरी अनमोल निधि है और मेरे लिए ईश्वर की प्रिय देन है। लोक-लाज भले खोनी पड़े परन्तु अपने वचन की लाज अवश्य रखूंगा और मेरे प्राणों को भले कोई हर ले परन्तु पवित्रता को नहीं हर सकता।

10. घर में देवताओं इत्यादि के चित्र

अपने को परमात्मा के पुत्र अथवा देवताओं के वंशज मानते हुए घर में परमपिता परमात्मा शिव का चित्र तथा श्री लक्ष्मी, श्री नारायण, श्रीकृष्ण, श्री सीता, श्री राम इत्यादि देवताओं के चित्र लगाने चाहिएँ ताकि घर में मन्दिर अथवा आश्रम की तरह वातावरण हो जाय और उनसे यह स्मृति मिलती रहे कि — “हम देवताओं के वंशज हैं, हम तो परमात्मा की संतति हैं, भगवान की सन्तान होकर हमको शैतान-जैसा कार्य नहीं करना चाहिए। देवताओं के वंशज होकर दानव अथवा दैत्य-जैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए।” अब घर से गन्दे चित्र हटा देने चाहिएँ क्योंकि वे सभी चित्र देह-अभिमान और विकारी बनाने वाले हैं। देवताओं के चित्र भी ज्ञान-युक्त और अर्थ-सहित बने हुए होने चाहिएँ। मनगढ़न्त चित्रों को लगाने से आत्मा में शक्ति नहीं आयेगी क्योंकि झूठ में बल नहीं है। इस प्रकार अब घर को ही मन्दिर समझना चाहिए। जब तक घर को एक आश्रम (पवित्र स्थान) नहीं समझा जाएगा तब तक काम का कुठाराघात (criminal assault) भी होता रहेगा। देवताओं के चित्रों के अतिरिक्त अपना भी एक चित्र पवित्रता के तथा सोने के ताजयुक्त बनाया और लगाया जा सकता है। वह चित्र घर में लगा हुआ रहने से इस बात की स्मृति दिलाता रहेगा कि — “अपवित्र बनने से स्वर्ग का दैवी राज्य-भाग्य गँवा बैठूंगा और दण्ड का भी भागी बनूंगा।” इसलिए अपने को सावधान करो।

11. भावी विनाश की ओर ध्यान

यह जो ऐटम और हाइड्रोजन बम बने हैं और भारत में जो विषय-विकार, देह-अभिमान, भ्रष्टाचार, पारस्परिक विरोध, धन-संकट इत्यादि बढ़ते जाते हैं, ये सभी भावी विनाश के ही अग्रदूत हैं। परमपिता परमात्मा ने पहले से ही अनेक बार

इनके साक्षात्कार कराये हैं और सतयुग से लेकर कलियुग के अन्त तक जो त्रैकालिक ज्ञान दिया है उसके आधार पर भी भावी घटना की भवितव्यता को स्पष्ट किया है। ज्ञान द्वारा क्या, अब तो वैसे भी विनाश के चिह्न स्पष्ट दिख रहे हैं। परन्तु यदि कोई देखता हुआ भी इसे न देखे तो मानो बिल्ली को देखकर कबूतर की तरह वह आँखें बन्द करने वाले वृत्तान्त को दुहराता है। कोई माने या न माने; विनाश किसी के न मानने से रुक तो जायेगा नहीं; इसलिए विनाश से पूर्व इस अन्तिम जन्म का जो शेष थोड़ा-सा समय रह गया है, इसी में ही काम, क्रोधदि को मन, वचन तथा कर्म से पूरी रीति से जीतना है।

आज वैज्ञानिक भी कहते हैं कि ऐटम बमों के प्रयोगों (Experiments) के परिणामस्वरूप मनुष्यों पर धीरे-धीरे ऐसा प्रभाव पड़ेगा कि मैथुन करने पर भी सन्तानोत्पत्ति बन्द हो जाएगी। अतः यों भी भावी-वश इस विकार को तो छोड़ना पड़ेगा ही क्योंकि अब ईश्वरीय योजना ही इस सृष्टि को पवित्र बनाने की है, परन्तु यदि अपने ही पुरुषार्थ से इस 'काम' विकार को कोई छोड़ता है तो उसे बहुत उच्च फल मिलेगा। जन्म-जन्मान्तर से पक्के हुए इन विकारी संस्कारों को इतने थोड़े समय में बदलने के लिए हमें बहुत ही तीव्र पुरुषार्थ करना चाहिए। इसमें अपना ही कल्याण है। वर्तमान समय घोर संकट का समय है। मौत सिर पर खड़ी है। जब संकट या मौत सामने हो अथवा मनुष्य अत्यन्त बीमार हो तो मनुष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह परमात्मा की ही याद में रहे, गीता-ज्ञान सुने और ज्ञानामृत का पान करे। यह 'काम' तो बहुत बड़ी बीमारी है और विनाश महामृत्यु है। अतः अब तो अवश्य ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन करना चाहिए।

किसी को इस भावी विनाश के बारे में निश्चय न भी हो तो भी सोचना चाहिए कि — "मौत के काल का भी पता तो है नहीं और यह तो पता है ही नहीं कि कौन-सा श्वास अन्तिम श्वास है, तब क्यों न अभी से लेकर पवित्र रहा जाय?" यह सोचना कि अभी तो मैं युवक हूँ, नव-विवाहित हूँ, अथवा अभी तो जीवन का काफी समय पड़ा है, कुछ तो काम-वासना का भोग करके अनुभव कर देखूँ, यह महामूर्खों का काम है क्योंकि काल, वृद्ध अथवा युवक, किसी को बताकर नहीं आता। इन विकारों की अग्नि से हुए घाव तो अभी तक मनुष्य को लगे हुए हैं,

फिर इस काम-वासना को अनुभव करके देखने का प्रश्न ही क्यों उठता है? इसलिए, मनुष्य को आज ही से, नहीं नहीं अभी ही से, काम पर विजय प्राप्त करने का और जितेन्द्रिय बनने का पुरुषार्थ करना चाहिये क्योंकि पुरुषार्थ का यह अवसर फिर नहीं मिलेगा और वैसे भी यह समय तो हाथ से व्यर्थ ही चला जायेगा और विकर्मों का बोझ भी बढ़ जायेगा और जो बुरे संस्कार साथ जायेंगे उनके फलस्वरूप भविष्य में भी तो वही बुरा ही होगा। इसलिए अच्छे काम में देर नहीं करनी चाहिए!!

भावी विनाश अथवा मृत्यु से वैसे भी यह शरीर तो छूट ही जाना है तब क्यों न इस शरीर के हर एक अंग को कमल फूल के समान पवित्र रखा जाय? जब कि अब कुदरत के जोर से भी विनाश होने पर यह विकार छूट ही जाना है तो क्यों न स्वेच्छा से इसे छोड़कर पवित्रता रूपी पुरुषार्थ के भागी बनें। जैसे खीरे को काटकर उसका कड़वापन निकाल दिया जाता है, इस प्रकार ज्ञान का मनन करके अब मन से काम रूपी कड़वेपन को निकाल ही देना चाहिए।

12. धर्मराज के दण्ड का ध्यान

कर्म का फल या तो भोगना पड़ता है और या योगाग्नि से कर्म को भस्म करना पड़ता है, तीसरा कोई उपाय नहीं है। विकारी मनुष्य योगाग्नि तो प्रज्वलित कर नहीं सकता। इसलिए उसे बहुत ही दुःख भोगना पड़ता है। कामी को तो बहुत ही कष्ट भोगने पड़ते हैं क्योंकि कामवासना के भोग के लिए स्त्री और पुरुष दो जीवों की आवश्यकता होती है और इस कारण कामी न केवल स्वयं पाप कर्म करके पतित होता है बल्कि दूसरी आत्मा के पतन का भी निमित्त कारण बनता है। अतः अब अथवा पूर्वकाल में किए हुए विकर्म, जो अभी दग्ध नहीं हुए हैं, उनके कारण बहुत कड़ा दण्ड कामी को, आने वाले महाविनाश के समय और बाद में धर्मराजपुरी में भी अवश्य ही भोगना पड़ेगा। धर्मराजपुरी के दण्ड के सामने इस संसार की बीमारी, निर्धनता इत्यादि के कष्ट कुछ भी नहीं हैं। धर्मराजपुरी में सूक्ष्म शरीर धारण किए हुए विकारी मनुष्य ऐसा अनुभव करता है मानो यमदूत उसके कोमलांगों के स्थान पर से आरी चलाते हुए उसके शरीर के दो टुकड़े करते

जा रहे हैं अथवा यमदूत उसकी खाल उधेड़ रहा है, आदि आदि। इसलिए, आप ही सोचिये कि एक अंग की विलासिता अथवा काम-वासना के कारण इतने कड़े दण्ड का भागी बनने की स्वीकृति देना महामूर्खता ही तो है।

अतः मनुष्य को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि – “अब जबकि निकट भविष्य में सृष्टि के महाविनाश के बाद धर्मराजपुरी में विकर्मों का लेखा-जोखा होगा तो मेरी क्या गति बनेगी? अज्ञान काल में अनजाने जो हुआ सो हुआ, अब जानबूझकर करना तो अत्यन्त धृष्टता और दूषित स्वभाव ही है। जानने बूझने के बाद, ज्ञानी मनुष्य को तो विकर्म का सौ गुणा अधिक दण्ड मिलता है। इसलिए मुझे योग-युक्त होकर इस घृणित काम-विकार से मुक्त होकर, यम के दण्ड से बचने का पुरुषार्थ करना चाहिए।”

13. घृणा

इतना सब समझने पर भी यदि किसी मनुष्य के मन में वासना पैदा होती है तो उसे शरीर की बनावट पर ध्यान देना चाहिये। उसे इस बात को स्मृति में लाना चाहिए कि सम्भोग तो सचमुच गन्दे नाले अथवा मेन होल (manhole) में घुसने के तुल्य है। मल-मूत्र त्यागने के अंग गन्दे नाले अथवा परनाले से क्या कम हैं? इस प्रकार का कार्य करना तो गन्दे लोगों का अथवा शूद्रों का ही काम हो सकता है।

वैसे भी नर-नारी के शरीर में रखा ही क्या है? आप ज़रा नर-कंकाल अथवा हड्डियों के ढाँचे, बीमार या बूढ़ी औरत अथवा मनुष्य के कान, नाक इत्यादि के मल-स्थानों की अपवित्रता का तो विचार कीजिए! अस्थि-चर्म के बने हुए और कफ-कचड़े से भरे हुए तमोगुणी, कलियुगी शरीर पर मोहित होना तो वैसे ही है जैसे मक्खी का कूड़े-करकट के ढेर पर बैठना अथवा ऊँट का अपने ही मूत्र पर फिसलकर बैठ जाना। यह तो सचमुच घृणित ही कर्म है। यह तो महापाप है, तभी तो छिपकर और अन्धेरे में किया जाता है। यदि कोई न्यायाधीश का बच्चा चोरी से, विधान-विरुद्ध, अथवा अनुशासन के नियम को भंग करके कोई कार्य करता है तो उसके लिए अत्यन्त लज्जास्पद बात है; ठीक इसी प्रकार, सर्वोच्च

न्यायाधीश धर्मराज परमपिता परमात्मा की सन्तान होकर इस निन्दनीय काम को करना तो उससे भी अधिक लानत लाने वाला काम है।

इस पर भी एक बात और है। भला मुर्दे से सम्भोग करने का विचार तो किसी पागल को भी नहीं आयेगा। परन्तु अब तो अवश्यम्भावी आण्विक विस्फोट-युद्ध (Nuclear World War) तथा अन्य संकटों द्वारा होने वाले महाविनाश की छाया सभी पर पड़ी हुई है। इस दृष्टिकोण से तो सभी कब्र में दाखिल हैं। भगवान् कहते हैं - “तुम ज्ञान की दृष्टि से देखो तो सब मरे पड़े हैं।” अतः इन मुर्दों से सम्भोग का संकल्प करना तो अत्यन्त नीच कर्म है। इस पर यदि कोई मनुष्य मुक्ति का विचार न करके काम द्वारा मौत की ही बात सोचता है तो उस आत्मा को ‘अपना शत्रु आप’ बन अपने ही हाथों भाग्य लुटाने वाला विचारहीन ही समझना चाहिए।



राम-राज्य की स्थापना में सहयोग दो!

पवित्रता सुख-शान्ति सम्पन्न और धर्म तथा दैवी मर्यादा से युक्त 'राम-राज्य' की तुलना में ज़रा आज के भारत की दशा देखिये! वर्तमान समय तो भारत में सतयुग की तरह के सुख और शान्ति का नाम भी नहीं है क्योंकि जब 'करनी' ही वैसी सतोगुणी नहीं तो 'भरनी' कैसे श्रेष्ठ हो सकती है? आज यदि सुख है तो भी काक-विष्टा के समान है क्योंकि मनुष्य काम-विष्टा के कीड़े बने हुए हैं। ओहो, आज के भारत में इतना दुःख क्यों है कि लोगों को जीवन-निर्वाहार्थ धन्धा (employment) ही नहीं मिलता? भारत की ऐसी हालत भला की किसने? 'काम' ही ने तो की। उसी के कारण ही तो जन-संख्या में इतनी वृद्धि हुई है और उससे अनेकानेक समस्याएँ भी पैदा हुई हैं।

राम-राज्य के बारे में प्रसिद्ध है कि राम-राज्य में "धर्म का उपकार" था। परन्तु आज तो भारत में धर्म का स्थान अधर्म ने ही ले लिया है और यहाँ के वायुमण्डल में अधर्म और विकारों की दुर्गन्ध है। भारत की सर्व-प्राचीन दैवी-मर्यादा का प्रायः लोप हो चुका है और कोई राम-सीता के समान पावन एवं देवी-देवता के समान राजा-रानी तो है ही नहीं। बल्कि आज तो घर-घर में काम-कटारी चलती है और लोग भले ही दस-बीस मिनट राम की माला जपते हों, वे बाकी समय तो 'काम' की माला फेरते हैं। वे भले ही वर्ष में एक बार 'रामलीला' रच लेते हों परन्तु वर्ष-भर तो 'कामलीला' ही चलती है! हैं तो सभी माया ही के दास परन्तु मन्दिरों में जाकर कहते यही हैं कि - "हे प्रभु, मैं तो आप ही का दास हूँ।" सारा दिन तो वे काम-क्रोधादि की साधना में लगे रहते हैं परन्तु अपना परिचय देते हुए वे यही कहते हैं कि "मैं तो प्रभु-प्राप्ति के लिये एक साधक हूँ।"

आज लोगों की जो 'राम-राज्य' की इच्छा है, उससे ही सिद्ध है कि आज के भारत में पवित्रता का राज नहीं है बल्कि विकारों रूपी 'रावण' का राज है क्योंकि इच्छा सदा उस ही वस्तु की होती है जो प्राप्त न हो। आज का राज्य तो 'मिराज' (Mirage - मृगतृष्णा) है, 'राम-राज्य' नहीं। सच पूछो तो वर्तमान राज्य 'काम राज्य' है क्योंकि यहाँ 'काम' विकार ने सभी को पतित बना दिया

हुआ है। ऐसा एक भी मनुष्य नहीं जिसका मन 'काम' के बाणों से छलनी न हुआ हो और जिस पर काम ने शासन न किया हो। इस कलियुगी विश्व में तो सभी का जन्म भी काम-वासना के भोग से हुआ है।

काम-राज्य होने के कारण ही आज हर-एक वस्तु की कमी का अनुभव होता है। आज खाने के लिये अनाज कम है, रहने के लिए घर कम हैं, पहनने के लिए कपड़ा कम है, शरीर-निर्वाह के लिए आय कम है। आज सतयुग की तुलना में मनुष्य की औसत आयु भी कम है और आत्मिक सुख तथा शारीरिक स्वास्थ्य भी कम है। अतः यह स्मरण कर लो कि **जहाँ काम है वहाँ कमी भी अवश्य है।** हाँ, केवल जन-वृद्धि ही अधिक है। जिस भारत में कभी दूध की नदियाँ बहती थीं, आज वही भारत विषय-वैतरणी बन गया है। ओहो! काम विकार ने सभी को ठाकुर से "ठिक्कर" बना दिया है!!

काम को छोड़ राम के बनो

काम ही ने वास्तव में भारत को दुःखी बनाया है। 'काम' 'क' 'आ' 'म' से नहीं बना है बल्कि कम्बख्ती, आफ़तों और मृत्यु से बना है। जहाँ काम है वहाँ कम-नसीबी, आपदायें और मौत में से एक-न-एक का प्रहार होता रहता है। काम ही के कारण मनुष्य में सहन-शक्ति की कमी होने से क्रोध उत्पन्न होता है। काम और क्रोध से ही मनुष्य की बुद्धि मन्द और मलीन होती है। बुद्धि का नाश होने से ही मनुष्य का सर्वनाश होता है। संसार के नाश के लिए जो ऐटम और हाइड्रोजन बम इत्यादि बने हैं, यह राजा 'काम' और उसके सिपहसालार (सेनापति) 'क्रोध' की ही देन हैं। अतः याद रहे कि 'काम' से कुल बढ़ता नहीं है बल्कि नष्ट होता है क्योंकि 'काम' तो अधर्म का साक्षात् रूप है। 'काम' का भोग करने को 'काला मुँह करना' कहा जाता है क्योंकि इससे मनुष्य का स्वास्थ्य और मनुष्य की सुन्दरता और बुद्धि का नाश होता है और मनुष्य जल-सा जाता है।

अतः अब 'काम' को छोड़कर 'निराकार' राम ही का बनना चाहिये क्योंकि निराकार राम ही भव सागर से पार करने वाले हैं। वह ही सुख-शान्ति के

‘दाता’ हैं। जब तक ‘काम’ रूपी रावण को ज्ञान और योग की अग्नि से नाश नहीं किया जायेगा तब तक ‘राम राज्य’ की आशा, लाख प्रयत्न करने पर भी पूरी नहीं हो सकेगी। यह ‘काम’ ही राम-राज्य की कीमत है। इस काम को जीतो तो हथेली पर बहिस्त है!! इस काम रूपी विदेशी अथवा म्लेच्छ को मारो तभी सच्ची स्वतन्त्रता है, वरना सुख का श्वास कहाँ?

काम पर पतित-पावन राम ही विजय प्राप्त करा सकते हैं

याद रहे कि इस काम पर निराकार राम ही विजय दिला सकते हैं। यह रामेश्वर (परमात्मा शिव) ही के लिए प्रसिद्ध है कि उन्होंने ‘काम’ को भस्म कर दिया था। त्रेतायुगी राम ने भी पूर्व-काल में रामेश्वर ही से शक्ति लेकर काम रूपी रावण का विध्वंस किया था। अतः परमात्मा शिव ही राम-राज्य अथवा सच्चे स्वराज्य की स्थापना करा सकते हैं।

कर्म-संन्यासी लोग राम-राज्य स्थापन नहीं कर सकते

कर्म-संन्यासी और साधु इत्यादि तो संसार में और गृहस्थ में इसे न जीत सकने के कारण कायरता से जंगल में भाग जाते हैं। अतः वे ‘काम’ के राज्य का पूर्णतः अन्त नहीं कर सकते। वे तो माया को दुस्तर मानते हैं। प्रायः ऋषि-मुनि तो स्वयं भी इस काम रूपी रावण के शिकंजे से बाहर नहीं निकल सके। जो स्वयं ही फन्दे में कैद है, क्या वह दूसरों को कैद से छुड़ा सकता है? इस पर विजय प्राप्त कराने वाले तो एक ही पतित-पावन निराकार राम (परमात्मा शिव) हैं। इन साधुओं का भी काम-क्रोधादि विकारों से ‘परित्राण’ करने वाले तो केवल एक भगवान शिव ही हैं। साधु, सन्त इत्यादि तो राज्य-भाग्य को ‘काक-विष्टा के समान’ और संसार को ही ‘मिथ्या’ मानते हैं। अतः वे भारत में ‘राम-राज्य’ स्थापन नहीं कर सकते। वे तो स्वयं भी पावन होने के लिए साधना कर रहे हैं अर्थात् विकारयुक्त हैं। अतः वे भारत को पावन कैसे बना सकते हैं? वे तो ‘नारी को नर्क का द्वार’ मानते हैं, परन्तु राम-राज्य में तो सीता जैसी नारियाँ भी चाहिएँ। नर को पवित्र श्री नारायण अथवा श्री राम और नारी को पवित्र श्री लक्ष्मी अथवा श्री सीता बनाने वाले तो देव-देव परमात्मा ही हैं, न कि संन्यासी। परन्तु

प्रवृत्ति और निवृत्ति के भेद को न जानने के कारण भारत में कुछ लोग साधुओं और कर्म-संन्यासियों ही के द्वारा 'राम-राज्य' की स्थापना के कार्य में सहायता और सफलता की मिथ्या आशा लिए बैठे हैं; उन्हें यह मालूम ही नहीं है कि निवृत्ति-मार्ग वाले संन्यासी गृहस्थियों की प्रवृत्ति पूर्णतः पवित्र नहीं बना सकते। प्रवृत्ति को पवित्र करने वाले तो पतित-पावन परमात्मा ही हैं। अब वह पतित-पावन परमात्मा शिव ही राम-राज्य अर्थात् पवित्रता के राज्य की स्थापना करने के लिए सहज ज्ञान और राजयोग की शिक्षा दे रहे हैं क्योंकि ज्ञान रूपी तलवार से ही इस काम रूपी शत्रु का नाश हो सकता है। इस राज-योग से ही राम-राज्य स्थापन हो सकता है, न कि संन्यासियों के तत्त्व-योग से।

‘कामी’ ही कायर और कमजोर

वह पतित-पावन, ज्ञान के सागर, शान्ति के सागर, प्रेम के सागर, कल्याणकारी, मुक्ति और जीवन्मुक्ति के दाता परमपिता परमात्मा त्रिमूर्ति शिव कहते हैं—

“हे वत्स! जन्म-जन्मान्तर तो तुम लौकिक माता-पिता से विकारों की नकल” करते आये हो अथवा उनसे जन्म-जन्मान्तर तो इन विकारों का वर्सा लेकर उन्हें भोगते आये हो। परन्तु इन्हीं विकारों ही से तुम्हारा खाना खराब हुआ है। इसी ‘काम’ विकार के कारण ही तुम महा दुःखी हुए हो। परन्तु, हे वत्स, अब इस अन्तिम जन्म में तो, मेरे नाम पर, पवित्र बनो क्योंकि अब मुझे पुनः सतयुगी पवित्र सृष्टि की स्थापना करनी है। अब तो ‘काम’ रूपी विष को छोड़कर ज्ञानामृत लो। इस एक ही जन्म के अन्तिम समय में अपने संस्कारों को पवित्र बनाने से तुम पवित्र दुनिया में सदा के लिये सुख-शान्ति प्राप्त कर लोगे। वत्स, क्या तुम इतने कायर और कमजोर हो गये हो कि इस एक जन्म के बाकी रहे हुए थोड़े-से समय के लिये, मेरी खातिर भी इसे नहीं छोड़ सकते? क्या मेरे लिए इतनी भी कुर्बानी नहीं कर सकते? क्या मुझसे तुम्हारी बस यही प्रीति है? क्या तुम माया के मुरीद बने ही रहना चाहते हो? तुम तो जन्म-जन्मान्तर कहते थे कि “हे पतित-पावन प्रभु, विषय-विकार मिटाओ और हमारे पाप हरो”; अतः अब इन्हें छुड़ाने ही मैं आया हूँ, तो तुम इन्हें छोड़ते क्यों

नहीं हो? मगरमच्छ को पकड़कर बैठे हो भवसागर से पार उतरने के लिए! अथवा, काम के गुलाम बनकर प्राप्त करना चाहते हो राम का राज्य!!!”



ब्रह्मचर्य के बिना स्वराज्य मृगतृष्णा के समान

वर्तमान युग सामाजिक चेतना का युग है। इस युग में समाजवाद (Socialism) का बोल-बाला है। निस्सन्देह, आज व्यक्ति के मौलिक अधिकारों को तो महत्त्व दिया ही जाता है परन्तु इस बात पर भी विशेष तौर पर जोर दिया जाता है कि समाज के हितों को व्यक्ति के हित से अधिक मूल्य दिया जाये और, यदि परिस्थिति ऐसी हो कि व्यक्ति के हित समाज के हित, से टकराते हों तो समाज के हित को प्रधानता देते हुए व्यक्ति अपने मौलिक अधिकार (Fundamental-right) का भी उत्सर्ग कर दे।

भारतीय संस्कृति में तो चिरकाल से इस आदर्श को मान्यता दी जाती रही है कि समाज के कल्याण को मुख्यता दी जाये। अतः आज जबकि ज़माना ही समाजवाद का है तब व्यक्ति से यह माँग करना कि वह समाज की आर्थिक, चारित्रिक एवं आध्यात्मिक अवस्था को सामने रखते हुए वासना-भोग का त्याग कर दे और पवित्रता एवं ब्रह्मचर्य का व्रत ले, उससे कोई अनुचित प्रस्ताव करना नहीं होगा बल्कि यह तो स्वयं उसके लिए भी हित का मार्ग प्रशस्त करने की न्यायीं होगा क्योंकि इससे उसका अपना जीवन भी सुखी होगा और एक सुखमय समाज का भी उदय होगा। इस परिप्रेक्ष्य में हम उन विवाहित लोगों से, जो यह कहते हैं कि स्त्री-संसर्ग अथवा सम्भोग (Conjugal right) उनका एक वैध (legal) अधिकार है, आवेदन करते हैं कि जैसे समाज की परिस्थितियों की माँग के अनुसार कई देशों में, व्यक्ति ने निजी सम्पत्ति (Property) को अनियंत्रित रूप से एकत्रित करने के मौलिक अधिकार का उत्सर्ग किया है, वैसे ही आज जनसंख्या की अतिवृद्धि के कारण उत्पन्न हुए अभूतपूर्व संकट में समाज की यह भी एक उचित माँग है कि व्यक्ति समाज के लिए इस कान्जुगल राइट (conjugal right) को त्याग दे। व्यक्ति का यह कदम सामयिक और सदबुद्धि पूर्ण होगा।

यों भी जब कभी देश को आवश्यकता होती है तो व्यक्ति तन से, मन से

और धन से देश की रक्षा के लिए, उसके विकास के लिए अथवा उसकी उन्नति के लिए यथा-योग्य उत्सर्ग करता ही है। जब कोई शत्रु देश उसके देश पर आक्रमण करता है तो क्या वह आवश्यकता पड़ने पर अपने प्रिय बच्चों के जीवन को जोखिम में डालकर सेना में भर्ती नहीं करता? क्या वह देश के रक्षा-कोष में अपनी कुछ पूँजी, अपना कुछ धन, यहाँ तक कि अपने शरीर के शृंगार रूप ज़ेवर को भी देश की रक्षा के लिए नहीं दे देता? क्या वह बाढ़-पीड़ित व्यक्तियों के लिए राहत की व्यवस्था में अपनी ओर से अन्न, धन, वस्त्र इत्यादि को समर्पित नहीं करता? वह भूकम्प अथवा अन्य आपदा से ग्रस्त लोगों के प्रति अपने कर्तव्य को नहीं निभाता? यदि समय और परिस्थिति को देखकर वह यह सब-कुछ करता है तो आज जब देश के भीतर का शत्रु देश पर गुप्त रूप में आक्रमण करके वैसी ही स्थिति लाने में तत्पर है जैसे कि एक देश दूसरे देश का सैनिक, घेराव (Military Blockade) करके वहाँ की अर्थ-व्यवस्था (Economy) को तहस-नहस कर देता है, तब क्या ऐसे आड़े समय में देश के हितैषी के लिए यह उचित है कि वह अपने कर्तव्य से हटकर संसर्ग एवं सहवास अधिकार (conjugal right) की बातें करें? जब युद्ध का बिगुल बज रहा हो, जब देश की स्वतन्त्रता खतरे में हो, हमारे देशवासियों पर आ बनी हो, तब भी यदि किसी व्यक्ति पर वासना का भूत सवार हो, तब क्या उसका यह व्यवहार देश-द्रोह नहीं? क्या यह देश के शत्रु (काम विकार) के साथ साँठ-गाँठ करके अपने देश के प्रति विश्वासघात नहीं? जिस देश का उसने अन्न-जल लिया है, जिस देश की मिट्टी से उसका यह शरीर बना है, जहाँ की सभ्यता और संस्कृति में वह पला है, उस सब के प्रति कृतघ्न होकर सम्भोग के अधिकार की तूती बजाना-क्या यह बेसुर का असामयिक गीत गाना नहीं? हमें यह खूब याद रखना चाहिए कि हरेक अधिकार अपने साथ एक कर्तव्य को भी लिए हुए होता है; अधिकार के साथ अनिवार्य रूप में कर्तव्य वैसे ही जुड़ा होता है जैसे कि किसी सिक्के के दो पहलू एक-दूसरे से ऐसे जुड़े होते हैं कि अलग नहीं किये जा सकते। अतः हम पर जो हमारे पूर्वजों का ऋण है, हमारे देश का ऋण है और विशेषकर हम पर जो ईश्वरीय ऋण है उस सब को चुकाने के लिए हमारा यह परम कर्तव्य है कि, यद्यपि काम के

प्रभाव वाले युग में लोगों ने वासना-भोग को एक अधिकार की संज्ञा दी है, अब हम इस 'अधिकार' को अधिकार न समझ कर विकार समझें, धिक्कार समझें और अब ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें।

ब्रह्मचर्य के बिना समाज-सेवा भी सम्भव नहीं

हम पहले कह आये हैं कि आज विश्व में समाजवाद का बोलबाला है। आज सारे विश्व में लाखों या करोड़ों लोग किसी-न-किसी ऐसे प्रकार के कार्य में लगे हैं जिसे आजकल 'समाज-सेवा' (Social Service) कहा जाता है। आज संसार में गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी, रोग, आर्थिक शोषण, अन्याय, अत्याचार, निवास-स्थान की समस्या को लेकर देश-विदेश में संस्थाएं बनी हुई हैं और लाखों लोग उन व्यवस्थित संस्थाओं के द्वारा या व्यक्तिगत रूप से पीड़ितों को राहत पहुँचाने में कार्यरत हैं। किसी ने कोई महिला संस्था बना रखी है और वह उसके द्वारा महिलाओं पर होने वाले अन्याय अथवा उन पर ढाये जाने वाले सितम की रोकथाम में लगा हुआ है तो अन्य कोई निर्धन लोगों को कोई सुविधा, साधन या सामान दिलाने की सेवा में व्यस्त है। इस प्रकार, इस संसार में अनेक प्रकार के दुःख हैं और उन दुःखों की निवृत्त्यर्थ अनेकानेक संस्थाएं और लाखों-करोड़ों समाज-सेवक हैं। इन समाज-सेवकों में राजनीतिक कार्यकर्ता तथा नेता भी सम्मिलित हैं क्योंकि वे भी समाज की कई प्रकार की समस्याओं का हल करने में प्रयत्नशील हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई प्रकार के कार्यकर्ताओं को 'समाज-सेवक' कहा जाता है। अब इन सब के बारे में ध्यान देने के योग्य बात यह है कि जब तक कोई समाज सेवक ब्रह्मचर्य का पालन न करता हो तब तक वह कोई महत्वपूर्ण समाज-सेवा या समाज-सुधार या समाज-कल्याण का कार्य नहीं कर सकता। ब्रह्मचर्य व्रत के बिना वह एक सफल, सुयोग्य और सुयश-प्राप्त कार्यकर्ता सिद्ध नहीं हो सकता।

उदाहरण के तौर पर हम देखते हैं कि महात्मा गाँधी ने स्वेच्छा से इस व्रत का पालन किया और इसके फलस्वरूप उनकी नैतिक-शक्ति, उनका मनोबल, उनकी वैचारिक दृढ़ता, उनका चारित्रिक प्रभाव, उनकी कार्य-विधि एक ऐसे उच्च

स्तर के हो गए कि लाखों-करोड़ों लोग अपनी छोटी-मोटी कठिनाइयों को भूल कर, अपने जान व माल को जोखिम में डाल कर, उनके कहने पर कुर्बानी करने को तैयार हो गए और आखिर एक दिन वे स्वतन्त्रता का ध्वज फहराने में सफल हुए। ऐसे समाज-सेवक को लोग 'महात्मा' कहकर पुकारने लगे अथवा उसे 'बापू' कहने लगे और हर कोई उन्हें अपना मानने लगा। स्पष्ट है कि यदि गाँधी जी सन्तानोत्पत्ति के कार्य में लगे रहते तो करोड़ों लोग उन्हें 'बापू' या 'महात्मा' न कह सकते। यदि वे अपनी ही छोटी-सी गृहस्थी को बढ़ाने और उन्हीं के भरण-पोषण में उलझे रहते तो न वे लोगों का नेतृत्व कर सकते, न जनता के प्रति उनमें आत्मीयता होती और न ही जनता उनके प्रति अपनत्व का अनुभव करती। हमारे इस कथन का समर्थन स्वयं महात्मा गाँधी के अपने लेखों से भी होता है। उन्होंने अपनी लेखनी से एक स्थान पर यह शब्द पत्थर की गहरी लकीर की तरह से लिख डाले हैं, कि 'जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता, वह सही अर्थ में अहिंसक नहीं हो सकता, वह समाज से व्यापक प्रेम भी नहीं कर सकता'। वह समाज की सच्ची सेवा नहीं कर सकता। उन्होंने तो यहाँ तक भी कहा है कि ब्रह्मचर्य के बिना स्वराज्य एक ऐसे मिट्टी के खिलौने की तरह का आम्रफल है जो अन्दर से खोखला और बाहर से बनावटी और नीरस है, यद्यपि देखने में वह सुन्दर है।

1. If we look at it from the standpoint of **Ahimsa** (non-violence), we find that the fulfilment of Ahimsa is impossible without utter selflessness. Ahimsa means Universal love. If a man gives his love to one woman, what is there left for all the world besides? It simply means: 'We two first, and the devil take the rest of them.' As a faithful wife must be prepared to sacrifice her all for the sake of her husband, and a faithful husband for the sake of his wife, it is clear that such persons cannot rise to the height of Universal love, or look upon all mankind as kith and kin. For, they have created a boundary wall round their love, the larger their family, the farther are they from Universal love. Hence, one would obey the law of **Ahimsa** cannot marry, not to speak of gratification outside the marital bond". (The law of continence: **Brahmcharya**, page 54)
2. "काम पर विजय प्राप्त करना स्त्री-पुरुषों का परम कर्तव्य है। उस पर विजय प्राप्त किये बिना स्वराज्य असम्भव है, स्वराज्य बिना स्वराज्य अथवा राम-राज्य होगा ही कहाँ से? स्वराज-विहीन स्वराज्य

महात्मा गाँधी के अतिरिक्त हम दूसरे नेताओं और समाज-सेवियों के जीवन में भी यह देखते हैं कि वे जितना-जितना स्त्री-संसर्ग से दूर रहे, उतना ही जनता में उनका सम्मान हुआ और वे कुछ ठोस कार्य कर सके। यह बात तो विवेक द्वारा भी स्पष्ट है कि यदि समाज-सेवी ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता होगा तो वह पक्षपात-रहित एवं निर्दोष रीति से सेवा नहीं कर पाता होगा क्योंकि वह अपने ही बच्चों को अन्य देशवासियों की अपेक्षा प्राथमिकता देता होगा और अपनी ही गृहस्थी के लोगों को 'स्व-जन' और उससे बाहर के लोगों को 'पर-जन' मानता होगा और अपने ही दैहिक सम्बन्धों में आसक्त होने के कारण निष्पक्ष, निःस्वार्थ एवं निर्दोष रीति से निर्णय नहीं कर पाता होगा क्योंकि उसकी दृष्टि आत्मिक न होकर दैहिक होगी। वह अपने बच्चों के मोह के कारण उन पर अंकुश नहीं पाता होगा। वह अपने बच्चों के अनैतिक, असामाजिक या अवैधानिक काम करने पर भी खुले रूप से उनकी ग़लती को ग़लती घोषित नहीं कर सकता होगा क्योंकि उसमें वह नैतिक एवं चारित्रिक बल ही नहीं होगा। दूर की क्या कहें, हमारे अपने ही देश के आधुनिक कालीन इतिहास के पन्ने, जो इन्हीं एक-दो पीढ़ी के वृत्तान्तों का उल्लेख करते हैं, हमारे इस कथन के जीवित गवाह हैं। कौन नहीं जानता कि नेहरू जी के काल में एक प्रदेश के मुख्यमंत्री को इसलिए इस्तीफा देना पड़ा कि संसद द्वारा लगाए गए आरोप तथा एक पड़ताल आयोग (Enquiry Commission) द्वारा की गई छान-बीन से यह स्पष्ट हो गया कि उन्होंने अपने बच्चों से कई पक्षपात किये थे और उनके बच्चों ने अपने पिता के मुख्यमंत्री होने के कई अनुचित फायदे उठाये थे। यदि कोई व्यक्ति इस बात से अपरिचित भी हो तो वह भी कम-से-कम इस घटना के ज्ञान से तो इन्कार नहीं कर सकता कि हमारे देश के एक प्रधान मंत्री की अपने चुनाव क्षेत्र में पराजय होने का एक मुख्य कारण यह भी था

खिलौने के आम (Toy Mango) की तरह समझना चाहिये। देखने में बड़ा सुन्दर; पर जब उसे खोला तो अन्दर पोल-ही-पोल। काम पर विजय प्राप्त किये बिना कोई सेवक — हरिजन की, कौमी ऐक्य की, खादी की, गौ-माता की, ग्रामवासी की सेवा कभी नहीं कर सकता। इस सेवा के लिये बौद्धिक सामग्री बस होने की नहीं। आत्म-बल के बिना ऐसी महान सेवा असम्भव है। और, आत्म-बल प्रभु के प्रसाद के बिना अशक्य है। कामी को प्रभु का प्रसाद मिला हो — ऐसा अब तक देखा नहीं।' (ब्रह्मचर्य, महात्मा गाँधी, पृष्ठ 93)

कि उसने अपने चेहते बेटे को मनमानी करने के लिए खुली छुट्टी दे रखी थी।

इस प्रकार देखा गया है कि काम द्वारा उत्पन्न बच्चों में प्रायः लोगों का थोड़ा-बहुत लगाव, मोह या पक्ष भाव तो होता ही है। अतः वे समूची जनता को वैसा ही प्रिय नहीं मानते जैसा कि वे अपने लौकिक बच्चों को, अपनी धर्म पत्नी को अथवा उसके और अपने निकट सम्बन्धियों को मानते हैं। यह बात कई प्रकार से उनके सेवा-कार्य में बाधा डालती है। एक ओर इधर की ज़िम्मेदारियाँ उनका काफी समय ले लेती हैं और कई बार उन्हें चिन्ताग्रस्त भी कर देती हैं और दूसरे देह के नाते से उनके जो सम्बन्धी हैं, वे इन पर कई प्रकार का दबाव डालते रहते हैं जिससे पूर्णतः उबरने के लिए वे स्वयं में नैतिक साहस की कमी पाते हैं। अतः देश की स्वतन्त्रता के संग्राम को भी यदि हम उठाकर देखे तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि उस संग्राम में भी जिन नेताओं अथवा कार्यकर्ताओं ने स्त्री-संसर्ग का त्याग किया, वे ही निर्भीक होकर कुछ ठोस काम कर पाये। उन्हें न किसी के लिए सम्पत्ति बनाने की चिन्ता थी, न किसी के दहेज तैयार करने का गम, न किसी भोले-भाले बच्चे की कोमल आवाज़ उन्हें अपनी ओर खींचती, देश की सेवा से हटाती थी, न किसी गृहिणी की आर्थिक आवश्यकताएँ उनके लिए चिन्ता की चिंगारी बनी हुई थीं। इसलिए वे उछलकर स्वयं स्वतन्त्र भाव से स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ते रहे। उनकी सगाई देश की आज़ादी के साथ हुई-हुई थी, देश के सभी नर-नारियों को वे एक बड़े परिवार के सदस्य मानते हुए अपना भाई-बहिन मानते थे। और इन सभी के प्रति अपना कर्त्तव्य मानते थे। जिन्होंने इस संग्राम में कूदने से पहले स्वयं को विवाह के बन्धन में बांध भी लिया था, उन्होंने अब उन बन्धनों से स्वयं को स्वतन्त्र कर लिया था क्योंकि उनके जीवन साथी एक-दूसरे को विकारों की दल-दल में न डाल कर देश की गुलामी की बेड़ियाँ तोड़ने के लिए एक दूसरे के साथी और सहयोगी बनते थे। जब वे भारत माता के लिए सब-कुछ त्याग देने को तैयार थे तो क्या आज़ादी देवी की बलिबेदि पर वे अपनी इस तुच्छ-सी भावना की बलि नहीं दे सकते थे?

इतिहास इस बात का साक्षी है कि स्वराज्य की प्राप्ति के लिए नर-नारी ने

विदेशी सरकार की गोलियों और लाठियों का सामना करना भी मंजूर किया, जेलों में जाकर रेत की रोटियाँ खाना भी स्वीकार किया। आज़ादी के लिए हर कीमत देने का फर्ज अदा किया और न केवल अपने घरों को अंग्रेजी सरकार द्वारा कुर्क करा डाला बल्कि देशवासी स्वतन्त्रता का 'श्वास' ले सकें, इस अच्छे लक्ष्य के लिए फाँसी के रस्से को भी खुशी-खुशी चूम डाला। तब क्या आज हम देश की सच्ची स्वतंत्रता के लिए, सच्चे स्वराज्य के लिए निर्धन, बिलखते बच्चों के आँसू पोंछने के लिए कुछ वर्षों के लिए भी पवित्र नहीं रह सकते? क्या हम यह समझते हैं कि स्वतंत्रता का संग्राम समाप्त हो गया है और हमने सच्चा स्वराज्य ले लिया है? क्या यह हम जान बैठे हैं कि राम-राज्य आ गया है? नहीं, नहीं ऐसा तो कोई भी नहीं मानता होगा क्योंकि यहाँ तो करोड़ों लोग दुःख से त्राहि-त्राहि कर रहे हैं, वे भ्रष्टाचार के शिकार हैं अथवा आत्माएँ रूपी सीताएँ रावण की कैद में हैं। विदेशियों से जो राज्य हम ने लिया है यह तो मृगतृष्णा के समान है; इस द्वारा जनता की सुख-शान्ति की तृष्णा थोड़े ही तृप्त हुई है? नर-नारियों के विकारों की बेड़ियाँ थोड़े-ही टूटी हैं? अभी यहाँ पर भ्रातृत्व की भावना और पारस्परिक प्रेम के झरने थोड़े ही झर रहे हैं, यहाँ कोई घी और दूध की नदियाँ थोड़े ही बहना शुरू हो गई हैं? अभी तो हम विदेशों से धन की सहायता लेते हैं और यहाँ के करोड़ों लोगों के लिए अन्न और आय का साधन जुटाने में भी असमर्थ हैं गोया अभी हम कंगाल हैं। अतः सच्चा स्वराज्य तो तभी होगा जब हमारे मन पर 'काम की वजाय राम' का राज्य होगा और इस देश के सब नर-नारी ब्रह्मचर्य रूपी पूर्ण अहिंसा का पालन करेंगे अर्थात् काम कटारी द्वारा एक-दूसरे की हत्या करना छोड़ देंगे।

भारत माता की पुकार

देश के नर-नारियों, युवकों और युवतियों, भारत के लालों, भारत मां की क्रन्दन ध्वनि को सुनो। इस माता के माथे से काम रूपी कालिख के टीके को धोने के लिए पवित्र बने। बापू गाँधी की समाधी पर श्रद्धा के फूल अर्पित करने वाले लोगों, यह बापू गाँधी की आत्मा की पुकार है कि अभी सच्चे स्वराज्य की मेरी

इच्छा पूरी नहीं हुई, नहीं हुई। अब इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए, सच्चे स्वराज्य को स्थापित करने के लिए पवित्र बने। श्री कृष्ण के मन्दिर में जाकर आरती उतारने वाले लोगों, भीतर के कान खोल कर सुनो तुम्हारी आरती तब तक स्वीकार नहीं हो सकती जब तक तुम भगवान की पवित्र बनने की आज्ञा को स्वीकार नहीं करते। जाओ तुम मन को मन्दिर बनाओ और वहाँ से काम की मूर्ति को हटाकर 'श्रीकृष्ण' की मूर्ति स्थापित करो। राम के पुजारियों, किन्चित अपने से पूछो कि तुम वास्तव में किसके पुजारी हो। क्या एक समय में राम और दूसरे समय में काम के बनना चाहते हो? क्या प्रातः 'राम' की माला जप कर रात्रि को 'काम' ही के भक्त बने रहना चाहते हो? क्या पूजा के लिए देवालय अलग बनाकर, घर को अपने लिए वासना-भोग का स्थान (एक प्रकार से वेश्यालय) बनाये रखना चाहते हो? अब कुछ बदलो; जिसे तुम पावन करने के लिये पुकारते थे, अब वह घर और दुनिया को देवालय बनाने आया है। क्या उस पतित-पावन प्रभु के इस महान मनोरथ के लिए, विश्व के सच्चे स्वराज्य के लिए, अपने भी कल्याण के लिए उस परमप्रिय परमपिता को इस एक जन्म के थोड़े-से समय के लिये भी इतना भी सहयोग नहीं दोगे कि इस निकम्मी चीज़ को छोड़ सको?

कहते हैं कि जब बाबर ने भारत में लड़ाई लड़ी थी और उसने अपने सैनिकों को हारते देखा था तो उसने यह कहा था - "सिपाहियों और सिपहसालारों, जानबाज़ों और जवानों, हम उस अल्लाह को सामने रखकर यह कसम खाते हैं कि जब तक हम अपनी फतह का झण्डा बुलन्द नहीं कर देंगे, तब तक हम शराब को हाथ नहीं लगाएँगे। लिहाज़ा अपने शराब के जाम और शराब के प्यालों को तोड़ दो और इस देश को जीत कर ही दम लो। अल्लाह-हु-अकबर¹!"

तो अब जबकि हमने काम और उसकी समस्त सेना को परास्त करना है, अपनी इस भारत भूमि को पाँच विकार रूपी शत्रुओं से आज़ाद करना है तो स्वयं उस अल्लाह का, उस परमपिता परमात्मा का कहना है कि इस काम रूपी विष के प्याले को तोड़ दो। अब इसके नगमों और गीतों की बात छोड़ दो और कसम

1. अतः इसलिये

2. 'भगवान सबसे बड़ा है 'अथवा, 'हे भगवान, तेरी महिमा सबसे ऊँची है।'

खा लो कि “जब तक हमने भ्रष्टाचार को, पापाचार को और विकार को इस देश से निकाला नहीं है तब तक हमारे लिए आराम हाराम है।” देखो, जब कोई सैनिक युद्ध के मोर्चे पर होता है और चारों ओर तोपों की दनादन और गोलियों की तेज़ गूँज सुनाई दे रही होती है तब क्या उसे ‘काम’ विकार याद आता है? नहीं, नहीं, तब देश के सपूत, देश के भाल को ऊँचा करने के लिए, अपनी जान की बाज़ी लगाने को तैयार होते हैं। वे युद्ध क्षेत्र पर जाने से पहले ही अपने सिर पर कफन बाँध कर जाते हैं और मन में यह प्रण लेकर निकलते हैं कि – ‘ऐ भारत माता, हम तेरी रक्षा के लिए प्राण तक न्यौछावर कर देंगे, खून का आखिरी कतरा तक बहा देंगे और किसी भी कीमत पर तेरी स्वतन्त्रता को बरकरार रखेंगे। वे बर्फानी पहाड़ों की चोटियों पर दाँत से दाँत बजाने वाली सर्दों को भी बरदाश्त करते हैं और जिन रेगिस्तानों में होंठ गीला करने के लिए पानी की बूँद तक नहीं होती उनके भी दूर दराज़ कोनों में पहुँच जाते हैं; तब यदि भारत माँ से हमारा स्नेह सच्चा है, यदि हम परमप्रिय परमात्मा के सच्चे सपूत हैं, यदि हम सचमुच पवित्रता के सेनानी हैं तो – क्या हम इतना भी नहीं कर सकते कि हम भारत माँ की अपवित्रता से रक्षा करने के लिए एक जीवन के लिए वासना का त्याग कर दें? यदि ऐसा ही है तब शायद हम सच्चे स्वराज्य को मन से नहीं चाहते और मृगतृष्णा के कल्पित जल से अपने करोड़ों देशवासियों की सुख-शान्ति की उत्कट पिपासा को बुझाना चाहते हैं। तब भगवान ही हमारा रखवाला हो!



थोड़ा-सा !

यदि एक कमरा सूखे घास से भरा हो और उसमें हम केवल एक-दो जलते हुए कोयले छोड़ दें तो क्या कोई हर्ज है? इस प्रश्न का उत्तर निरपवाद रूप से यही मिलेगा कि - 'हाँ, अवश्य ही हर्ज है।' आज तक न जाने कितने मकान, कितनी दुकानें, कितनी गाड़ियाँ और कितनी फैक्ट्रियाँ सिग्रेट के सुलगते हुए टुकड़े के कारण से जलकर खाक हो गयीं। अतः आग थोड़ी-सी ही क्यों न हो, वह खतरनाक है। उससे बहुत सम्पत्ति नष्ट हो सकती है और बहुत-से लोगों का जीवन मिट भी सकता है।

इसी प्रकार, संखिया अथवा विष थोड़ा-सा भी क्यों न हो, वह घातक सिद्ध हो सकता है। यह सोचना कि दूध के एक लोटे में यदि दो बूँद विष मिला हो तो क्या हानि है, अनर्गल बात करना है।

ठीक इसी तरह, यदि कोई शत्रु कहे कि आप अपने देश में थोड़ा-सा स्थान हमें दे दो तो क्या हम उसे दे देंगे? यदि कोई चोर या डाकू कहे कि आप अपने घर के किसी निकम्मे-से कोने में थोड़ी-सी जगह हमें दे दो तो क्या आप ऐसी उदारता करेंगे? कदापि नहीं, क्योंकि ऐसा करना गोया अपने लिये भय का कारण पैदा करना होगा।

यही बात काम विकार के बारे में भी कही जा सकती है। 'काम' भी एक अग्नि है। यह एक विष भी है और शत्रु भी है। जो लोग यह सोचते हैं कि थोड़ा-सा काम विकार हो तो कोई हर्ज नहीं, वे भी मानो अपने शत्रु को अपने मन में जगह देते हैं, अपने हाथों अपने देह को सूक्ष्माग्नि में जलाते हैं और विष पी कर अपनी ही मृत्यु और कफ़न का प्रबन्ध करते हैं। 'काम' थोड़ा-सा भी क्यों न हो, वह हानिकारक ही है।

केवल एक बार!

अग्नि पर यदि घी डाला जाय तो वह भड़कती ही है, वह शान्त नहीं होती। ठीक इसी प्रकार, विषयों को भोगने से भी मनुष्य की भोगेच्छा बढ़ती ही है, कम नहीं होती। अतः जो लोग यह सोचते हैं कि एक बार वासना-भोग करके उसके बाद समाप्त कर देंगे, वे भी निश्चय ही उस दलदल में और अधिक फँसते जा रहे हैं। वे एक बार पहाड़ से गिरने की बात कहते हैं।

सिग्रेट पीने की आदत मनुष्य को जन्म से नहीं होती। पहले-पहले तो उसके मित्र उसे यही कहते हैं कि एक बार इसे पी लो। जब वह एक बार उसे पी लेता है तब उसे दूसरी बार भी पीने में आपत्ति नहीं रहती। फिर तो उसे इतनी आदत पड़ जाती है कि वह उसे छोड़ना भी नहीं चाहता। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह ऐसा कभी न सोचे कि एक बार कर लेने के बाद फिर उसे छोड़ देगा।

इसके विपरीत, आप देखेंगे कि यदि एक बार मनुष्य, इच्छा होने के बावजूद भी किसी बुरे काम को छोड़ देता है तो उसका वह बुराई का संस्कार ढीला पड़ जाता है। इससे उसमें और उत्साह बढ़ता है और फिर वह दूसरी बार पुनः इच्छा होने पर भी उस बुराई से बचता है। इस प्रकार पुनः उत्साह तथा मनोबल के बढ़ने से वह उस संस्कार के पंजे से छूट ही जाता है। अतः याद रखो, यह कहना ग़लत है कि एक बार काम-भोग के बाद दोबारा नहीं करूँगा¹ बल्कि इसी संकल्प में दृढ़ रहो कि एक बार भी नहीं करूँगा।

1. न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।

हविषा कृष्णायत्मेव, भूप एवामिवर्धते॥

वृत्ति मे परिवर्तन

हमने पूर्व पृष्ठों में ब्रह्मचर्य पालन के लाभों, वासनात्मक जीवन की हानियों और पवित्रता का नियम पालन करने की कुछेक ईश्वरीय युक्तियों का उल्लेख किया है। अब इस पुस्तक के समापन से पहले हम निम्नलिखित बातों की ओर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित करना आवश्यक समझते हैं -

1. पवित्र प्रवृत्ति

पिछले दो युगों से पुरुष-प्रधान संस्कृति में यह कहा जाता रहा है कि नर और नारी आग और कपास के समान हैं। ये इकट्ठे रहकर कामाग्नि में जलने से बच नहीं सकते। अतः पुराकाल में कई लोग गृहस्थ में पवित्रता को असम्भव मानने के कारण घर-बार छोड़, भगवा कपड़ा पहन, संन्यासी बनकर जंगल में चले जाते थे। इस प्रकार, वे नारी-जाति को पवित्र बनाने का कर्त्तव्य नहीं कर सके क्योंकि वे तो प्रायः नारी का मुख देखना भी संन्यासी के लिए वर्ज्य मानते थे। पुरुष वर्ग भी यद्यपि अमुक-अमुक संन्यासी के अनुगामी (Followers) कहलाते थे तो भी वे यथार्थ में उन-उन संन्यासियों का अनुकरण नहीं करते थे क्योंकि वे उनकी तरह घर छोड़कर संन्यास तो करते नहीं थे और पूर्ण ब्रह्मचर्य का व्रत तो लेते नहीं थे। अतः यद्यपि अच्छे-अच्छे संन्यासियों ने स्वयं पवित्रता के व्रत का पालन कर सृष्टि को शीघ्र गति से पतित होने से थमाया तथापि वे इसका उत्तरोत्तर पतन होने से इसे रोक न सके; वे सृष्टि को स्वर्ग न बना सके। वे स्त्री और पुरुष को पवित्र युगल न बना सके। वे प्रायः निवृत्ति मार्ग के संन्यासी थे जो स्वर्ग के सुख को काक-विष्टा के समान मानते थे और नारी का निरादर अथवा उसकी उपेक्षा करते थे। अब प्रवृत्ति को पवित्र बनाने का कार्य स्वयं परमात्मा शिव, जो कि पतित-पावन हैं, सर्वशक्तिवान हैं और स्वयं सदा निर्विकार तथा अशरीरी हैं, नर-नारी दोनों को राजयोगी बनाकर सम्पन्न कर रहे हैं। अब वे विकारों के कीड़ों को ज्ञान की गुंजार द्वारा भुंगी बना रहे हैं। आज उनके इस कर्त्तव्य से हजारों गृहस्थ ईश्वरीय ज्ञान और योग की शक्ति से इकट्ठे रहते हुए ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं। वे कमल-पुष्प के समान जीवन

व्यतीत कर रहे हैं। उनके अनुभव सुनने योग्य और बहुत ही प्रेरणादायक हैं। वास्तव में सही दृष्टिकोण भी यही है कि हम इस संसार में रहते हुए इन विकारों पर विजय प्राप्त करें। विकारों को उभारने वाली परिस्थिति से भाग जाना तो कमजोरी है। अब परमपिता परमात्मा शिव, जो सर्वशक्तिवान हैं, ईश्वरीय ज्ञान और योग की शक्ति देकर मनुष्यात्मा को विकारों पर विजय प्राप्त करने की शक्ति देते हैं। तभी तो उन्हें 'निर्बलों को सहारा देने वाले' माना गया है। वे मनुष्य को ज्ञान नाव द्वारा इस विषय-वैतरणी से पार करते हैं, तभी तो उन्हें 'तारनहार' और 'खेवनहार' कहा जाता है।

2. दृष्टि, वृत्ति और स्मृति में परिवर्तन

संसार के लिए यह बड़े आश्चर्य की बात है कि आग और कपास कैसे इकट्ठे रहकर जलने से बचे हुए हैं। परन्तु लोगों को यह मालूम होना चाहिये कि इस महान कर्तव्य के कारण ही तो परमात्मा को 'पतित-पावन' कहा गया है; भ्रष्ट को श्रेष्ठ बनाने का कार्य ही तो ईश्वरीय शक्ति का चमत्कार है। कल तक जिस बात को असम्भव माना जाता था, आज वह परमात्मा शिव की मार्ग-प्रदर्शना से सम्भव हो गया है। कल तक यह असम्भव इसलिए था कि मनुष्य को सदा यही स्मृति रहती थी कि — 'मैं देह हूँ, पुरुष हूँ अथवा स्त्री हूँ, पति हूँ अथवा पत्नी हूँ।' इस देह-भान के परिणामस्वरूप उसकी वृत्ति में विकार उत्पन्न होता था और उसकी दृष्टि उसे धोखा दे जाती थी। वह प्रकृति के बने देह के नाम और रूप पर विचलित होकर पथ-भ्रष्ट हो जाता था। आज परमात्मा ने मनुष्य को ज्ञान देकर इस स्मृति में स्थित किया है कि तुम देह नहीं, आत्मा हो; ज्योति-बिन्दु हो, मुझ सर्वशक्तिवान, निर्विकार परमात्मा की पवित्र, समर्थ सन्तान हो और आत्मिक नाते से परस्पर भाई-भाई हो। तुम्हारे बाकी सब सम्बन्ध मुझ परमात्मा से हैं। इस प्रकार, उन्होंने स्मृति को आत्म-निष्ठ और योगनिष्ठ बनाकर मनुष्य की वृत्ति और दृष्टि को निर्विकार और पवित्र बना दिया है और इस विधि से सबको 'भोगी' से 'योगी' बना दिया है और इस विधि से काम-विकार की हार हो गई है अथवा होती जा रही है। हाँ,

इसके लिए उन्होंने हमें कुछ पालनीय नियम बताये हैं, कुछ बातों में सावधान रहने को कहा है। उन्होंने हमारे लिए खान-पान, रहन-सहन इत्यादि के बारे में कुछ निर्देश दिये हैं। सौभाग्य की बात यह है कि इस मार्ग के लिए वे न केवल मार्गप्रदर्शना बल्कि सहयोग देकर मंजिल पर पहुँचाने का कर्तव्य कर रहे हैं। ये सारे विधि-विधान प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय के किसी भी सेवा-स्थान पर पधार कर समझे और सीखे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त उस 'सहज-राजयोग' का भी लाभ लिया जा सकता है जिस द्वारा प्रज्वलित योग अग्नि में 'काम' दग्ध हो जाता है और आत्मा आनन्द-विभोर होकर पद्मापद्म भाग्यशाली बन जाती है। फिर यहाँ यह विचित्रता भी देखी जा सकती है कि पिछले दो युगों में जिस महिला जाति का तिरस्कार किया जाता रहा, जिन माताओं-बहनों को 'अबला' माना जाता रहा, जिन्हें शास्त्रों ने 'नरक का द्वार' घोषित किया, अब परमपिता शिव उसी महिला जाति द्वारा मानव जाति का उद्धार कर रहे हैं। अब ब्रह्मचर्य व्रतधारिणी, ज्ञान-वीणा वादिनी योगिन बहनें-माताएँ ही ईश्वरीय ज्ञान की मधुर वाणी द्वारा तथा योग-तपस्या द्वारा नर-नारी, दोनों को पवित्र बनाने के महान कार्य के लिए निमित्त बनी हैं। वन्दे मातरम्।

पवित्र बनो और राजयोगी बनो!